मयूर प्रकाशन प्रा० लि०
झाँसी : दतिया

१२७

विराटा की पद्मिनी

डा० वृन्दावनलाल वर्मा

र्मा जी की कृतियों के सम्बन्ध में—

डॉ॰ वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यासों और
कहानियों द्वारा हिन्दी साहित्य का सम्बर्द्धन किया।
ी लम्बी साहित्य सेवा के कारण देश ने उन्हें
सम्मान दिया। उनके निधन से जो स्थान खाल
रना कठिन है।

माननीय
भूतपूर्व प्रधान मन्त्री, म

हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ॰ वृ
कृतियों का सम्मान भारत के सभी भा
। ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप
द्वितीय है।

माननीय श्री वी. के.
भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री,

श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहा
ों में जो असाधारण सफलता प्राप्त क
रहेगी। उनके निधन से केवल हिन्दी साहित्य की
बल्कि समूचे देश के साहित्य जगत की ऐसी क्षति हुई
जसकी पूर्ति बहुत समय तक नहीं हो सकेगी।

माननीय भक्तदर्शन
भूतपूर्व कुलपति कानपुर विश्वविद्यालय।

0169,3M89.2
1.2

2309

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

विराटा की पद्मिनी

(ऐतिहासिक उपन्यास)

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग पुस्तकालय
वाराणसी
आगत क्रमांक......1460......
दिनांक......

वृन्दावनलाल वर्मा

मयूर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
झाँसी : दतिया

प्रकाशक
सत्यदेव वर्मा, बी. ए. एल-एल. बी.
मयूर प्रकाशन प्रा० लि०, झाँसी

❀ मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय ❀
वाराणसी।
आगत क्रमांक.........2307..........
दिनांक.......................................

0152,3M89,2
L8

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
ग्यारहवां संस्करण १९७८
मूल्य छः रुपया पचास पैसे

मुद्रक
स्वाधीन प्रेस, जवाहर चौक, झाँसी

परिचय

सुरतानपुरा (परगना मोंठ, जिला झाँसी)—निवासी श्री नन्दू पुरोहित के यहाँ मैं प्रायः जाया करता था। उन्हें किंवदंतियां और कहानियाँ वहुत आती थीं। वह कहते-कहते कभी नहीं थकते थे, चाहे सुनने वालों को सुनते-सुनते नींद भले ही आ जाय।

एक रात मैं उनके यहाँ गया। नींद आ रही थी, इसलिये एक कहानी कहने के लिये प्रार्थना की। जरा हँसकर बोले—'तुम भाई, सो जाते हो। कहानी समाप्ति पर 'ओफ्फो! कौन कहेगा?'

मैंने उनसे कहा—'काका, आज नहीं सोऊँगा, चाहे होड़ लगा लो।' 'अच्छा' वह वोले—'भैया, मैं आज ऐसी कहानी सुनाऊँगा, जिस पर तुम कविता वनाकर छपवा देना।'

वह पढ़े-लिखे न थे इसलिये हिन्दी की छपी हुई पुस्तको को प्रायः कविता की पोथियाँ कहा करते थे।

'विराटा की पद्मिनी' की कहानी उन्होंने सुनाई थी। यह कहानी सुनकर मुझे उस समय तो क्या, सुनने के बाद भी बड़ी देर तक, नींद नहीं आई। परन्तु खेद है, उसके प्रस्तुत रूप के समाप्त होने के पहले ही उन्होंने स्वर्गलोक की यात्रा कर दी, और मैं उन्हें परिवर्तित और संवर्द्धित–रूप में यह कहानी न बता पाया!

पद्मिनी की कथा जहां-जहां दाँगी हैं, झाँसी-जिले के बाहर भी, प्रसिद्ध होगी। उपन्यास लिखने के प्रयोजन से मैंने नन्दू काका की सुनाई हुई कहानी के प्रचलित अंशों की परीक्षा करने के लिये और कई जगह उसे सुना। बिराटा के एक वयोवृद्ध दांगी से भी हठ-पूर्वक सुना। उस वयोवृद्ध ने मुझसे कहा था—'अब का धरो इन बातन में? अपनो काम देखो जू। अब तो ऐसे-ऐसे मनुष होने लगे कै फूँक मार दो, तो उड़ जायँ।' इसके पश्चात् मैंने बिराटा रामनगर और मुसावली की दस्तूर-देहियाँ सरकारी दफ्तर में पढ़ी। उनमें भी पद्मिनी के बलिदान का सूक्ष्म वर्णन पाया। मुसावली की दस्तूरदेही में लिखा है कि मुसावली—पाठे के नीचे के दो कुओं को एक बार दतिया के महाराज ने खुदवाया था। कुयें पक्के थे, परन्तु अब अस्त-व्यस्त हैं।

परिचय

देवीसिंह, लोचनसिंह, जनार्दन शर्मा, अलीमर्दान इत्यादि नाम काल्पनिक हैं, परन्तु उनका इतिहास सत्य-मूलक है। देवीसिंह का वास्तविक नाम इस समय नहीं बतलाया जा सकता। अनेक कालों की सच्ची घटनाओं का एक हीं समय में समावेश कर देने के कारण मैं इस पुरुष कें सम्बन्ध कीं घटनाओं को दूसरी घटनाओं से अलग करके बतलाने में असमर्थ हूं। जनार्दन शर्मा का वास्तविक व्यक्तित्व एक दुःखांत घटना है, जिस तरह जनार्दन ने जाल रचकर देवीसिंह को राज्य दिखाया था, उसी तरह वह इतिहास और किंवदंतियों में भी प्रसिद्ध है, परन्तु वास्तविक जनार्दन का अन्त बड़ा भयानक हुआ था।

कहा जाता है, राजा नायकसिंह कें वास्तविक नामधारी राजा के मर जाने के बाद उनकी रानी ने प्रणं किया था कि जब तक जनार्दन (वास्तविक व्यक्ति) का सिर काट कर मेरे सामने नहीं लाया जायगा, तब तक मैं अन्न ग्रहण न करूँगी। रानी का एक सेवक जब उस बेचारे का सिर काट लाया, तब उन्होंने अन्न ग्रहण किया। यह घटना झांसी के निकट के एक ग्राम गोरामछिया की है।

लोचनसिंह के वास्तविक रूप का इस संसार में विलीन हुये लगभग वीस वर्ष से अधिक नहीं हुये। वह बहुत ही उद्दण्ड और लड़ाकू प्रकृति के पुरुष थे। मेरे मित्र श्रीयुत् मैथलीशरण जी गुप्त ने उनके एक उद्दण्ड कृत्य पर 'सरस्वती' में 'दास्ताने' शीर्षक से एक कविता भी लिखी थी।

परन्तु जैसा मैं पहले कह चुका हूं उपन्यास—कथित घटनायें सत्य मूलक होने पर भी अपने अनेक कालों से उठाकर एक ही समय की लड़ी में गूंथ दी गई हैं, इसलिये कोई महाशय उपन्यास के किसी चरित्र को अपने वास्तविक रूप का सम्पूर्ण प्रतिबिब न समझें और यदि कोई बात ऐसे चरित्र की उन्हें खटके तो बुरा न मानें। इसी कारण मैं उपन्यास-वर्णित मुख्य चरित्रों का विस्तृत परिचय इस समय न दे सका।

—लेखक

बिराटा की पद्मिनी

[१]

मकर-संक्रांति के स्नान के लिये दलीपनगर के राजा नायकसिंह पहूज में स्नान करने के लिये विक्रमपुर आये। विक्रमपुर पहूज-नदी के बाएँ किनारे पर बसा हुआ था। नगर छोटा-सा था, परन्तु राजा और राजसी ठाट-बाट के इकट्ठे हो जाने से चहल-पहल और रौनक बहुत हो गई थी।

दूसरे दिन दोपहर के समय स्नान का मुहूर्त था। बिना किसी काम के ही राजा के कुछ दरबारी सन्ध्या के उपरांत राजभवन में मुजरा के बहाने गपशप के लिये आ गये। जनार्दन शर्मा यद्यपि मन्त्री न था, तथापि राजा उसे मानते बहुत थे। वह भी आया।

बातचीत के सिलसिले में राजा ने जनार्दन से कहा—'पहूज में तो पानी बहुत कम है। डुबकी लगाने के लिये पीठ के बल लेटना पड़ेगा।'

'हाँ महाराज!' जनार्दन ने सकारा—'पानी मुश्किल से घुटनों तक होगा। थोड़ी दूर पर एक कुण्ड है, उसमें स्नान हों, तो वैसी मर्जी हो।'

अधेड़ अवस्था का दरबारी लोचनसिंह, जो अपने सनकी स्वभाव के लिये विख्यात था, बोला—'दो हाथ के लम्बे-चौड़े उस कुण्ड में डुबकी लगाकर कीचड़ उछालना होली के हुल्लड़ से कम थोड़े ही होगा।'

जिस समय लोचनसिंह राजा के सामने बातचीत करने के लिये मुँह खोलता था, अन्य दरबारियों का सिर घूमने लगता था। उमर के साथ-साथ राजा के मिजाज में गरमी बढ़ गई थी। बहुधा आपस में अकेले

में, लोग कहा करते थे, पागल हो गये हैं। लोचनसिंह की बात पर राजा ने गरम होकर कहा—'तब तुम सबों को कल कोस-भर नदी खोदकर गहरी करनी पड़ेगी।'

लोचनसिंह बोला—'मैं अपनी तलवार की नोक से कोस-भर पहूज-नदी तो क्या, बेतवा को भी खोद सकता हूँ। हुक्म-भर हो जाय।'

राजा को कोप तो न हुआ, परन्तु खीज कुछ बढ़ गई। कुछ कहने के लिये राजा एक क्षण ठहरे। सैयद आगा हैदर राजवैद्य एक सावधान दरबारी था। मौक़ा देखकर तुरन्त बोला—'महाराज की तबीयत कुछ दिनों से खराब है। धार्मिक कार्य थोड़े जल से भी पूरा किया जा सकता है। अगर मुनासिब न समझा जाय, तो गहरे, ठंडे पानी में देर तक डुबकी न ली जाय।'

लोचनसिंह तुरन्त बोला—'ऐसी हालत में मैं महाराज को पानी में अधिक समय तक रहने ही न दूँगा। जितना पानी इस समय पहूज में है, वह बीमारी को सौ-गुना कर देने के लिये काफ़ी है!'

राजा ने दृढ़तापूर्वक कहा—'यही तो देखना है लोचनसिंह। बीमारी बढ़ जाय, तो हकीमजी के हुनर की परख हो जाय तो यह भी मालूम हो जाय कि तुम मुझे पानी में एक हज़ार डुबकियाँ लगाने से कैसे रोक सकते हो?'

लोचनसिंह बोला—हकीमजी का कहना न मानकर जब महाराज को डुबकी लगाने पर उतारू देखूँगा, तब अपना गला काटकर उसी जगह डाल दूँगा, फिर देखा जायगा, कैसा हौसला होता है।'

लोचनसिंह की सनक से राजा की भड़क का ज्वार बढ़ा। बोले—'शर्माजी पहूज में स्नान न होगा। उसमें पानी नहीं है। पहले तुमने नहीं बतलाया, नहीं तो इस कम्बख्त नदी की तरफ़ सवारी न आती।'

'महाराज, महाराज!' जनार्दन ने सकपकाकर कहा—'मुझे स्वयं पहले से मालूम न था।'

राजा बोले—'बको मत। तुम्हारे षड्यन्त्रों को खूब समझता हूँ। कुञ्जरसिंह को बुलाओ।'

कुञ्जरसिंह राजा की दासी का पुत्र था। वह राज्य का उत्तराधिकारी न था, तो भी राजा उसे बहुत चाहते थे। राजा के दो रानियाँ थीं। बड़ी रानी उसे चाहती थी, इसलिये छोटी का उस पर प्यार न था। राजा बहुत वृद्ध न हुये थे। इधर-उधर के कई रोगों के होते हुये भी राजवैद्य ने आशा दिला रक्खी थी कि उत्तराधिकारी उत्पन्न होगा। इसीलिये राजा ने दूसरा विवाह भी कर लिया था और दासियों के बढ़ाने की प्रवृत्ति में भी चाहे पागलपन से प्रेरित होकर, चाहे किसी प्रेरणा-वश, बहुत अधिक कमी नहीं हुई थी। यह देखकर राजसभा के लोगों को विश्वास था कि किसी-न-किसी दिन पुत्र उत्पन्न होगा।

कुञ्जरसिंह आया। २०-२१ वर्ष का सौंदर्यमय बलशाली युवा था। राजा ने उसे अपने पास बिठलाकर कहा—'कल पहूज में स्नान न होगा।'

'क्यों काकाजू ?' कुञ्जरसिंह ने संकोच के साथ पूछा।

'इसलिये कि उसमें पानी नहीं है।' राजा ने उत्तर दिया—'हमको व्यर्थ ही यहाँ लिवा लाये।'

कुञ्जरसिंह राजा के विक्षिप्त स्वभाव से परिचित था। जनार्दन और लोचनसिंह का मुँह ताकने लगा।

लोचनसिंह ने कहा—'हकीमजी कहते हैं, नहाने से बीमारी बढ़ जायगी।'

कुञ्जरसिंह ने धीरे से कहा—'दलीपनगर में ही मालूम हो जाता तो यहाँ तक आने का कष्ट महाराज को क्यों होता ?'

आत्मरक्षा में हकीम को कहना पड़ा—'थोड़ी देर के स्नान से कुछ नुक़सान न होगा।'

राजा बोले—'तब पालर की झील में डुबकी लगाई जायगी, बड़े सवेरे डेरा पालर पहुंच जाय।'

डुबकियाँ लगाने के परिणाम का अनुमान करके आगा हैदर काँप गया। बोला—'ऐसी मर्जी न हो। झील बहुत गहरी है और उसका पानी बहुत ठण्डा है।'

और तुम्हारी दवा घूरे पर फेकने लायक।' राजा ने हँसकर और फिर तुरन्त गम्भीर होकर कहा—'तुम्हारे कुश्तों में कुछ गुण होगा और तुम्हारी शेखी में कुछ सचाई, तो झील में नहाने से कुछ न बिगड़ेगा। नहीं तो रोज-रोज के मरने से तो एक ही दिन मर जाना कहीं अच्छा'

जनार्दन विषयान्तर के प्रयोजन से बोला—'अन्नदाता, सुना जाता है पालर में एक दांगी के घर दुर्गाजी ने अवतार लिया है। सिद्धि के लिये उनकी बड़ी महिमा है।'

'तुमने आज तक नहीं बतलाया?' राजा ने कड़ककर पूछा और तकिये पर अपना सिर रख लिया।

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'सुनी हुई खबर है। गलत निकलती तो कहने वाले को यों ही अपने सिर की कुशल के लिये चिन्ता करनी पड़ती।'

'चुप-चुप।' राजा ने तमककर कहा—'बहुत बड़बड़ मत करना, नहीं तो पीछे पछताओगे।'

'मूड़ ही कटवा लेंगे आप?' लोचनसिंह अदम्य भाव से बोला—'सो उसका मुझे कुछ डर नहीं है।'

राजा प्रतिहत से हो गये।

उपस्थित उलझाव का एक ही सुलझाव सोचकर कुञ्जरसिंह ने कहा—'काकाजू, पालर चलकर संक्रान्ति का स्नान हो जाय और उस अवतार-कथा की भी मीमांसा कर ली जाय।'

किसी दरबारी को विरोध करने का साहस नहीं हुआ। लोचनसिंह कोई नवीन उत्तेजनापूर्ण बात कहने को ही था कि राजा ने जनार्दन से प्रश्न किया—'इस अवतार को हुये कितने दिन हो गये?'

'सुनता हूँ अन्नदाता कि वह लड़की अब १६-१७ वर्ष की है। जनार्दन ने राजा को प्रसन्न करने के लिये उत्तर दिया—'पालर में तो उसके दर्शनों के लिये दूर-दूर से लोग आते हैं।'

राजा ने कहा—'कल देखूँगा।'

जनार्दन जी कड़ा करके बोला—'परन्तु महाराज ?'

'हर बात में परन्तु।' राजा ने टोककर कहा— 'क्या परन्तु ?

'पालर बड़नगर वालों के राज्य में है।' जनार्दन ने उत्तर दिया— बिना पूर्व-सूचना के पराये राज्य में जाने का न-मालूम क्या अर्थ-अनर्थ लगाया जाय। सब तरफ़ गोलमाल छाया हुआ है। दिल्ली में तो गड़बड़ ही मची हुई है।'

राजा ने बात काटकर कहा –'तुम दलीपनगर को गड़बड़ में डाल दो। देखो शर्मा, एक बात है, हम पालर में डाका डालने तो जा नहीं रहे हैं, जो पहले से बड़नगर वालों को सूचना दें। वे हमारे भाई-बंध हैं। कोई भय की बात नहीं है। तैयारी कर दो।'

आग़ा हैदर को भी राजा की हाँ-में-हाँ मिलानी पड़ी—'कोई डर नहीं शर्माजी, किसी साँड़नी-सवार के ज़रिये सूचना भिजवा दी जाय। बड़नगर यहाँ से बहुत दूर भी नहीं है। यदि दूरी का मामला होता, तो और बात थी।'

[२]

दूसरे दिन राजा ने पालर की विशाल झील में, जो आजकल गढ़मऊ की झील के नाम से विख्यात है, खूब स्नान किया। बीमारी बढ़ी या नहीं, यह तो उस समय किसी ने नहीं जाना, परन्तु राजा के दिमाग़ को कुछ ठण्डक ज़रूर मिली और वह उस दिन उतने उतावले नहीं दिखाई पड़े। अवतार की बात वह भूल गये और किसी ने उन्हें उस समय स्मरण भी नहीं दिलाया।

स्नान करने के बाद कुञ्जरसिंह को उक्त अवतार के दर्शन की लालसा हुई।

१६-१७ वर्ष पहले नरपतसिंह दांगी के घर लड़की उत्पन्न हुई थी। जब वह गर्भ में थी, उसकी माँ विचित्र स्वप्न देखा करती थी। लड़की के उत्पन्न होने पर पिता को ऐसा जान पड़ा, मानो प्रकाशपुञ्ज ने घर में जन्म लिया हो। उसकी माँ लड़की को जन्म देने के कुछ मास उपरांत मर गई।

नरपति दुर्गा का भक्त था और जागते हुये भी स्वप्न-से देखा करता था। गांव वाले उसे श्रद्धा और भय की दृष्टि से देखते थे।

वह कन्या रूप-राशि थी। उस पर देवत्व के आरोप होने में विलम्ब न हुआ। अविश्वास करने के लिये कोई स्थान न था। बालिका, दाँगी की लड़की में इतना रूप, इतना सौन्दर्य कभी न देखा गया था। गाँव के मन्दिर में दुर्गा की जो मूर्ति थी, शिल्प की कला ने उसे वह रूप-रेखा नहीं दे पाई थी, जो इस बालिका में सहज ही भासित होती है। ज्यों-ज्यों उसने वय प्राप्त किया, त्यों-त्यों अङ्ग सुडौल होते गये, सौन्दर्य की विभूति बढ़ती, निखरती गई और गांव वाले नरपतिसिंह की उस कन्या को किसी निर्भ्रान्त सिद्धान्त की तरह स्वीकार करते गये। कभी विश्वास से फल हुआ और कभी नहीं भी। पहले बालिका की पूजार्चा बहुधा नरपतिसिंह के ही घर पर होती रही, पीछे बालिका द्वारा मन्दिर में स्थापित मूर्ति की पूजा कराई जाने लगी। जैसे आरम्भ में लोग नव-निर्मित मन्दिर में

बहुधा पूजन के लिये जाया करते हैं और कुछ समय बाद अपने घर में ही बैठे-बैठे मन्दिर स्थापित मूर्ति की वन्दना करने लगते हैं, उसी तरह नरपतिसिंह की कन्या के प्रति कई वर्ष गुज़र जाने पर भी अविश्वास या अश्रद्धा तो किसी ने भी प्रकट नहीं की, परन्तु पूजा का रूप पलट गया। अटक-भीर पड़ने पर कभी-कभी कोई-कोई प्रत्यक्ष पूजा॰ भी कर लेता था। परन्तु देवी के नाम पर शुरू-शुरू में जो बड़े-बड़े मेले लगे थे, उनमें क्षीणता आ गई। लोगों के आश्चर्य में ओज न रहा। उस कन्या को देवी का अवतार मानते हुये न केवल गाँव के लोग ठठके-ठठ जमा होकर उसके घर पर या मन्दिर में जाते थे, बल्कि वाहर के दूर-दूर के लोग भी अब मानता मान-मानकर आते थे।

कुञ्जरसिंह के मन में देवी के दर्शन की इच्छा तो हुई, परंतु लज्जाशील होने के कारण अकेले जाने की हिम्मत नहीं पड़ी। कोई शायद पूछ बैठे—'क्यों आये? देवी अवश्य है, युवती भी है।' संयोग से लोचनसिंह मिल गया। साथ के लिये सुपात्र-कुपात्र की अपेक्षा न करके लोचनसिंह से कहा—'दाऊजू, देवी-दर्शन के लिये चलते हो?'

उसने उत्तर दिया—'किन बातों में पड़े हो राजा? दाँगी की लड़की दुर्गा नहीं होती। देहात के भूतों ने प्रपञ्च बना रक्खा होगा।'

कुञ्जरसिंह की इच्छा ने ज़रा हठ का रूप धारण किया। बोला—'अवतार के लिये कोई विशेष जाति नियुक्त नहीं है। देख न लो?'

लोचनसिंह ने विरोध नहीं किया। आगे-आगे लोचनसिंह और पीछे-पीछे कुञ्जरसिंह नरपतिसिंह के मकान का पता लगाकर चले। वह घर पर मिल गया।

लोचनसिंह ने बिना किसी भूमिका के प्रस्ताव किया—'तुम्हारी लड़की देवी है? दर्शन करेंगे।'

नरपति की बड़ी-बड़ी लाल आँखों में आश्चर्य छिटक गया। बोला—'कहाँ के हो?'

'दलीपनगर के राजकुमार।' उत्तर देते हुये लोचनसिंह ने कुंजर की ओर इशारा किया।

'इस तरह दर्शन करने के लिये तो यहाँ देवता भी नहीं आते।' संदेह के स्वर में नरपति ने कहा।

'तब किस तरह देख पायेंगे ?'

'मन्दिर में जाओ।'

कुञ्जरसिंह की हिम्मत टूट गई। लौट पड़ने की इच्छा हुई, परन्तु पैर वहीं अड़-से गये। धीरे से लोचनसिंह से कहा—'तो चलो दाऊजू।' और नरपति के खुले हुये घर की ओर मुँह फेर लिया। पौर के धुंधले प्रकाश में उसे एक मुख दिखलाई पड़ा, जैसे अन्धेरी रात में बिजली चमक गई हो। आँखों में चकाचौंध-सी लग गई।

लोचनसिंह ने कुञ्जर के प्रस्ताव को एक कन्धा ज़रा-सा हिलाकर, अस्वीकृत कर दिया। नरपति से बोला—'मन्दिर में पाषाण-मूर्ति के दर्शन होंगे। हम लोग यहाँ तुम्हारी लड़की को, जो देवी का अवतार कही जाती है, देखने आये हैं।'

प्रस्ताव की इस स्पष्ट भाषा के कारण कुञ्जरसिंह को पसीना-सा आ गया।

नरपतिसिंह ने ज़रा सोचकर कहा—'हमारी बेटी देवी है, इसमें ज़रा भी सन्देह जो करता है, उसका सर्वनाश तीन दिन के भीतर ही हो जाता है। तुम लोगों को यदि दर्शन करना हो, तो मन्दिर में चलो। यहाँ दर्शन न होंगे। कोई मेला या तमाशा नहीं है। नारियल, मिठाई, पुष्प, गंध इत्यादि लेकर चलो, मैं वहाँ लिवाकर आता हूं।'

नरपति की आँखों में विश्वास के बल को और हवा में लम्बे-लम्बे केशों की एक लट को उड़ते हुये देखकर लोचनसिंह की अदम्यता नहीं डिगी।

पूछा—'इत्यादि और क्या ?'

दृढ़ता-पूर्ण उत्तर मिला—'सोना-चाँदी और क्या ?'

लोचनसिंह के उत्तर देने के पूर्व ही कुञ्जरसिंह ने नम्रता के साथ कहा—'बहुत अच्छा।'

नरपति तुरन्त घर के भीतर अदृश्य हो गया और किवाड़ बन्द कर लिये।

लोचनसिंह ने कुञ्जर से कहा—'मन तो ऐसा होता है कि तलवार के एक झटके से लम्बे केश वाले इस सिर को धूल चटा दूँ, परन्तु हाथ कुण्ठित हैं।'

'चुप चुप।' कुञ्जर आदेश के उच्चारण में बोला—'बाजार से सामग्री मँगवा लो।'

लोचन बाज़ार की ओर, जिसमें केवल दो दुकानें थीं, चला गया और कुञ्जर नरपति के चबूतरे के एक कोने को झाड़कर छिपने की-सी चेष्टा करता हुआ वहीं बैठ गया।

इतने ही में दो आदमी और आये। वेष-भूषा से मुसलमान सैनिक जान पड़ते थे। उनमें से एक ने कुञ्जर से पूछा—'क्यों जी, नरपति दाँगी का यही मकान है?'

'हाँ, क्यों?'

'देवी के दर्शनों को आये हैं। कहां है?'

कुञ्जर को यह अच्छा न मालूम हुआ। बोला—'होगा कहीं, क्या मालूम।' तीव्र उत्तर न दे सकने के कारण उसे अपने ऊपर ग्लानि हुई। वह कहने और कुछ करने के लिये आतुर हुआ।

वे दोनों उसी चबूतरे पर बैठ गये। कुछ क्षण उपरांत लोचनसिंह एक पोटली में पूजन की सामग्री बाँधे हुये आ गया। कहने लगा—'बनिया हमको धोखा देना चाहता था। दो धौल दिये, तब अभागे ने ठीक भाव पर सामग्री दी।'

लोचनसिंह ने उन दो नवागंतुकों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। घर की कुन्डी खटखटाकर पुकारा—'पूजा की सामग्री ले आये हैं। लिवाकर आ जाओ।'

भीतर से कर्कश स्वर में उत्तर मिला—'मन्दिर चलो।'

लोचनसिंह कुञ्जर को लेकर मन्दिर की ओर चला, जिसकी उड़ती हुई पताका नरपति के मकान से ही दिखलाई पड़ रही थी।

लोचन और कुञ्जर के मन्दिर पहुंचने के आधी ही घड़ी पीछे नरपति अपनी लड़की को लेकर आ गया। वे दोनों मुसलमान सैनिक भी पीछे-पीछे आकर मन्दिर के बाहर बैठ गये। कुञ्जरसिंह ने देखा! मन खीझ गया। परन्तु नरपति के ऊपर उन दोनों सैनिकों की उपस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

कुञ्जरसिंह ने रूप, लावण्य और पवित्रता के उस अवतार को देखा। एक बार देखकर फिर आंख नहीं उठाई गई। दुर्गा की पाषाण-मूर्ति की ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगा।

'पूजा करो।' नरपति ने आदेश किया।

'किसकी पूजा करूं?' कुञ्जर ने सोचा और एक बार रूप-राशि की ओर देखकर फिर पाषाण-मूर्ति पर अपनी दृष्टि लगा दी।

लोचनसिंह ने बिना संकोच के लड़की को ऊपर से नीचे तक ध्यान से देखा। उसने आँखें नीची कर लीं। लोचनसिंह बोला—'किसकी पूजा पहले होगी?'

नरपति ने मूर्ति की ओर संकेत किया।

कुञ्जर ने भक्ति के साथ मूर्ति का पूजन किया। सोचा—'अब सदेह, सजीव देवी की पूजा होगी।'

'इनका क्या नाम है?' लोचन ने पूछा।

'दुर्गा, दुर्गा का अवतार।' उत्तर मिला।

कुञ्जर प्रश्न और उत्तर से सिकुड़-सा गया, परन्तु नाम जानने की उठी हुई उत्सुकता ठंडी नहीं पड़ी। लड़की के मुख पर इस बेधड़क प्रश्न से हलकी ललिमा दौड़ आई। लोचन ने फिर शिष्टता के साथ पूछा—'यह नाम नहीं, यह तो गुण है। घर में इस बेटी को क्या कहते हो?'

'कुमुद—पर तुम्हें इससे क्या ? पूजा हो गई। अब चढ़ावा चढ़ाकर यहाँ से जाओ। दूसरों को आने दो।' नरपति ने कहा। लोचन के दाँत से दाँत सट गये, परन्तु बोला कुछ नहीं।

कुञ्जर ने अपने गले से सोने की माला और उँगली से हीरे की अँगूठी उतार कर मूर्ति के चरणों में चढ़ा दी। नरपति ने प्रसन्न होकर माला हाथ में ले ली और अँगूठी लड़की को पहना दी, जिसका नाम उसके मुँह से 'कुमुद' निकल पड़ा था। कुमुद ने पहले हाथ थोड़ा पीछे हटाया। परंतु पिता की व्यग्रता ने उसकी उँगली को अँगूठी में पिरो दिया।

नरपति ने कुञ्जर से पूछा—'आप कौन हैं ?'

कुञ्जर के मुँह से नम्रता-पूर्वक निकला—'राजकुमार।'

लोचन ने गर्व के साथ कहा—'यह हैं दलीपनगर के महाराजाधिराज के कुमार राजा कुञ्जरसिंह।'

कुमुद ने धीरे से गर्दन उठाकर कुञ्जरसिंह की ओर पैनी निगाह से देखा। लालिमा मुख पर नहीं दौड़ी और न आँखें नीची पड़ीं। फिर सरल, स्थिर दृष्टि से मन्दिर के एक कोने की ओर देखने लगी।

नरपतिसिंह ने कुमुद से कहा—'देवी, पूजक को प्रसाद दो।'

कुमुद मिठाई के दोने से एक लड्डू उठाकर कुञ्जर को देने लगी।

नरपति ने रोककर कहा—'यह नहीं' और गेंदे का एक फूल भस्म के दो-चार कणों से लपेटकर कुमुद के हाथ में दिया और कहा—'यह दो। राजकुमार के लिये प्रसाद उपयुक्त है।'

कुमुद ने अँगूठी वाले हाथ में गेंदे का फूल लिया। हाथ, सोने, हीरे और गेंदे के फूल के रङ्गों में आधे क्षण के लिये स्पर्द्धा-सी हो उठी। श्रद्धा-पूर्वक कुञ्जर ने वह फूल अपनी अंजलि में ले लिया और कुमुद की बड़ी-बड़ी, सरल, सुन्दर आँखों में अपने संकोच-चंचल नेत्र मिलाकर पुष्प को पगड़ी में सयत्न खोंस लिया। फिर कुमुद से आँख मिलाने का साहस नहीं हुआ।

परन्तु कुमुद की आंखों में संकोच या लज्जा का लक्षण नहीं था।

[३]

लोचनसिंह और कुञ्जरसिंह मन्दिर से बाहर निकल आये। कुमुद भीतर ही बैठी रही। नरपति दरवाजे के पास खड़ा होकर मुसलमान सैनिकों से बोला—'पूजा करना हो, तो कर लो, नहीं तो हम घर जाते हैं। ज्यादा देर नहीं बैठेंगे।'

'जाइये।' उनमें से एक बोला—'हम लोगों ने तो यहीं से दीदार कर लिया।'

'तब क्यों बैठे हो?' कुञ्जर ने स्पष्ट स्वर में पूछा।

उसने लापरवाही के साथ उत्तर दिया—'चले जायँगे, बैठे हैं; किसी का कुछ लिये तो हैं नहीं।'

कुञ्जर की भृकुटि टेढ़ी हो गई। 'जाओ, अभी जाओ।' आपे से बाहर होकर बोला—'यह देवी का मन्दिर है, दिल्लगी की जगह नहीं।'

नरपति ने ढले हुए कठ से कहा—'झगड़ा मत करिये, पूजन के लिये आये होंगे।'

'पूजन के लिये नहीं आये हैं', दूसरे सिपाही ने कहा—'मन बहलाने आये हैं। अपना काम देखो, हम भी चले जायँगे। कड़े होने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि हमारी ज़बान और तेग़ दोनों ही कड़े हैं।'

लोचनसिंह दाँत पीसकर बोला—'उस ज़बान और तेग़ दोनों के टुकड़े कर डालने की ताक़त हमारे हाथ में है। सीधे-सीधे चले जाओ, वरना कौए यहाँ से हड्डियाँ उठाकर ले जायँगे।'

दोनों सिपाहियों ने अपनी-अपनी तलवारें ख़ींच लीं। लोचनसिंह की उनसे पहले ही निकल चुकी थी।

नरपति मन्दिर की ओर मुँह करके चिल्लाकर बोला—'माई, माई, निवारण करो।'

कुमुद दरवाजे के पास आ गई। कुञ्जर से बोली—'राजकुमार, इस पवित्र स्थान पर रक्त-पात न हो।'

इन शब्दों में जो प्रबलता थी, जो आदेश था, उसने कुञ्जर को कर्तव्यारूढ़ कर दिया । तुरन्त दोनों ओर की खिची तलवारों के बीच पहुँचकर बोला—'यहाँ पर नहीं, किसी उपयुक्त स्थान पर।'

'हम सैयद की फ़ौज के आदमी हैं। एक बोला—'कोई स्थान और कोई भी समय हमारे लिए उपयुक्त है ।

लोचनसिंह अप्रतिहत भाव से बोला—'सैयद का बड़ा डर दिखलाया। न मालूम कितने सैयदों को तो हम कच्चा ही गटक गये है ।

'और हमने न-मालूम तुम-सरीखे कितने लुक्कों को तो चुटकी से ही मसल दिया है।' उनमें से एक ने चुनौती देते हुए कहा ।

लोचनसिंह उन दोनों पर लपका । कुंजर अपने प्राणों की ज़रा भी परवा न करके बीच में धँस गया ।

लोचन वार को रोककर खिसियाए हुए स्वर में बोला—'कुंवर, कुंवर, बचो । लोचनसिंह की जलती हुई आग शत्रु-मित्र के अन्तर को नहीं पहचानती ।

कुमुद दो क़दम आगे बढ़कर एक हाथ आकाश की ओर ज़रा-सा उठाकर बोली—'मत लड़ो, अपने-अपने घर जाओ । पुण्य-पर्व है, जो लड़ेगा, दुःख पवेगा ।

दोनों मुसलमान सैनिकों ने अपनी तलवारें नीची कर लीं । कुंजर ने लोचनसिंह का हाथ पकड़ लिया । वे दोनों सिपाही एकटक कुमुद की ओर देखने लगे, अतृप्त, अचल नेत्रों से, मानो अनंत काल तक देखते रहेंगे ।

कुमुद ने कुंजर से कहा—'राजकुमार, इनको यहाँ से ले जाइये ।' फिर मुसलमान सैनिकों से बोली—'आप लोग यहाँ से जायँ ।'

इतने में शोर-गुल सुनकर गाँव के कुछ आदमी आ गये ।

मन्दिर पर मुसलमानों की उपस्थिति देखकर उन लोगों ने सैनिकों र झगड़े का सन्देह ही नहीं, चुपचाप विश्वास भी कर लिया । कई कंठों

से यकायक निकला—'कौन हो ? क्या करते हो ? मन्दिर की बेइज्ज़त करने आये हो ?'

भीड़ में से एक ने खूब चिल्लाकर कहा—'इस आदमी ने हमा नारियल अगरबत्ती छीन लिये हैं और हमें मारा है।' और भीड़ इक हुई।

कुमुद भीड़ की ओर मुड़कर चिल्लाई, जैसे कोयल ने जोर की कू दी हो—'जाओ अपने-अपने घर, व्यर्थ झगड़ा मत करो।'

'जाओ कम्बख्तो यहां से।' दोनों मुसलमान सिपाहियों ने भी कहा कुञ्जरसिंह ने हाथ के इशारे से भीड़ हटाने का प्रयत्न किया।

परन्तु आगे वाले पीछे को न मुड़ पाये थे कि पीछे से और भीड़ आ गई। उसमें दलीपनगर के राजा के कुछ सैनिक भी थे। वास्तविक स्थि को बिना ठीक-ठीक समझे ही पीछे वाले चिल्लाये—'मारो, मारो,' लोच सिंह को तलवार निकाले और कुन्जरसिंह को बीच में देखकर पीछे आ सिपाहियों ने भी तलवारें निकाल लीं। इतने में लुटा हुआ दुकानदा फिर चिल्लाकर बोला—'लूट लिया भाइयो, मुझे तो लूट लिया। मे नारियल चुरा लिए।' लोचनसिंह ने उस ओर देखा, परन्तु आरोपी पहचान न पाया।

शब्द बढ़ता गया। कुमुद का बारीक स्वर उस भीड़ के हुल्लड़ को चीर पाया, प्रत्युत पीछे वालों को पूरा विश्वास हो गया कि न केव लोचनसिंह उनका सरदार, बल्कि उनका राजकुमार और धर्म भी उ दो मुसलमान सैनिकों के कारण संकट में पड़ गये हैं। कुछ ही क्षण मुसलमान सैनिक भीड़ से घिर गये।

उनमें से एक ने चिल्लाकर कहा—'अरे बेवक़ूफ़ो, हमको यहाँ निकल जाने दो, नहीं तो तलवार से हम अपना रास्ता साफ़ करते हैं।'

इस समय दो-तीन मुसलमान सिपाही और उस स्थान पर आ गये

'क्या है ? क्या है ?' उन्होंने आवेश के साथ पूछा।

पहले आये हुए मुसलमान सैनिकों में से एक ने कहा—'कुछ नहीं, यों ही हुल्लड़ है। खून-खराबी मत करना।'

उन दो-तीन नवागंतुक मुसलमान सिपाहियों के आने पर गाँव वाले ज़रा पीछे हटे और पीछे वाले दलीपनगर के सैनिक नंगी तलवारें लिये आगे आ गये। तुरन्त 'मारो-मारो' की पुकारें मच गईं और खिंची हुई तलवारों ने अपना काम शुरू कर दिया।

लोचनसिंह ने पीछे आये हुये मुसलमान सिपाहियों में से एक को समाप्त कर दिया। पूर्वागंतुकों ने भी वार आरम्भ कर दिये। भीड़ के कई आदमी कतर डाले और घायल कर दिये। कुञ्जरसिंह तलवार निकालकर कुमुद के पास जा खड़ा हुआ। वह कुञ्जर को वहीं छोड़कर अपने पिता के साथ धीरे-धीरे घर चली गई।

दलीपनगर के और सैनिक आ गये। घमासान हो उठा। थोड़े से मुसलमान सैनिक दृढ़ता के साथ लड़ते-लड़ते पीछे हटने लगे। थोड़ी दूर से लड़ते-लड़ते मुसलमान सैनिक एक ओर भाग गये। उनका बहुत दूर तक पीछा नहीं किया गया।

मुसलमान सैनिक की लाश वहीं पड़ी रही और इधर के जो आदमी मारे और घायल किये गये थे, उन्हें वहीं छोड़कर भीड़ तितर-बितर हो गई। मन्दिर में केवल देवी की मूर्ति थी। कुञ्जरसिंह को वह थोड़ी ही देर पहिले का शब्दमय स्थान सुनसान मालूम होने लगा। वहाँ केवल किसी आलोक की कोई छाया-मात्र दिखाई पड़ती थी, किसी मधुर स्वर की गूँज-भर।

मृतकों और घायलों का उचित प्रबन्ध करके जो कुछ हुआ था, उस पर पछतावा करता हुआ कुञ्जरसिंह अपने डेरे की ओर लोचन को लेकर चला गया।

[४]

संध्या होने के पहले गाँव में खबर फैल गई कि ४-५ कोस पर मुसलमानों की एक बड़ी सेना ठहरी हुई है और वह शीघ्र ही आक्रमण करेगी, गांव में आग लगावेगी और देवी के अवतार का ज़बरदस्ती अपहरण करेगी।

इस प्रकार की मार-काट उन दिनों प्रायः हो जाया करती थी। इसलिये आश्चर्य तो किसी को नहीं हुआ, परन्तु भय सभी को। दलीप-नगर के राजा के साथ भी बहुत से सैनिक थे, इसलिये गाँव वालों को अपनी रक्षा का बहुत भरोसा था। जो लोग हाथ-पाँव चलाने लायक थे, वे हथियारबन्द होकर इधर-उधर टुकड़ियों में जमा हो गये। परन्तु गाँव में जनसंख्या अधिक न थी, इसलिये दलीपनगर की सेना की तैयारी की प्रतीक्षा चिन्ता के साथ करने लगे।

राजा ने अभी तक कोई मंतव्य प्रकट नहीं किया था। समाचार उन्हें मिल गया था।

राजा का रामदयाल नामक एक विश्वस्त निजी नौकर था। उसके साथ थोड़ी देर बातचीत होने के बाद राजा ने पूछा—'तूने उस लड़की को देखा है ?'

'हाँ महाराज।'

'बहुत खूबसूरत है ?'

'ऐसा रूप कभी देखा-सुना नहीं गया।'

'कुछ कर सकता है ?'

'कोई कठिन बात नहीं।'

'राजमहल की दासियों में डाल ले।'

'जब आज्ञा होगी तभी।'

'आज रात को।'

'बहुत अच्छा, परन्तु—'

परन्तु क्या बे ?'

राजा की चढ़ी हुई आँखों से नौकर घबराया नहीं। बोला—'महाराज, कहीं से मुसलमानों की फ़ौज आई है।'

'मार डाल सबों को, परन्तु उस लड़की को लिवा ला।' राजा ने कहा।

रामदयाल अनसुनी-सी करके बोला—'महाराज, लोचनसिंह दाऊजू ने उस फ़ौज के एक जवान को मार डाला है और कई-एक को घायल कर दिया है। उन लोगों ने भी गाँव के कई आदमी मार डाले हैं और अपने भी कई सिपाहियों को घायल कर गये हैं।'

राजा ने उपेक्षा के साथ कहा—'इस लम्बी दास्तान को शीघ्र समाप्त कर दे। बोल, उसको किस समय लिवा लायेगा।'

उत्तर न देते हुये रामदयाल बोला—'मुसलमानी सेना पास ही दो-तीन कोस फ़ासले पर ठहरी हुई है। तुरही-पर-तुरही बज रही है। गाँव पर हल्ला बोला जाने वाला है।'

'यह तुरही हमारी फ़ौज की थी। तू झूठ बोलता है।'

'रात को वे लोग गाँव में आग लगा देंगे और उस लड़की को उठा ले जायँगे।'

राजा रामदयाल के इस अन्तिम कथन को सुन उठ बैठे। आँखें नाचने-सी लगीं। कहा—'लोचनसिंह को इसी समय बुला ला।'

कुछ क्षण पश्चात लोचनसिंह आ गया। जुहार करके बैठा ही था कि राजा ने तमक कर पूछा—'तुमने आज एक आदमी मार डाला है?'

उसने शांति-पूर्वक जवाब दिया—'हाँ महाराज, एक ही मार पाया, बाक़ी भाग गये। बनिये को भी नहीं मार पाया, वह मुझे चोर बताता था।'

'यह कहाँ की सेना है?'

'कहीं की हो महाराज! मुझे तो उनमें से कुछ को मारना था, सो एक को देवी की भेंट कर दिया।'

'देवी! देवी! तुम लोगों ने एक छोकरी को मुफ्त देवी बना रखा है। मैं देखूँगा, कैसी देवी है।'

'महाराज देखें या न देखें, परंतु उसकी महिमा देवी से कम नहीं। उसके लिये आज रात को फिर तलवार चलाऊँगा।'

'कैसे ? क्यों ?'

'महाराज, ऐसे कि मुसलमान लोग उसको आज लेकर भाग जाने वाले हैं। लोचनसिंह उन्हें ऐसा करने से रोकेगा। बस।'

'उसे हमारे डेरे पर भिजवा दो लोचनसिंह, हम उसकी रक्षा करेंगे।'

लोचनसिंह ने उपेक्षा के साथ कहा—'राजमहल की रक्षा का भार दूसरों के सुपुर्द कर दिया गया है। कुँवर और हम उस देवी की रक्षा करेंगे।

राजा क्रोध से थर्रा गये। बोले—'रामदयाल, जनार्दन शर्मा को लिवा ला।'

रामदयाल के जाने पर लोचनसिंह ने कहा—'महाराज, एक विनती है।'

भर्राये हुये गले से राजा ने पूछा—'क्या ?'

'विनती करने भर का बस मेरा है।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'फिर मर्ज़ी महाराज की। वह लड़की अवश्य देवी या किसी का अवतार है। उसका बाप वज्र लोभी और प्रचंड मूर्ख है; परंतु बालिका शुद्ध, सरल और भोली-भाली है। हकीम जी से महाराज पूछ लें कि अब महाराज को ऐसी बातों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। महाराज के रोग को देखकर ही कभी-कभी मुझे डर लग जाता है।'

राजा विष का-सा घूँट पीकर चुप रहे। इतने में जनार्दन शर्मा आ गया। राजा ने ज़रा नरम स्वर में कहा—'शर्मा जी, मेरी दो आज्ञायें हैं।'

'महाराज !' जनार्दन ने कहा।

'एक तो यह कि जो मुसलमान-सेना यहाँ आई है, उसे किसी प्रकार यहाँ से हटा दो।'

'महाराज !' जनार्दन बोला और दूसरी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा।

'दूसरी यह कि लोचनसिंह को इसी समय मरवा कर झील में फिकवा दो।' राजा ने क्षोभातुर कंठ से कहा।

जनार्दन दोनों आज्ञाओं पर सन्नाटे में आकर एक बार लोचनसिंह और दूसरी बार राजा का मुँह निहार कर माथा खुजलाने लगा।

लोचनसिंह ने अपनी तलवार राजा के हाथ में देते हुये कहा—'मुझे मारने की यहाँ किसी की सामर्थ्य नहीं। जब तक यह मेरी कमर में रहेगी, तब तक आपकी इस आज्ञा के पालन किये जाने में सहस्रों बाधायें खड़ी होंगी। आप ही इससे मेरी गर्दन उतार दीजिये।'

राजा तलवार को नीचे पटक कर थके हुये स्वर में बोले—'तुम बहुत बातूनी हो गये हो, लोचन।'

'जैसा था, वैसा ही हूँ और वैसा ही रहूंगा भी। मरवा डालिये महाराज, परन्तु अपने शरीर को अब और मत बिगाड़िये।' लोचनसिंह ने हाथ बाँध कर कहा।

राजा बोले—'उठा लो तलवार लोचनसिंह, तुमको मारकर हाथ गंदा नहीं करूँगा।'

तलवार कमर में बाँधकर लोचनसिंह ने पूछा—'महाराज ने मुझे किस लिये बुलाया था ?'

'जाओ, जाओ।' राजा ने फिर गरम होकर कहा—'तुम्हारी हमको ज़रूरत नहीं है।'

'हैं महाराज।' लोचनसिंह ने सोचते-सोचते कहा—'उस देवी के घर का पहरा न लगाकर मैं आज रात राजमहल का ही पहरा दूँगा।'

राजा ने जनार्दन से पूछा—'यह सेना कहां की है ?'

'कालपी की अन्नदाता।' जनार्दन ने उत्तर दिया।

'भगा दो, मार दो, आग लगा दो, कोई हो, कहीं की हो।' राजा ने हाथ-पैर फेंककर आज्ञा दी।

'अन्नदाता—'

'बको मत जनार्दन, कालपी पर अब हमारा फिर राज्य होगा।'

'होगा अन्नदाता, परन्तु अभी कुछ विलम्ब है। दिल्ली गड़बड़ के तूफान में पड़ी हुई है, किन्तु तूफ़ान अभी काफ़ी ज़ोर पर नहीं है। कालपी के फ़ौजदार अलीमर्दान की सेना मालवे में मराठों से हारकर लौटी है, परन्तु अब भी इतनी अधिक है कि मुठभेड़ करना ठीक न होगा। दूसरे राज्यों का रुख हमसे कटा हुआ-सा है।'

'वही सब षड्यन्त्र, वही पुराना प्रपञ्च।' राजा ने तकिये के सहारे लेटकर धीरे-धीरे कहा—'तुम्हारे छली-कपटी स्वभाव से तो हमारे लोचनसिंह की बेलाग बात अच्छी।'

लोचनसिंह तुरन्त बोला—'नहीं महाराज, शर्माजी बुद्धिमान आदमी हैं, मैं तो कोरा सैनिक हूँ।'

राजा फिर बैठ गये। बोले—'अच्छा, तुम सब जाओ। जिसको जो देख पड़े, सो करे। मैं सवेरे कालपी की सेना को अकेले मार भगाऊँगा। मैं निज़ाम-इज़ाम को कुछ नहीं समझता। कालपी बुन्देलों की है।

जनार्दन और लोचनसिंह चले गये। परन्तु उन लोगों ने सिवा रक्षात्मक यत्नों के किसी आक्रमण-मूलक उपाय का प्रयोग नहीं किया। जनार्दन ने राजा के डेरे का अच्छा प्रबन्ध कर दिया। लोचनसिंह कई सरदारों के साथ पहरे पर स्वयं डट गया।

राजा ने रामदयाल को पास बुलाकर धीरे से कहा—'आज ही, थोड़ी देर में, अभी।'

'जो आज्ञा।' कहकर रामदयाल चला गया।

[५]

रात हो गई। खूब अन्धकार छा गया। जगह-जगह लोग आक्रमण रोकने की योजना में लग गये। गांव में खूब हल्ला-गुल्ला होने लगा, मानो असंख्य सैनिक किसी स्थान पर आक्रमण कर रहे हों। कुञ्जरसिंह नरपति के मकान के बाहर वेश बदले, शस्त्र-सज्जित टहल रहा था। पहरेवालों की टोलियाँ इधर-उधर से आकर, शोर करती हुईं, इस मकान के सामने कुछ क्षण के लिये खड़ी होकर 'अम्बा की जय, दुर्गा मैया की जय' कहती हुई गुज़र जाती थीं, परन्तु कुञ्जर चुपचाप टहल रहा था। केवल कभी-कभी कहीं दूर की आहट लेने के लिये एक-आध बार ठिठक जाता था। नरपति के किवाड़ बन्द थे; भीतर से सुगन्धित द्रव्यों के होम की खुशबू आ रही थी।

थोड़ी देर में एक मनुष्य ने आकर नरपतिसिंह के किवाड़ खटखटाये।

कुञ्जरसिंह ने कदाचित् उसे पहिचान लिया। भाला साधा और स्वर बदलकर पूछा—'कौन ?'

'महाराज का आदमी रामदयाल।' उस व्यक्ति ने दम्भ के साथ उत्तर दिया।

कुञ्जरसिंह ने कहा—'रामदयाल, इतनी रात तुम यहां कैसे ?'

बदले हुये स्वर के कारण रामदयाल न ताड़ पाया। समझा, दलीपनगर का कोई सैनिक है। बोला—'महाराज यहां की रक्षा के निमित्त बड़े चिंतित हो रहे हैं। सारी मुसलमानी सेना छिपे-छिपे यहीं आ रही है। अबेर-सबेर आक्रमण होगा, इसलिये मैं देवी को राजमहल में सुरक्षित रखने के लिये लिवाने आया हूं।' रामदयाल ने फिर कुन्डी खटखटाई। कुञ्जर भाला टेककर खड़ा हो गया और आकाश की ओर देखने लगा।

जब कई बार कुण्डी खटखटाने पर भी भीतर से कोई उत्तर न मिला, तब रामदयाल ने कुञ्जर से पूछा—'आप कौन हैं ? बतला सकते हैं, नरपतिसिंह कहां हैं और देवी जी कहां हैं ?'

'मैं हूं कुञ्जरसिंह। नरपतिसिंह भीतर हैं।'

रामदयाल सकपका गया, परंतु शीघ्र सँभलकर बोला,--राजा, यहां कैसे?'

'देवी की रक्षा के लिये।'

'लो, यह बहुत अच्छा हुआ, परन्तु क्या राजा अकेले ही रक्षा करने के लिये डटे रहेंगे?'

'हां, उसके लिये मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं पड़ेगी।'

इतने समय में रामदयाल ने अपनी स्वभाव-सिद्ध स्थिरता पुनः प्राप्त कर ली। बोला—'महाराज की आज्ञा है कि देवी राजमहल में आज की रात सुरक्षित रहें।'

वैसे ही भाले के बल अपने शरीर को थामे हुये कुञ्जर ने कहा—'रामदयाल देवी की रक्षा उसके मन्दिर में ही सबसे अच्छी होती है। तुम जाओ। मेरे साथ तर्क मत करो।'

दासी पुत्र होने पर भी कुञ्जर राजकुमार था और रामदयाल चाकर होने पर भी दलीप नगर के राजा का विश्वासपात्र। इसलिये कोई एक दूसरे से विचलित न हुआ।

रामदयाल बोला—'मैंने देवी की रक्षा का बीड़ा उठाया है।'

'मैंने तुमसे पहले।'

'उन्हें राजमहल में जाना होगा। महाराज की आज्ञा है। ऐसे रक्षा न हो सकेगी राजा।'

'कभी नहीं।'

'तो महाराज से जाकर यही कह दूं राजा?'

'कह दो।'

'मेरे प्राण बड़े सङ्कट में हैं। उधर आज्ञा का पालन नहीं होता, तो सिर से हाथ धोने पड़ेंगे, इधर आपको अप्रसन्न करता हूं, तो प्राणों पर आ बनेगी।'

कुञ्जरसिंह भभक उठा। बोला—'जा यहां से नीच। मैं तेरी प्रकृति से खूब परिचित हूं। यदि यहां कोई और होता, तो शायद तेरी चल जाती।

रामदयाल चला गया और थोड़ा नमक-मिर्च लगाकर सारी बात राजा से कह सुनाई।

[६]

गांव में रात भर हो-हल्ला होता रहा, परन्तु किसी ने किसी पर आक्रमण नहीं किया।

सवेरे नहा-धोकर राजा के सामने लोग इकट्ठे हुये।

सैयद आग़ा हैदर राजा की हालत देखकर सहम गया। धीरे से जनार्दन के कान में कहा—'महाराज को यहां लाने में बड़ी भूल हुई।'

'क्या करते ?' जनार्दन ने भी धीरे से कहा—'उनके हठ के सामने किसी की नहीं चलती। लोचनसिंह सरीखे वीर को कल संध्या-समय कत्ल करवाये डालते थे। उसने अपनी वीरता से अपने प्राण बचाये।' इतने में कुञ्जरसिंह आया। रात भर के जागरण के कारण आँखें फूली हुई थीं और चेहरे पर थकावट छाई हुई थी। प्रणाम करके राजा के पास जाकर यथानियम बैठ गया। राजा की आंखें चढ़ गईं, परन्तु कुछ कहा नहीं। देर तक किसी दरबारी की हिम्मत कोई बात कहने की नहीं पड़ी।

लोचनसिंह बहुत समय तक कभी चुप नहीं रहा था। बोला—'किसी ने हल्ला-वल्ला नहीं किया। जानते थे कि अभी तो एक ही आदमी की लाश ढोनी पड़ी है, आगे न मालूम कितनी लाशें ढोनी पड़ेंगी।'

कुञ्जरसिंह ने पूछा—'लाश को वे लोग कब उठा ले गये थे ?'

'हम लोगों के वहां से चले आने के थोड़ी ही देर पीछे।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया।

राजा ने रुखाई के साथ कहा—'हमको यह सब चबर-चबर पसन्द नहीं है।'

फिर सन्नाटा छा गया, इतना कि दूर से आने वाली रमतूलों और ढोल-ताशों की आवाज़ स्पष्ट सुनाई पड़ने लगी।

जनार्दन ने धीरे से राजवैद्य से कहा—'हकीमजी, कालपी की फ़ौज छापा मारने वाली है।'

'यह मुसलमानों के लिये मूर्खता की बात होगी, यदि उन्होंने कुछ आदमियों के अपराध के लिये गांव भर को सताया, या अपने राज्य की सेना पर धावा किया। रमतूलों और ढोल-ताशों की जो आवाज़ आ रही है, वे किसी की बारात के बाजे हैं।'

जनार्दन ने धीरे से मंतव्य प्रकट किया—'न-मालूम किस बुरी शायत में यहाँ आये थे।'

'सारा कुसूर लोचनसिंह का है।'

आग़ा हैदर ने अपने आस-पास कनखियों से देखते हुए सतर्कता के साथ कहा—'पंडितजी, यह ठाकुर एक दिन अपने राज्य को किसी गहरे खंदक में खपा देगा।'

जब इस तरह से किसी बड़ी जगह के सन्नाटे में दो आदमी कानाफूसी करते हैं, तब टोलियाँ-सी बनाकर अन्य उपस्थित लोग भी कानाफूसी करने लगते हैं।

स्थान-स्थान पर कानाफूसी होती देख राजा उस सन्नाटे को अधिक समय तक न सह सके। बोले—'लोचनसिंह!'

'महाराज!' उसने उत्तर दिया।

'तुम्हारे घराने में चामुंडराय की उपाधि चली आई है, जानते हो?'

'हाँ, महाराज, सारा संसार जानता है कि सिर-पर-सिर काटने के बाद यह उपाधि हम लोगों को मिली है।'

'वह तुमको प्यारी है?'

'हाँ महाराज, प्राणों से भी अधिक और कदाचित् इस संसार के संपूर्ण जीवों से अधिक।'

'यानी मुझसे भी बढ़कर, क्यों ठाकुर?'

'हाँ, महाराज।'

'निर्लज्ज, मूर्ख।'

'सो नहीं महाराज।' चामुंडराय की जो प्रतिष्ठा है, वह हृदय का खून बहाकर प्राप्त की गई है। किसी भी लोभ के वश में वह दलित नहीं हो सकती। बस, यही तात्पर्य था और कुछ नहीं।'

'लोचनसिंह, तुमने रात को कहाँ पहरा लगाया था ?'

'राजमहल पर।'

'झूठ बोलते हो। उस लड़की के यहाँ, जो देवी कहलाती है, रखवाली करने पर तुम भी तो थे ?'

'मैं न था महाराज।'

'काकाजू, वहाँ पर मैं अकेला ही था।' बहुत विनीत, परन्तु दृढ़ भाव के साथ कुञ्जरसिंह बोला।

'हाँ तुम अब बहुत मनचले हो गये हो।' राजा ने उपस्थित लोगों की परवा न करते हुए कहा—'तुम्हारे ये सब लक्षण मुझे बहुत अखरने लगे हैं। तुम क्या यह समझते हो कि ऐसी बेहूदा हरकतों से मैं प्रसन्न बना रहूँगा ?'

कुञ्जरसिंह स्थिर दृष्टि से एक ओर देखता रहा। उत्तर में कुछ नहीं बोला।

राजा लोचनसिंह की ओर एकटक दृष्टि में देखने लगे। लोचन ने नेत्र नीचे नहीं किये।

'आज तुम्हारी चामुण्डराई की परीक्षा है लोचनसिंह।' राजा ने कुछ क्षण पश्चात् कहा।

'आज्ञा हो महाराज।' लोचनसिंह बोला।

'यह मुसलमानी फ़ौज हमको और हमारे धर्म को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए आई है।' राजा ने कहा—'उन लोगों की आँख मन्दिर की मूर्ति तोड़ने और मूर्ति की पुजारिन—उस दाँगी की लड़की—को उड़ा ले जाने पर है। मेरी आज्ञा है, उस सेना का मुक़ाबिला करो और लड़की को सुरक्षित दलीपनगर पहुंचा दो।'

कुञ्जरसिंह काँप उठा। जनार्दन को रोमांच हो आया और लोचनसिंह की नाहीं पर सबकी आशा जा अटकी।

लोचनसिंह ने हाथ बाँधकर उत्तर दिया—'उस सेना का सामना करने के लिये मैं अभी तैयारी कराता हूँ, परन्तु अपने पास इस युद्ध के लिये काफ़ी सैनिक नहीं हैं। दलीपनगर से और सेना बुलाने का प्रबन्ध कर दीजिये। दूसरी आज्ञा जो दाँगी की लड़की को दलीपनगर पहुंचाने से सम्बन्ध रखती है, उसका पालन उस लड़की की इच्छा पर निर्भर है। यदि वह दलीपनगर न जाना चाहेगी, तो मैं उसे पकड़ कर न भेजूँगा।'

लोचनसिंह चला गया।

उसी समय ढोल-ताशों और रमतूलों का शब्द फिर सुनाई पड़ा। आग़ा हैदर ने कहा—'सवारी दलीपनगर वापस चली जाय, तो बहुत अच्छा। यहाँ शांति के साथ दवा-दारू होगी।'

'तुम सब गधे हो।' राजा ज़रा कष्ट के साथ बोले—'यह आवाज़ क्या है, इसका पता तुरन्त लगाओ, नहीं तो मार खाओगे। याद रखना, मैं लड़ूँगा और किसी को नहीं छोड़ूँगा।'

[७]

राजा के जासूसों ने बाजों का पता दिया। मालूम हुआ, एक दरिद्र ठाकुर की बारात आ रही है और दूरी पर, उसके पीछे-पीछे, छिपी-छिपी कालपी की सेना भी आक्रमण करने के लिये आ रही है।

हकीम ने मना किया, परंतु राजा ने एक न सुनी। घोड़े पर सवार होकर लड़ाई की तैयारी कर दी।

हकीम ने जनार्दन से कहा—'पंडितजी, इस राज्य की खैर नहीं है। अब क्या होगा?'

जनार्दन ने माथा ठोककर उत्तर दिया—'बड़ी कठिनाइयों से राज्य को अब तक बचा पाया है। मंत्री केवल गुणा-भाग जानता है। नीति-वीति कुछ नहीं समझता। कुमार दासी-पुत्र है। अधिकांश सरदार उसे अङ्गीकार न करेंगे। रानियों में लड़ाई ठनी रहती है। लोचनसिंह एक महज़ झंझावात है। उत्तराधिकारी कोई नियुक्त नहीं है। महाराजा का पागलपन और भी अधिक बढ़ गया है। राज्य की नैया डूबने से बचती नहीं दिखाई देती।'

'और, इधर कालपी के सैयद से यह बैर बिसाहना ग़ज़ब ही ढा देगा।' आग़ा हैदर ने कहा—'आज किसी तरह महाराज की जान बच जाय, तो बाद को सैयद को तो मैं मना लूँगा। जनार्दन, आपके पास रोग की दवा है, परंतु मौत की दवा किसके पास है? क्या ठीक है कि आज यह या हममें से कोई बचेंगे या नहीं। इस अकारण युद्ध से रोका भी; न माने। दलीपनगर से और सेना बुलाने के लिये हरकारा तो भेज दिया है। कदाचित् ज़रूरत पड़े। बड़ी सासत है। यदि लोचनसिंह बिगड़ जाते, तो राजा के सिर पर लड़ाई का भूत इतना ज़ोर न करता।'

यह कष्ट-कहानी शायद और लम्बी होती, परंतु इसी समय राजा की सवारी आ पहुँची। पीछे-पीछे कुञ्जरसिंह का घोड़ा था। जहाँ जनार्दन और हकीम खड़े थे, राजा ने घोड़े की बाग थामकर कहा—'आप

लोग लड़ नहीं सकते। पीछे रहें।' फिर मुड़कर कुञ्जरसिंह से कहा—'तुम मेरे साथ मत रहो। लोचनसिंह इधर आवें।'

लोचनसिंह तुरन्त घोड़ा कुदाकर आ गया।

'क्या आज्ञा है ?'

'कालपी की फौज पर धावा बोल दो।'

'जो हुकुम।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया। दलीपनगर की सेना जासूसों के बतलाये मार्ग पर चल पड़ी और लोचनसिंह की स्वल्प सावधानता पवन पर।

कुञ्जरसिंह मन मसोसकर पीछे रह गया था। नरपति के दरवाज़े के सामने से निकला। उधर दृष्टि गई। कुमुद को देखा। सचमुच अवतार। कुञ्जर ने नमस्कार किया। कुमुद ज़रा-सी—बहुत ज़रा-सी—मुस्कराई; शायद उसे मालूम भी न हुआ होगा कि मुस्करा रही हूं।

कुञ्जरसिंह आगे बढ़ गया।

जिस घर बारात आ रही थी, उसके दरवाजे पर तोरण-बंदनवार लगे हुए थे। वहीं होकर दलीपनगर की सेना निकली। राजा ने लोचनसिंह से पूछा—'क्या यहीं उस ठाकुर की बारात आ रही है ?'

'हाँ महाराज।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया।

राजा ने कहा—'बहुत दरिद्र मालूम होता है। द्वार पर कोई ठाटबाट नहीं।'

'होगा महाराज, किस-किसका दुख रोवें, यहाँ और सब कहीं ऐसे अनेक भरे पड़े हैं।'

'अजी नहीं।' राजा ने चलते-चलते कहा—'सब शरारत है, बदमाशी है; घर में संपत्ति गाड़कर रखते हैं, ऊपर से ग़रीबी का दिखलावा करते हैं। इस लड़ाई से लौट कर साहूकारों से सारी क्षति की पूर्ति कराऊँगा। बहुत दिनों से उनसे कुछ नहीं लिया है।'

लोचनसिंह कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर में दलीपनगर की छोटी-सी सेना पालर के बाहर जंगल के मुहाने पर पहुंच गई। ठाकुर की छोटी-सी

बारात एक ओर से आ रही थी। वह कुछ दूरी पर ठिठक गई। दूल्हा पालकी में था। कहार पालकी को अपने कंधों पर ही लिये रहे।

राजा ने लोचनसिंह से कहा—'इस घमंड को देखते हो ? पालकी नहीं उतारी गई। चाहूं, तो अभी दूल्हा के खण्ड-खण्ड कर डालू।'

लोचनसिंह ने उपेक्षा के साथ कहा—'महाराज, यह बुन्देला की बारात है। दूल्हा किसी के लिये भी पालकी से नहीं उतरेगा। निर्धन हों, चाहे श्रीसंपन्न, परन्तु बुन्देले आपस में सब बराबर हैं।'

'सब बराबर हैं ?' राजा नें कालपी की चढ़ती हुई सेना की चिंता न करके पूछा—'सब बराबर हैं ? तुम और हम ?'

'मैं प्रजा हूं।' लोचनसिंह ने उसी स्वर में कहा—'वह बुन्देला आपकी प्रजा नहीं है। उसकी पालकी नीची नहीं हो सकती।' फिर चिल्लाकर कहारों से बोला—'ले जाओ अपनी पालकी को।' पालकी और बारात कतराकर निकली।

थोड़ी देर में कालपी की सेना से मुठभेड़ हो गई।

राजा, लोचनसिंह और कुन्जरसिंह थोड़ी देर घोड़ों पर ही लड़ते रहे। आधी घड़ी पीछे राजा का घोड़ा आहत हो गया। राजा के घोड़े से उतरते ही उनके अन्य सरदार भी पैदल लड़ने लगे।

कालपी की सेना बड़ी दृढ़ता और दिलेरी के साथ लड़ी, परन्तु वह अल्पसंख्यक थी।

दलीपनगर की सेना भी बहुत न थी। एक को दूसरे के बल का पता न था। टुकड़ियों में बाँटकर दोनों ओर की सेनाएँ भिड़ गईं और कटने लगीं।

कालपी की एक टुकड़ी ने राजा को उनके कुछ सरदारों-सहित घर दबाया। रोग ग्रस्त होने पर भी राजा पागलों की तरह लड़ने लगे। कई आक्रमणकारी हताहत हुए, परन्तु ठेल-पर-ठेल होने के कारण एक किनारे दूर तक राजा को हटना पड़ा। उनके साथी जरा दूर पड़ गये। राजा मुश्किल से अपना बचाव करने लगे। क्षण-क्षण पर यह भासित

होता था कि राजा अब आहत हुए और अब। सहायता के लिये ऐसे समय में पुकारना राजा की बची-खुची शक्ति के बाहर था। इतने में पेड़ों की एक झुरमुट के पीछे इधर-उधर कुछ आदमी जोर से भागे। हमला करनेवालों का ध्यान जरा उचटा कि ब्याह का झाँगा पहने और मुकुट बाँधे बारात का वह दूल्हा तलवार भाँजता हुआ वहाँ आ टूटा। ठेठ बुन्देलखण्डी में बोला—'काकाजू, एक हाथ मोरोई देखने में आवे।' उधर पालकी पटककर भागे हुए कहारों ने कुहराम मचाया।

वह दूल्हा इतने वेग से लड़ा कि जगह-जगह से उसका झाँगा कट-फट गया, रुधिर की धार बदन से वह निकली और सिर का मौर टुकड़े टुकड़े होकर धरती पर रूँद गया। उसी समय दलीपनगर की सेना सिमट आई। तलवार अनवरत रूप से चली। ऐसे चली कि कौंलपीवालों के छक्के छूट गये। जो सशक्त थे वे भाग खड़े हुए। मालवा से एक लड़ाई तो हारकर वे लोग आए ही थे, इस लड़ाई में भी एक बार पैर उखड़ने पर फिर भागने में ही कुशल देखी।

संध्या होने के पूर्व ही युद्ध समाप्त हो गया। कालपी की घबराई हुई सेना कालपी की ओर कोसों दूर निकल गई।

राजा घायल हो गये थे और बहुत थक गये थे। दूल्हावाली पालकी में राजा को लिटाकर ले चले। दूल्हा साथ-साथ था। शरीर से रक्त बह रहा था, परन्तु उसकी दृढ़ता में कमी नहीं दिखलाई पड़ती थी। जान पड़ता था, मानो लोहे का बना हो।

राजा ने पालकी में लेटे-लेटे क्षीण स्वर में उसका नाम पूछा।

उत्तर मिला—'अन्नदाता, मुझे देवीसिंह कहते हैं।'

'ठाकुर हो?'

'हाँ, महाराज।'

'बुन्देला?'

'हाँ, महाराज।'

'जीते रहो। तुमको ऐसा पुरस्कार दूँगा, जैसा कभी किसी को न मिला होगा।'

इस समय जनार्दन शर्मा और आग़ा हैदर भी पालकी के पास गाँव की ओर से आ चुके थे और बड़े आदर की दृष्टि से उस दरिद्र दूल्हा को देख रहे थे। कुञ्जरसिंह उदास-सा पीछे-पीछे चला आ रहा था। लोचनसिंह कुछ गुनगुनाता हुआ चला जा रहा था। वंदनवार वाले दरवाज़े पर जब राजा की पालकी पहुंची, तब देवीसिंह से राजा बोले,—'देवीसिंह, अब तुम अपना ब्याह करो। टीके का मुहूर्त आ गया है। ब्याह होने के बाद दलीपनगर आना—अवश्य आना, भूलना मत।'

पालकी दरवाजे पर ठहर गई। दूल्हा ने पालकी के कोर हाथ में पकड़कर क्षीण स्वर में कहा—'मेरा व्याह तो रणक्षेत्र में हो गया। अब महाराज के चरणों में मृत्यु हो जाय, बस यही एक कामना है।'

जब तक कोई सँभालने को दौड़ता, तब तक देवीसिंह धड़ाम से पालकी का सहारा छोड़कर अपनी भावी ससुराल के सामने गिर पड़ा।

लोचनसिंह ने आगे बढ़कर कहा—'वाह, क्या बाँकी मौत मर रहा है। सब इसी तरह मरें, तो कैसे आनन्द की बात हो।'

राजा ने तीव्र स्वर में कराहते हुये कहा—'काठ के कठोर कलेजे वाले मनुष्य, इस नन्हे-से दूल्हा की मौत पर तू खुश हो रहा है। सँभाल इसको।'

'यह न होगा।' लोचनसिंह ने अविचलित स्वर में कहा—'क्षत्रिय को विना किसी सहारे और लाड़-दुलार के मरने दीजिये। वह बचेगा नहीं।' फिर पालकी वालों से बोला—'महाराज को शिविर में ले चलो। हकीमजी तुरंत दवा-दारू का वन्दोवस्त करें। मैं इसकी क्षत्रियोचित अंत्येष्टि-क्रिया का प्रवन्ध किये देता हूं।'

राजा कुछ कहने को हुये; परन्तु दर्द ने फिर न बोलने दिया। इतने में कुञ्जरसिंह वहाँ आ गया। तुरंत घोड़े से उतर पड़ा। अचेत देवीसिंह को या उसकी लाश को घोड़े पर रखकर आगे बढ़ गया। लोचनसिंह ने पीछे

से आकर कहा—'आज देवी ने लाज रख ली। चलो राजा, पुजारी को कुछ देते चलें।'

कुञ्जरसिंह ने कोई उत्तर न दिया। जब वे दोनों नरपतिसिंह के मकान के सामने पहुंचे, राजा की पालकी आगे निकल गई थी। लोचनसिंह ने घोड़े पर चढ़े-चढ़े नरपति को पुकारा। दरवाजे पर साँकल चढ़ी किसी ने उत्तर न दिया।

कुञ्जरसिंह ने आगे बढ़ते हुये कहा—'आओ, मैं नहीं ठहरूँगा।'

लोचनसिंह ने फिर पुकार लगाई। उस मकान से तो कोई उत्तर नहीं मिला, परन्तु एक पड़ोसी ने किवाड़ों के पीछे से कहा—'वह तो देवी के साथ दोपहर के बाद न जाने कहाँ अन्तर्धान हो गये।'

लोचनसिंह चल दिया। कुञ्जरसिंह कुछ और प्रश्न करना चाहता था, परन्तु वह पड़ोसी पोर से खिसककर अपने घर के किसी भीतरी भाग में जा छिपा। लोचनसिंह बोला—'देवी कूच कर गई। चलिये।'

सब लोग डेरे पर पहुँचे। राजा की मरहम पट्टी हो गई। घाव काफ़ी लगे थे, परन्तु कोई भय की बात न जान पड़ती थी। लोग रात-भर उपचार में लगे रहे। देवीसिंह को भी बुलाया गया। कुञ्जरसिंह उसकी दवा-दारू करता रहा। अवस्था चिन्ताजनक थी।

दलीपनगर के सरदार राजा को दूसरे ही दिन दलीपनगर ले गये। राजा ने देवीसिंह को भी साथ ले लिया।

[८]

दलीपनगर पहुंचने पर राजा के घाव अच्छे हो गये, परन्तु पागलपन वहुत बढ़ गया और उनकी दूसरी बीमारी ने भी भयानक रूप धारण किया। देवीसिंह को अच्छे होने में कुछ समय लगा। राजा का स्नेह उस पर इतना बढ़ गया कि निजी महल में उसे स्थान दे दिया।

राजा का स्नेह-भाजन होने के कारण बड़ी रानी भी देवीसिंह पर कृपा करने लगीं और छोटी रानी अकारण ही घृणा।

रामदयाल वचपन से महलों में आता-जाता था। उन दिनों तो वह राजा की विशेष टहल ही करता था। रानियाँ उससे पर्दा नहीं करती थीं। छोटी रानी का वह विशेष रूप से कृपा-पात्र था, परन्तु इतना चतुर था कि वड़ी रानी को भी नाखुश नहीं होने देता था।

एक दिन किसी काम से छोटी रानी के महल में गया। छोटी रानी ने राजा की तवियत का हाल पूछा। वह स्वयं राजा के पास महीने में एकाध बार जाती थी।

अवस्था का समाचार सुनकर रानी ने कहा—'अभी तक महाराज ने किसी को उत्तराधिकारी नहीं बनाया है। यदि भगवान् रूठ गये, तो बड़ी विपद आयेगी।'

बात टालने के लिये रामदयाल बोला—'महाराज, काकाजू की तवियत जल्दी अच्छी हो जायगी। हकीमजी ने विश्वास दिलाया है।'

'भगवान् ऐसा ही करें। परन्तु हकीम की बात का कुछ ठीक नहीं।' फिर कुछ सोचकर रानी ने कहा—'कुञ्जरसिंह राजा तो दासी के पुत्र हैं, उन्हें गद्दी नहीं मिल सकती। वैसे भी राजसिंहासन उनकी रोनी सूरत के विरुद्ध है।'

'इसमें क्या संदेह है महाराज!' रामदया हाँ मिलाई।

'महाराज ने अपने महलों में उस नये म क्यों रक्खा है।?'

'एक बुन्देला ठाकुर है महाराज, पालर की लड़ाई में वह बहुत आड़े आये थे, इसलिये दवा-दारू के लिये अपने खास महलों में काकाजू ने रख लिया है।'

'जनार्दन शर्मा की भी उस पर कृपा है या नहीं? मन्त्री तो बेचारा अपने बाप का लड़का होने के कारण मंत्रित्व कर रहा है। उस गधे में गाँठ की ज़रा भी बुद्धि नहीं। लोचनसिंह जंगल के बाँस की तरह सीधा है। बस, राज्य तो धूर्त जनार्दन कर रहा है। बड़ी रानी के महलों में भी जुहार करने जाता है या नहीं?'

'महाराज, वह तो सभी जगह आते-जाते हैं।'

'अच्छा, एक बात बतला। जनार्दन महाराज के कान में कभी कुछ कहता है या नहीं?'

'मेरे सामने अभी तक तो कुछ कहा नहीं। महाराज तो उन्हें गाली देते रहते हैं।'

'लोचनसिंह तो आते-जाते रहते हैं!'

'नित्य महाराज, परंतु उनसे काकाजू की बातचीत बहुत कम होती है।'

'तब बातचीत किससे ज्यादा होती है?'

रामदयाल अधिक खोलकर कुछ नहीं कहना चाहता था, परन्तु अब निर्वाह न होते देखकर बोला—'शर्माजी के साथ ही बहुत बत-बढ़ाव होता रहता है।'

'किस विषय पर?'

'विषय तो महाराज, कोई खास नहीं है। परन्तु कभी-कभी देवीसिंह ठाकुर की प्रशंसा करते हुये सुना है।'

'मैं सब समझती हूं।' रानी ने सोचकर कहा। फिर एक क्षण बाद बोली—'रामदयाल, यदि तू धर्म पर टिका रहा, तो प्रतिफल पावेगा।'

रामदयाल ने नम्रता-पूर्वक कहा—'महाराज, मैं तो चरणों का दास हूं।'

'तू मुझे महाराज के महलों के समाचार नित्य दिया कर। अब जा और जरा लोचनसिंह को भेज दे।'

थोड़े समय उपरांत लोचनसिंह आया। दासी द्वारा पर्दे में रानी से बातचीत हुई।

रानी ने कहलवाया—'लोचनसिंह, भगवान न करे कि महाराज का अनिष्ट हो; परन्तु यदि अनहोनी हो गई, तो राज्य का भार किसके सिर पड़ेगा?'

'जिसे महाराज कह जायँ।'

'तुम्हारी क्या सम्मति है?'

'जो मेरे स्वामी की होगी।'

'या जनार्दन की।'

'महाराज की आज्ञा से जनार्दन का सिर तो मैं एक क्षण में काटकर तालाब में फेंक सकता हूँ।'

'यदि महाराज कोई आज्ञा न छोड़ गये, तो?'

'वैसी घड़ी ईश्वर न करे आवे।'

'और यदि आई?'

'यदि आई, तो उस समय जो आज्ञा होगी या जैसा उचित समझूँगा, करूंगा।'

रानी कुछ सोचती रही। अन्त में उसने यह कहलवाकर लोचनसिंह को विदा किया कि 'भूलना मत कि मैं रानी हूं।'

'इस बात को बार-बार याद करने की मुझे आवश्यकता न पड़ेगी। यह कहकर लोचनसिंह चला। रानी ने फिर रुकवा दिया। दासी द्वारा कहलवाया—'सिंहासन पर मेरा हक़ है, भूल तो न जाओगे?'

उसने उत्तर दिया—'जिसका हक़ होगा, उसी की सहायता के लिये मेरा शरीर है।'

'और किसी का नहीं है।'

'मैं इस समय इस विषय में कुछ नहीं कह सकता।'

'स्वामिधर्म का पालन करना पड़ेगा।'

'यह उपदेश व्यर्थ है।'

'तुम्हारे आँखें और कान हैं। किस पक्ष को ग्रहण करोगे?'

'जिस पक्ष के लिये मेरे राजा आज्ञा दे जायँगे और यदि वह बिना कोई आज्ञा दिये सिधार गये, तो उस समय जो मेरी मौज में आवेगा।' लोचनसिंह चला गया। रानी बहुत कुढ़ी।

[६]

कुछ दिनों बाद बड़नगर से यह उलाहना आया कि दलीपनगर की सेना ने अपने राज्य की सीमा के बाहर उपद्रव किया और कालपी के मित्र राज्य को बड़नगर का शत्रु बनाने में कसर नहीं लगाई। उलहने के साथ इन आरोपों का उत्तर-मात्र पूछा गया था, उलहनों की पीठ पर कोई धमकी नहीं थी; इसलिये जनार्दन ने राजा को बिगड़ी हुई अवस्था में यह समाचार नहीं सुनाया। नाना प्रकार के बहाने बनाकर ओरछे से क्षमा मांग ली।

इसके बाद ही कालपी से एक दूत आया। दिल्ली में फ़र्रुखसियर नाम-मात्र का राज्य या कुराज्य कर रहा था। चारों ओर मार-काट मची हुई थी। अन्तिम मुग़ल-सम्राट् की थपेड़ों ने जो भयंकर लहर भारतवर्ष में उत्पन्न कर दी थी, उसने क्रांति उपस्थित कर दी। दिल्ली के शासन का संचालन सैयद भाई कर रहे थे। किसी राजा या रजवाड़े को चैन न था। सब शासक परस्पर गुट्टों में एक दूसरे से उलझे हुये थे। सब अपनी-अपनी स्वतंत्रता की चिंता में डूबे हुए थे। उत्तर-भारत में सैयद भाइयों की तूती बोल रही थी। उनकी एक छाया सैयद अलीमर्दान के रूप में कालपी-नामक नगर में भी थी, जो उस समय बुन्देलखण्ड की कुञ्जी और मालवे का द्वार समझा जाता था। सैयद भाइयों को उत्तर-भारत के ही झगड़ों से अवकाश न था, दक्षिण-भारत अलग दम घोटे डालता था। अलीमर्दान का भविष्य बहुत कुछ सैयद भाइयों के पल्ले से अटका हुआ था। दलीपनगर उस समय के राजनीतिक नियमानुसार दिल्ली का आश्रित राज्य था। दिल्ली को उस समय दलीपनगर और कालपी दोनों की ज़रूरत थी। कम-से-कम दिल्ली को उन दोनों से आशा भी थी। कालपी वस्तुतः दिल्ली की सहायक थी, दलीपनगर केवल शाही कागजों में। दोनों की मुठभेड़ में दिल्ली को कालपी का पक्ष लेना अनिवार्य सा था। परन्तु यह तभी हो सकता था, जब दिल्ली को अपनी अन्य

उलझनों से साँस लेने का अवकाश मिलता। अलीमर्दान इस बात को जानता था और उसे यह भी मालूम था कि न जाने किस समय कहाँ के लिये दिल्ली से बुलावा आ जाय, इसलिये उसने पालर के पास अपनी टुकड़ी के ध्वस्त किये जाने पर तुरंत कोई बड़ी सेना बदला लेने के लिये नहीं भेजी, केवल चिट्ठी भेज दी। एक पत्र दिल्ली भी भेजा कि दलीपनगर बाग़ी हो गया है। परंतु चिट्ठी में पद्मिनी का कोई जिक्र न किया। अपनी उलझनों की मात्रा में एक की और बढ़ती होती देखकर बादशाह ने उसे विशेष अवकाश के अवसर पर विचार करने के लिये रख लिया।

जो चिट्ठी दलीपनगर आई थी, उसमें ये चार माँगें की गई थीं—

(१) पालर की रूपवती दाँगी-कन्या एक महीने के भीतर दिल्ली के शाहंशाह की सेवा में कालपी द्वारा भेज दी जाय।

(२) लोचनसिंह-नामक सरदार को ज़िन्दा या मरा हुआ भेज दिया जाय।

(३) एक लाख रुपया लड़ाई के नुक़सान का हर्जाना पहुंचा दिया जाय।

(४) दलीपनगर का कोई जिम्मेदार कर्मचारी या सरदार राज्य की ओर से कालपी आकर क्षमा-याचना करे।

यदि एक भी माँग पूरी न की गई, तो दलीपनगर की बस्ती और सारे राज्य को शाही सेना द्वारा खाक में मिला देने का प्रस्ताव भी उसी चिट्ठी में किया गया था।

यह चिट्ठी मंत्री को दी गई। मंत्री ने जनार्दन के पास भेज दी। चिट्ठी पाकर जनार्दन गूढ़ चिंता में पड़ गया। हर्जाना देकर और माफ़ी माँगकर पिंड छुड़ा लेना तो व्यवहारिक जान पड़ता था, परंतु बाक़ी शर्तें बहुत टेढ़ी थीं। पद्मिनी बादशाह के लिये नहीं माँगी गयी थी, बादशाह की ओट लेकर अलीमर्दान ने उसे अपने लिये चाहा था, यह बात जनार्दन की समझ में सहज ही में आ गई। लोचनसिंह को जीवित या मृत किसी भी अवस्था में कालपी भेजना दलीपनगर में किसी के भी बल के बाहर

की बात थी । किंतु सबसे अधिक टेढ़ा प्रश्न उस समय इन राजा के सम्मुख उपस्थित करने का था ।

बिना पेश किये बनता नहीं था और पेश करने की हिम्मत पड़ती न थी। जनार्दन ने आग़ा हैदर को सब हाल सुनाकर सलाह की। 'हक़ीम जी, या तो अब राजा को जल्दी स्वस्थ करो, नहीं तो मुझे छुट्टी दो। कहीं गङ्गा किनारे अकेले बैठकर राम-भजन करूँगा।' जनार्दन ने कहा।

हकीम ने कहा—'यदि आपका हौसला पस्त हो गया, तो इस राज्य की पूरी बरबादी ही समझिये।'

जनार्दन जरा मचला। बोला—'नहीं हकीम जी, अब सहा नहीं जाता। रोज़-रोज़ नई-नई मुश्किलें नज़र आती हैं। राजा दिन पर दिन रोग में डूबते चले जाते हैं और हर घड़ी जो गालियाँ खाने को मिलती हैं, उनका कोई हिसाब नहीं। अब आप इस आफ़त को सँभालिये, मेरे बूते की नहीं है।'

'राजा अब चंगे नहीं होते।' आग़ा हैदर ने उसास लेकर कहा।

'पहले ही कह दिया होता।'

'तो क्या होता ? कुहराम मचाने के सिवा और क्या कर लेते ?'

'नाहक इतना दम-दिलासा दिलाये रहे। अब क्या करें ? कोई राज्य साथ देने को तैयार न होगा। सिवा मराठों का आश्रय लेने के और कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। सो उसके बदले आधे राज्य से यों ही हाथ धोने पड़ेंगे।'

हकीम के मन में जरा बल पड़ गया। बोला—'जितना करते बना मैंने इलाज किया। मैं कोई फ़रिश्ता तो हूं नहीं कि रोग को छू-मंतर कर दूं।'

जनार्दन ने खिसियाकर कहा—'इस कालपी की चिट्ठी को आप ही राजा के सामने पेश करें।'

उलझनों से साँस लेने का अवकाश मिलता। अलीमर्दान इस बात को जानता था और उसे यह भी मालूम था कि न जानें किस समय कहाँ के लिये दिल्ली से बुलावा आ जाय, इसलिये उसने पालर के पास अपनी टुकड़ी के ध्वस्त किये जाने पर तुरंत कोई बड़ी सेना बदला लेने के लिये नहीं भेजी, केवल चिट्ठी भेज दी। एक पत्र दिल्ली भी भेजा कि दलीपनगर बाग़ी हो गया है। परंतु चिट्ठी में पद्मिनी का कोई ज़िक्र न किया। अपनी उलझनों की मात्रा में एक की और बढ़ती होती देखकर बादशाह ने उसे विशेष अवकाश के अवसर पर विचार करने के लिये रख लिया।

जो चिट्ठी दलीपनगर आई थी, उसमें ये चार माँगें की गई थीं—

(१) पालर की रूपवती दाँगी-कन्या एक महीने के भीतर दिल्ली के शाहंशाह की सेवा में कालपी द्वारा भेज दी जाय।

(२) लोचनसिंह-नामक सरदार को ज़िन्दा या मरा हुआ भेज दिया जाय।

(३) एक लाख रुपया लड़ाई के नुक़सान का हर्जाना पहुंचा दिया जाय।

(४) दलीपनगर का कोई ज़िम्मेदार कर्मचारी या सरदार राज्य की ओर से कालपी आकर क्षमा-याचना करे।

यदि एक भी माँग पूरी न की गई, तो दलीपनगर की बस्ती और सारे राज्य को शाही सेना द्वारा खाक में मिला देने का प्रस्ताव भी उसी चिट्ठी में किया गया था।

यह चिट्ठी मंत्री को दी गई। मंत्री ने जनार्दन के पास भेज दी। चिट्ठी पाकर जनार्दन गूढ़ चिंता में पड़ गया। हर्जाना देकर और माफ़ी माँगकर पिंड छुड़ा लेना तो व्यवहारिक जान पड़ता था, परंतु बाक़ी शर्तें बहुत टेढ़ी थीं। पद्मिनी बादशाह के लिये नहीं माँगी गयी थी, बादशाह की ओट लेकर अलीमर्दान ने उसे अपने लिये चाहा था, यह बात जनार्दन की समझ में सहज ही में आ गई। लोचनसिंह को जीवित या मृत किसी भी अवस्था में कालपी भेजना दलीपनगर में किसी के भी बल के बाहर

की बात थी । किंतु सबसे अधिक टेढ़ा प्रश्न उस समय इन बातों को राजा के सम्मुख उपस्थित करने का था ।

बिना पेश किये बनता नहीं था और पेश करने की हिम्मत पड़ती न थी । जनार्दन ने आग़ा हैदर को सब हाल सुनाकर सलाह की । 'हकीम जी, या तो अब राजा को जल्दी स्वस्थ करो, नहीं तो मुझे छुट्टी दो । कहीं गङ्गा किनारे अकेले बैठकर राम-भजन करूँगा ।' जनार्दन ने कहा ।

हकीम ने कहा—'यदि आपका हौसला पस्त हो गया, तो इस राज्य की पूरी बरबादी ही समझिये ।'

जनार्दन जरा मचला । बोला—'नहीं हकीम जी, अब सहा नहीं जाता । रोज-रोज नई-नई मुश्किलें नजर आती हैं । राजा दिन पर दिन रोग में डूबते चले जाते हैं और हर घड़ी जो गालियाँ खाने को मिलती हैं, उनका कोई हिसाब नहीं । अब आप इस आफ़त को सँभालिये, मेरे बूते की नहीं है ।'

'राजा अब चंगे नहीं होते ।' आग़ा हैदर ने उसास लेकर कहा ।

'पहले ही कह दिया होता ।'

'तो क्या होता ? कुहराम मचाने के सिवा और क्या कर लेते ?'

'नाहक इतना दम-दिलासा दिलाये रहे । अब क्या करें ? कोई राज्य साथ देने को तैयार न होगा । सिवा मराठों का आश्रय लेने के और कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता । सो उसके बदले आधे राज्य से यों ही हाथ धोने पड़ेंगे ।'

हकीम के मन में जरा बल पड़ गया । बोला—'जितना करते बना मैंने इलाज किया । मैं कोई फ़रिश्ता तो हूं नहीं कि रोग को छू-मंतर कर दूँ ।'

जनार्दन ने खिसियाकर कहा—'इस कालपी की चिट्ठी को आप ही राजा के सामने पेश करें ।'

'मन्त्री होंगे आप, चिट्ठियाँ पढ़कर सुनाऊँ मैं !' हकीम ने त्योरी बदलकर कहा—'मुझे सिवा वैद्यक के कुछ नहीं करना है। जिसे चारों तरफ़ अपने हाथ फेंकने हों, वही यह काम खूबी के साथ कर सकता है। यदि राजा या आप लोग मुकर जायेंगे, तो अपने घर बैठूँगा। खुदा ने रोटी-भाजी के लायक़ बहुत दिया है।'

'जब दलीपनगर का ही सत्यानाश हो जायगा, तब क्या खाओगे हकीम जी ?'

'जो जनार्दन महाराज खायेंगे, वही बन्दा भी खायगा। आप ही ने इतनी सम्पत्ति जोड़ रक्खी है कि सबसे ज्यादा चिंता आपको है।'

जनार्दन का क्षोभ कम हो गया। भाव बदलकर बोला—'हकीम जी, मैं इतना घबरा गया हूँ कि कोई उपाय नहीं सूझता। अपनों से न कहूँ, तो किसके सामने दुःख रोऊँ ? आप ही कहिये, आप कहते थे कि कालपी के सैयद को तो मैं किसी न किसी तरह मना लूँगा।'

'पण्डितजी।' हकीम ने उत्तर दिया—'वह मेरा रिश्तेदार तो है नहीं, अपनी जबान और ईमान का भरोसा था। मैंने स्वप्न में भी न सोचा था कि सैयद होकर ऐसा ज़ालिम निकलेगा।' फिर एक क्षण सोचकर बोला—'सैयद की शिकायत बिलकुल अन्याय-मूलक नहीं है।'

जनार्दन ने सोचकर कहा—'अब इस चिट्ठी को मैं ही पेश करता हूँ। परन्तु आप कृपा कर के मौजूद रहियेगा।'

आग़ा हैदर ने स्वीकार किया। एक दूसरे से अलग होने के समय दोनों अशान्त थे। जनार्दन इस कारण कि निश्चय और अभ्यास के विरुद्ध वह अपने भावों की उत्तेजना को संयत न रख सका और वैद्य इस कारण कि जनार्दन सदृश मित्र भी मुझे अयोग्य वैद्य समझते हैं।

जनार्दन आग़ा हैदर की उपस्थिति में राजा के पास पहुँच गया। परन्तु उसने अपने पैमाने के हिसाब से एक बुद्धिमानी का काम किया। दूत के ज़रिये कालपी जवाब भेज दिया कि हरजे की रक़म एक लाख बहुत है, परन्तु दी जायगी और माँफ़ी माँगने के लिये प्रधान राज्य कर्म-

चारी जनार्दन शर्मा स्वयं शीघ्र दरबार में उपस्थित होंगे। दाँगी-कन्या दलीपनगर राज्य की हद के बाहर कहीं लापता है और लोचनसिंह बहुत बीमार हैं, एक-आध दिन के ही मेहमान हैं, इसलिये उनके लिये चिंता न की जाय। जनार्दन राजा के गाली-गलौज के लिये दूत को टिकने नहीं देना चाहता था। इसलिये यह सम्वाद देकर लौटा दिया। उसने सोचा कुछ समय मिल जायगा, इस बीच में बाहर की घटनाओं के परखने का अवसर हस्तगत हो जायगा और अपनी राजनीति को तदनुकूल ढालने और गढ़ने में आसानी रहेगी।

[१०]

जनार्दन का स्वभाव था कि जब तक बला टालते बने, टाली जाय उसका मुक़ाबिला केवल उस समय किया जाय, जब टालने का अन्य को उपाय नज़र न आये।

राजा सुनें या न सुनें, समझें या न समझें, परन्तु परम्परागत रीति के अनुसार कालपी की चिट्ठी लेकर उनके पास जाना ही पड़ेगा। रह-रहकर धैर्य खिसक रहा था और जी चाहता था कि राज्य छोड़कर कहीं चले जायें, परन्तु बाग़-बग़ीचे थे, मकान थे, अनाज और रुपये थे और थी प्रधान मन्त्री के नाम से पुकारे जाने की आशा।

राजा के सामने पहुँचते ही जनार्दन का मन और भी छोटा हो गया। उनकी तबियत आज और भी ज्यादा ख़राब थी। वह बहुत हँस रहे थे और बिलकुल बेसिर-पैर की बातें कर रहे थे। आग़ा हैदर मौजूद था।

राजा ने जनार्दन से खूब हँसकर कहा—'कहो बम्हनऊ, आजकल किस घात में हो? तुम और कुञ्जर मिलकर राज्य करोगे? याद रखना, वह भेड़िया लोचनसिंह तुम सबों को खा जायगा।'

जनार्दन हाथ जोड़े सिर नीचा किये रहा।

'तुम्हारे इस अवनत मस्तक पर अगर दो सेर गोबर लपेट दिया जाय, तो कैसा रहे?' राजा ने अट्टहास करके पूछा?

'महाराज का दिया सिर है, इनकार थोड़े ही है।' जनार्दन ने विनीत भाव से उत्तर दिया।

'हाँ-हाँ।' राजा ने उसी तरह कहना जारी रक्खा—'इसी विनय से तो तुम दुनियाँ को ठगते रहते हो महाराज। कितना धन और अन्न इकट्ठा कर लिया है, उफ़! सोचकर डर लगता है। मरने के बाद सब सिर पर धरकर ले जायगा।'

फिर यकायक गम्भीर होकर बोले—'हकीमजी, बचूँगा या मरूँगा?'

'अभी महाराज बहुत दिन जियेंगे।' राज-भक्त हकीम ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया, परन्तु स्वर में विश्वास की खनक न थी। तकिये पर सिर रखकर राजा बोले—'तब कुञ्जरसिंह राज्य करेगा। वही करे, कोई करे। जनार्दन तुम राज्य करोगे ?'

'महाराज, ऐसा न कहें। ब्राह्मणों का काम राज्य करने का नहीं है।' जनार्दन ने ज़रा काँपकर कहा। राजा किसी गुप्त पीड़ा के मारे कराहने लगे।

इतने में लोचनसिंह वहाँ आया। प्रणाम करके बैठ गया।

लोचनसिंह ने हकीम से धीरे से पूछा—'आज अवस्था क्या कुछ अधिक भयानक है।'

'नहीं, ऐसी कुछ अधिक नहीं।' उत्तर मिला।

लोचनसिंह बोला—'आप सदा यही कहते रहते हैं, परन्तु महाराज के जी के सम्भलने का रत्ती भर भी लक्षण नहीं दिखलाई देता है। सच्ची बात तो यह है कि राजा को यह बीमारी आप ही ने दी है।'

'मैंने।' हकीम ने साश्चर्य कहा।

'हाँ, आपने, निस्सन्देह आपने और किसी ने नहीं दी। बुढ़ापे में जवानी बुला देने का नुसखा आप ही ने बतलाया। न मालूम किन-किन दवाओं की गरमी से महाराज का दिमाग़ आप ही ने जलाया है।'

दाँत पीसकर आग़ा हैदर महल की छत की ओर देखने लगा।

राजा का ध्यान आकृष्ट हुआ। जनार्दन से पूछा—'क्या गड़बड़ है ? क्या मेरे ही महल में किसी षड्यन्त्र की रचना कर रहे हो ?' जनार्दन के उत्तर देने के पूर्व ही लोचनसिंह बोला—'षड्यन्त्रों का समय भी महाराज इन लोगों ने मिल-जुलकर बुला लिया है; परन्तु जब तक लोचनसिंह के हाथ में तलवार है, तब तक किसी का कोई भी षड्यन्त्र एक क्षण नहीं चल पावेगा।'

'क्या बात है ?' राजा ने आँखें फैलाकर पूछा।

लोचनसिंह ने तुरन्त उत्तर दिया—'महाराज अपने किसी उत्तराधिकारी को नियुक्त कर दें, नहीं तो शायद बीमारी के साथ-साथ गोलमाल भी बढ़ता चला जायगा। जगह-जगह लोग चर्चा करते हैं 'अब कौन राजा होगा?' जगह-जगह लोग सोचते होंगे 'मैं राजा होऊँगा, मैं राजा बन जाऊँगा। तबियत चाहती है, ऐसे सब पाजियों के गले काटकर कुत्तों को खिला दूँ। महाराज—'

राजा ने कराहते हुये कहा—'मूर्ख, बकवादी, पहले तू अपना ही गला काट।'

लोचनसिंह तुरन्त तलवार निकालकर बोला—'एक बार अन्तिम बार आदेश हो जाय और सब सह लिया जाता है, महाराज की व्यथा नहीं देखी जाती।'

'क्या करता है रे नालायक, डाल म्यान में तलवार को।' राजा ने भयभीत होकर कहा। फिर बहुत क्षीण स्वर में बोले—'हकीम जी, इस भयंकर रीछ को मेरे पास मत आने दिया कीजिये। यह न-मालूम इतने दिनों कैसे जीता रहा।'

हकीम सिर नीचा किये बैठा रहा।

लोचनसिंह ने भी कुछ नहीं कहा।

जनार्दन उस दिन ठीक मौका न समझ कर कालपी से आई हुई चिट्ठी के विषय में कोई चर्चा न करके लौट आया। लोचनसिंह भी साथ ही आया।

मार्ग में जनार्दन ने कहा—'आपसे एक विनती है ठाकुर साहब, जो बुरा न मानें, तो निवेदन करूँ।'

'कहिये।'

'ऐसे समय महाराज से कोई तीखी बात मत कहिये।'

'मैंने कौन-सी बात चिल्लाकर कही? क्या यह झूठ है कि अनेक स्थानों पर 'उत्तराधिकारी कौन होगा' इस बारे में तरह-तरह की न सुनने लायक वार्ता छिड़ती चली जा रही है? क्या आपको मालूम है कि

खास महलों में रानियाँ तक राजा के उत्तराधिकारी के विषय में बिना किसी मोह या दुःख के चर्चा कर रही हैं ? और कोई कहता तो सिर या जीभ काट लेता; परन्तु रानी को क्या कहूं ? अच्छा किया, जो मैंने अपना विवाह नहीं किया ।'

'आपकी बात से राजा को कष्ट होता है ।'

'तब आपने राजा को अभी तक नहीं पहचाना । राजा को कष्ट होता है आप-सरीखे लोगों की ठकुर-सुहातियों से । ऐसा राजा कभी न हुआ होगा, जो सच्ची बात और सच्चे आदमियों का इतना आदर करे ।'

'यह तो आप बिलकुल ठीक कहते हैं ।' जनार्दन ने सावधानी के साथ कहा—'हम लोगों को बड़ी चिंता है कि ऐसे राजा के बाद कम-से-कम ऐसा ही वीर-पोषक राजा हो । इस प्रश्न पर विचार करना आप-सरीखे सरदारों का ही काम है । हम तो आप लोगों के किये हुए निर्धार के केवल पालन करने वाले हैं ।'

[११]

कुञ्जरसिंह को राजसिंहासन के प्राप्त करने की बहुत आशा न थी। वह यह जानता था कि राजा का अन्तिम समय निकट है और उनके मरते ही सिंहासन के लिये दौड़ो-झपटो की धूम मच जायगी। उसका संसार में कोई न था, केवल राजा का स्नेह था, सो वह पालर से लौटने के बाद कदाचित् राजा के पागलपन में ऐसा लीन हो गया कि उसके चिह्न तक न दिखलाई पड़ते थे।

बड़ी रानी की ज़रूर कुछ कृपा थी, परन्तु उस कृपा में स्नेह के लिये, व्याकुल हृदय के लिये प्रीति न थी।

पालर में एक आलोक उसने देखा था। वह बिजली की तरह चमका और उसी तरह विलीन हो गया। उसकी दिव्यता का आतंक-मात्र मन पर गढ़ा हुआ था और जैसे प्रातःकाल कोई सुख-स्वप्न देखा हो, किसी आकाश-कुसुम के दूर से एक क्षण के लिये दर्शन किये हों और फिर वह विस्तृत अनन्त प्रसारमय आकाश में ही कहीं छिप गया हो।

एक-आध बार कुञ्जरसिंह ने सोचा, स्त्री थी, मनोहर थी, लज्जावती थी, एक बार स्नेह की दृष्टि से देखा भी था। परन्तु यह भाव बहुत थोड़ी देर मन में टिकता था। उसके मानस-पटल पर जो चित्र बना था, वह स्पष्ट दृष्टिवाली, अपरिमित शालीनतामय नेत्रों वाली, कठिनाइयों के सामने अपनी कोमल, गोरी भुजा की एक छोटी-सी उँगली के संकेत से अनन्त लहरावलि को प्रबलताओं को जगाने वाली दुर्गा का था। स्वप्न सच्चा था, अनूठा था और शांतिदायक था। अथवा कदाचित् उत्साह-मात्र दान करने वाला। परंतु उस समय के चिंताजनक और शून्य-से काल में उस आलोक की दिव्यता मात्र की स्मृति ही थी।

कुञ्जर को सिंहासन की आशा कम थी, परन्तु उपेक्षा न थी। उसने लोगों से प्रायः सुना था कि संसार में पाँसा पलटते विलंब नहीं होता।

राजा की बहुत बढ़ती बीमारी में एक दिन बड़ी रानी ने राजा के पास से लौटकर अपने महल में कुञ्जर को बुलाया।

कहा—'राजा का बचना असंभव जान पड़ता है, मेरे सती हो जाने के बाद किसका राज्य होगा ?'

'इस तरह की बातें सुनकर मेरा मन खिन्न हो जाता है और यथासंभव मैं इस तरह की चर्चा से बचा रहता हूँ।'

'परन्तु कुञ्जर !' रानी ने कहा—'जो अवश्यंभावी है, वह होकर रहेगा।'

कुञ्जरसिंह ने एक क्षण सोचकर उत्तर दिया—'जो आप सती हो गईं और महाराज ने किसी को उत्तराधिकारी नियुक्त न किया, तो इस राज्य का अनिष्ट ही दिखाई देता है।'

'छोटी रानी राज्य करेंगी।' रानी ने आंखें तानकर कहा—'वह सती न होंगी।'

कुञ्जरसिंह बोला—'यह आपको कैसे मालूम ?'

'क्या मैं उनकी प्रकृति को नहीं जानती हूं ? वह राज्य-लिप्सा में चाहे जो कुछ कर सकती हैं। वह देखो न, देवीसिंह नाम का एक दीन ठाकुर, जो महाराज ने अपने महल में ठहरा रक्खा है, उनकी आंखों में खटक गया है। कारण केवल इतना ही है कि मैंने दो मीठी बातें कह दी थीं।' रानी ने उत्तर दिया।

'परन्तु।' कुञ्जरसिंह बोला—'महाराज उस बेचारे को थोड़े ही राज्य दे रहे हैं, जो छोटी सरकार को खटके।' और उसने घबराहट की एक सांस को दबाया।' रानी ने कहा—'कुञ्जरसिंह, जब तक मैं राज्य का कोई स्थायी प्रबन्ध न कर दूंगी, सती न होऊँगी। यदि मेरे पीछे रानी ने राज्य करके प्रजा को पीसा, तो मुझे स्वर्ग में भी नरक-यातना सी अनुभव होगी।'

'मेरे लिये जो कुछ आज्ञा हो, सेवा के लिये तैयार हूं। संसार में आपके सिवा और मेरा कोई नहीं।'

'तीन आदमियों के हाथ में इस समय राज्य की सत्ता बँटी हुई है- जनार्दन, लोचनसिंह और हकीमजी। इनमें से किस पर तुम्हारा काबू है

'काबू तो मेरा पूरा किसी पर नहीं है।' कुञ्जरसिंह ने विश्व परित्याग कर उत्तर दिया—'परन्तु लोचनसिंह थोड़ा-बहुत मेरा कह मानते हैं।'

'और जनार्दन?' रानी ने पूछा।

'वह बड़ा काइयाँ है। उसका दांव समझ में नहीं आता।'

'मैं उसे बहुत दिनों से जानती हूं। मैंने उसके साथ बहुत-से अहस भी किये हैं। वह उन्हें भूल नहीं सकता। उसे ठीक करना होगा।'

'कैसे?' कुञ्जरसिंह ने भोले भाव से प्रश्न किया।

रानी ने अवहेलना की सूक्ष्म दृष्टि से कुञ्जर का अवलोकन किया फिर जरा मुस्कराकर बोली—'मैं उसे ठीक करूँगी। जो कुछ कह जाऊँ, करते जाना और यदि महाराज स्वस्थ हो गये और मैं उ साथ उस लोक को चली गई, तो सोलह आना बात रह जायेगी।'

कुछ क्षण बाद फिर बोली—'कालपी से एक चिट्ठी आई थी। महाराज को जनार्दन ने सुनाई। आपे से बिल्कुल बाहर हो गये।' रा ने चिट्ठी का सविस्तार वृत्तान्त कुञ्जरसिंह को सुनाया।'

कुञ्जर ने भी उस चिट्ठी का हाल सुना था, परंतु यथावत् उसे मालूम था। रानी के मुख से संपूर्ण ब्योरा सुनकर उसे आश्चर्य हुआ।

रानी बोली—'मुझे राज्य की खबरों का सब पता रहता है। तुमने समझ लिया या नहीं?'

कुञ्जर ने स्वीकार किया। बोला—'उस लड़की का पता मुसलमानों को लग गया है?'

'नहीं, परन्तु जनार्दन ने पता लगा लिया है। बहुत सुरक्षित स्थ में बिराटा के रजवाड़े के दाँगी राजा सबदलसिंह के दुर्ग में वह पहुंच है।' फिर कहा—'हकीमजी जनार्दन के कहने में हैं। जनार्दन को ठी कर लेने से वह भी ठीक हो जायेंगे।'

[१२]

राजा न सम्भले— मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की, पागलपन और शरीर की अन्य बीमारियों के बीच में कभी-कभी कुछ चेत हो आता था। अवस्था इतनी खराब हो गई थी कि शायद आग़ा हैदर के सिवाय और किसी को उनकी चिन्ता न रह गई थी। सब बेचैन थे, व्यग्र थे इस उग्र चिन्ता में कि आगे क्या होगा ?

जिस समय जनार्दन ने राजा को कालपी की चिट्ठी का सारांश सुनाया, सब उपस्थित लोगों को तरह-तरह की फूहर गालियाँ देकर अन्त में आज्ञा दी कि कालपी पर चढ़ाई करने की तैयारी कर दो।

बात-बात पर सिर काटने और कटवाने की योजना वाले लोचनसिंह को भी इस आज्ञा को पालन करने में कठिनाई अनुभव हुई।

जनार्दन जानता था कि अलीमर्दान शीघ्र चढ़ाई न करेगा। दिल्ली षडयंत्रों के भँवर में पड़ी थी। दिल्ली के प्रत्येक गुट्ट की दृष्टि अपने प्रत्येक सहायक की सत्वर सहायता पर लगी हुई थी। अलीमर्दान अपने भाग्य का अधिकांश वहाँ के एक गुट्ट से सम्बद्ध समझता था। दलीपनगर भी उस गुट्ट का शत्रु न था। परन्तु किसी गुट्ट का भी इतना आतंक दलीपनगर पर न था कि अलीमर्दान के सामने दाँतों-तले तिनका दबाता। इसलिये जनार्दन ने सेना का धीरे-धीरे तैयार कर डालना ठीक समझा। बड़े पैमाने पर सेना रखना उस समय की माँग थी। शायद इस तैयारी से अलीमर्दान सहम जाय और यदि उससे न भी माना, तो डटकर लड़ाई लड़ ली जायगी। परन्तु कालपी पर आक्रमण करना जनार्दन का ध्येय न था और न उसकी व्यवहार-मूलक राजनीति में इस प्रकार के विचार के लिये स्थान था। वज्र-मुष्टि की नीति में विश्वास रखने वाले लोचनसिंह की सनक राजा की मनोवृत्ति पर निर्भर थी।

वास्तव में इसी का जनार्दन को बहुत खटका था। राजा कालपी पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे चुके थे। जनार्दन दलीपनगर को इस तरह की मुठभेड़ से बचाना चाहता था। सेना की धीमी तैयारी से इस मुठभेड़ का

कुछ समय तक बरकाव हो सकता था। जनार्दन को एक और बड़ी आशा थी—राजा का शीघ्र मरण। और, और जो कुछ उसके मन में रहा हो, उसे कोई नहीं जानता था।

परन्तु वह इस विचार पर अवश्य पहुंच चुका था कि राजा के मरते ही दलीपनगर पर आने वाले तूफ़ान का सहज ही निवारण कर लिया जा सकेगा।

जनार्दन ने राजा की एक दिन बहुत भयानक अवस्था देखकर और दोनों रानियों के बुलावों को टालने के बाद आग़ा हैदर के घर जाकर मंत्रणा की।

कहा—'आज सवेरे राजा को ज़रा चेत था। स्थिति की भयंकरता देखकर, जी कड़ा करके मैंने राजा से स्पष्ट कहा कि किसी को गोद ले लिया जाय। आश्चर्य है, वह इस बात पर नाराज़ नहीं हुये। केवल यह कहा कि अभी मैं नहीं मरूंगा, जियूंगा। फिर मैं ज़्यादा कुछ न कह सका।'

हकीम बोला—'अब उनके जीवन में बहुत थोड़े दिन रह गये हैं। बहुत कोशिश की, मगर यमराज का मुक़ाबला नहीं कर सकता। राजा की बद-परहेज़ी पर मेरा कोई काबू नहीं। यदि कंबख्त रामदयाल मर जाय, तो शायद अब भी राजा बच जायें। उनकी नामुमकिन फ़रमाइशों को पूरा करने के लिये वह सदा कमर कसे खड़ा रहता है। ऐसा बदकार है कि कुछ ठिकाना नहीं।'

'यदि मरवा डाला जाय?'

'यह आप जानें। मैं क्या कहूं?'

'हकीम जी, बदन में फोड़ा होने पर आप उसे सेवें-पालेंगे या काटकर साफ़ कर देंगे?'

'मैं यदि जर्राह होऊँगा, तो साफ़ करके ही चैन लूंगा। मगर मैं हकीम हूँ, जर्राह नहीं।'

'ख़ैर, जिसका जो काम होता है, वह उसे करता ही है। न्यायाधीश शूली की आज्ञा देता है, परन्तु शूली पर चढ़ाते हैं अपराधी को चांडाल।'

'मूजी है और उसने पाप भी बहुत किये हैं। आपके धर्म के अनुसार उसे जो दंड दिया जा सकता हो, दीजिये।'

'परन्तु हकीमजी, यह आपने बड़ी टेड़ी बात कही। रामदयाल का असल में दोष ही क्या है? मालिक ने जो हुकुम दिया, उसे सेवक ने पूरा कर दिया। धर्म-विधि से तो राजा का ही दोष है।'

'राजा करे सो न्याव, पांसा पड़े सो दाँव।'

'परन्तु अब राजा के अधिक जीवित रहने से न केवल उनका कष्ट बढ़ रहा है, प्रत्युत यह राज्य भी आफ़त की गहरी खाई की ओर अग्रसर हो रहा है।'

'जो होनी है, उसे कोई नहीं रोक सकता।'

हकीम जी।' जनार्दन ने साधारण निश्चय के साथ यकायक कहा—'या तो राजा का रोग समाप्त होना चाहिये या उन्हें शीघ्र स्वर्ग मिलना चाहिये।'

'दोनों बातें परमात्मा के हाथ में हैं।' हकीम ने निराशा-पूर्ण स्वर में कहा।

जनार्दन बोला—'नहीं, आपके हाथ में हैं।'

'यानी?'

'यानी यह कि आप ऐसी दवा दीजिये कि या तो उनका रोग शीघ्र दूर हो जाय या उनका कष्ट-पीड़ित जीवन समाप्त हो जाय।' आग़ा-हैदर सन्नाटे में आ गया।

बोला—'शर्माजी, अपने मालिक के साथ यह नमकहरामी मुझसे न होगी चाहे आप उनके साथ मुझे भी मरवा डालिये।' अबकी बार जनार्दन की बारी सन्नाटे में पड़ने की आई।

ज़रा रुखाई के साथ बोला—'अभी-अभी बेचारे रामदयाल के खत्म होने का समर्थन तो कर रहे थे, परन्तु जिसके अत्याचारों के कारण बेचारी प्रतिष्ठित प्रजा बिलबिला रही है, जिसकी नादानी की वजह से कालपी का फौजदार इस निस्सहाय जनपद को सर्वनाश के समुद्र में

डुबोने के लिये आ रहा है, जिसकी वज्र-कामुकता के मारे असंख्य भोली-भाली, सती स्त्रियां मुँह पर कालिख पोतकर संसार में मक्खियाँ उड़ाती फिर रही हैं, जिसका—'

'बस-बस, माफ़ कीजिये ।' हकीम बोला—'आपको जो करना हो, कीजिये, मैं दखल नहीं देता । चाहे किसी को राज-रानी बनाइये, मुझसे कोई वास्ता नहीं । परन्तु अपने ईमान के खिलाफ़ मैं कुछ न कर सकूँगा ।'

बिना किसी व्याकुलता के जनार्दन ने बड़ी अनुनय के साथ प्रस्ताव किया—'हकीमजी, मैं हाथ जोड़ता हूँ, कुछ तो इस राज्य के लिये करो, जिसके अन्न-जल से हमारे और आपके हाड़-मांस बने हैं ।'

'क्या करूँ ?' हकीम ने अन्यमनस्क होकर पूछा ।

जनार्दन ने उत्तर दिया—'सैयद अलीमर्दान को मना लो । दलीपनगर को बचा लो । सुना है, उसकी फ़ौज कालपी से शीघ्र कूच करने वाली है । यदि आप उसे बिलकुल न रोक सकें, तो कम-से-कम कुछ दिनों तक अटका लें, तब तक मैं राजा द्वारा किसी उत्तराधिकारी को नियुक्त कराके राज्य को सुव्यवस्थित करा लूँगा । यदि राजा बच गये, तो उत्तराधिकारी की देखरेख में राज-काज ठीक तौर से होता रहेगा; न बचे, तो जो राजा होगा, सँभाल कर लेगा । इस समय सबके मन किसी अनिश्चित, अंधकारावृत, अदृश्य, घोर विपत्ति के आ टूटने की संभावना के डर से थर्रा रहे हैं मानो मनुष्य में कोई शक्ति ही न हो । सामने सहायक देखकर ये ही भय-कातर लोग प्रबल हो उठेंगे और यह राज्य विपत्ति से बच जायगा ।'

इस अनुनय की प्रबलता ने हकीम को कुछ सोचने पर विवश किया ।

जनार्दन निस्संकोच कहता चला गया—'यदि प्रजा अपने आप कुछ कर सकती होती, तो हमें और आपको इतना ऊँच-नीच न सोचना पड़ता । उसका सशक्त या अशक्त होना अच्छे-बुरे राजा पर निर्भर है । देखिये, छोटे राज्यों के अच्छे नरेशों के आश्रय में प्रजा कैसे-कैसे भयानक

आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करती है और बड़े राज्यों के बुरे नरपतियों की मौजूदगी कराल विष का काम करती है।'

हकीम सोचकर बोला—'मैं कालपी तुरंत जाने को तैयार हूँ, परन्तु राजा के इलाज का क्या होगा?'

'किसी अच्छे वैद्य या हकीम को नियुक्त कर जाइये।' उत्तर मिला।

हकीम ने कहा—'मैं अपने लड़के के हाथ में राजा का इलाज छोड़ जाऊँगा और किसी के हाथ में नहीं।'

'इसमें कोई खलल न डालेगा।' जनार्दन ने कहा—'और मैंने अत्यन्त विह्वलता के कारण जो दारुण प्रस्ताव आपके सामने उपस्थित किया था, उसे भूल जाइयेगा। अवस्था इतनी भयानक हो गई है कि मेरा तो दिमाग़ ही खराब हो गया है।'

'खैर।' हकीम बोला—'इसका आप कोई खयाल न करें। मैं अलीमर्दान को तो मनाने की कोशिश करूँगा ही, किन्तु दिल्ली के भी किसी गुट्ट को हाथ में लेकर अलीमर्दान को सीधा कर लूँगा। इस समय दिल्ली की सल्तनत में एक औरत की बहुत चल रही है। शायद उसकी मार्फ़त अलीमर्दान को काफी समय के लिये दिल्ली बुलवा सकूँ।'

[१३]

'लोचनसिंह के हाथ में सारी सेना नहीं है। मैं कभी नहीं मानूँगी कि सब सरदार उसके कहने या तावे में हैं।' रानी ने उस दिन देर तक कुञ्जरसिंह को तटस्थ की तरह बात करते हुये सुनकर कहा।

अपनी पहले की कही हुई बातों पर डिगने या आशान्वित होने का कोई लक्षण न दिखलाते हुये कुञ्जरसिंह बोला—'राव अपनी ही घात में हैं और दीवान साहब अपने को महाराज से भी बढ़कर हक़दार समझते हैं। लोचनसिंह शूरता में उन सब स्वार्थियों से बढ़कर है और किसी विशेष पक्ष में नहीं समझा जाता है, इसलिये लोग उसकी बात मानने का कम-से-कम दिखावा अवश्य करते हैं।'

'जो आदमी संसार में यह प्रकट करता है कि मैं हथेली पर जान लिये फिरता हूं और बात-बात में सिर दे डालने का दंभ करता है, उसे शूर बोदापन ही कह सकता है। उस दिन तो तुम कहते थे कि तुम्हारे कहने में आ जायगा।'

'आपने भी तो आज्ञा की थी कि आप जनार्दन को ठीक कर लेंगी।'

'वह तो होगा ही अंत में।' रानी बोली—'परन्तु इसमें तुम्हारे किस प्रयत्न को गौरव और पुरस्कार मिलेगा?'

कुञ्जर ने उत्तर दिया—'संभव है, काकाजू स्वस्थ हो जायँ।'

'असंभव है।' रानी ने बिना किसी छद्म के कहा—'अब तो उनके कष्ट की घड़ियाँ बढ़-भर रही हैं।'

इतने में एक दासी ने आकर खबर दी कि रामदयाल आना चाहता है। बुला लिया गया।

एक बार कुञ्जर और दूसरी बार रानी की ओर बिजली की तेजी के साथ देखकर बोला—'महाराज आज पंचनद की ओर जाने की तैयारी कर रहे हैं। निवेदन करवाया है कि आप भी चलें।'

जरा अचम्भे में आकर रानी ने कहा—'जी कैसा है?'

'कुछ अच्छा है—यों ही है।'

'जनार्दन ने भी मान लिया है ?'

'उन्होंने यह कहकर समर्थन किया है कि स्थान-परिवर्तन से लाभ होगा।'

कुञ्जरसिंह ने पूछा—'कौन-कौन जा रहा है ? लोचनसिंह भी जा रहे हैं ?'

'हाँ राजा।' भृत्य ने झुककर उत्तर दिया—सेना भी उनके साथ जायगी, जितनी साथ के लिये आवश्यक होगी।'

रानी ने कहा—'छोटी महारानी जायँगी ?'

'हाँ महाराज।' उत्तर मिला।

'अच्छा, जाओ।' रानी बोली—'मैं थोड़ी देर में उत्तर भेजूँगी।'

रामदयाल जाने लगा। रानी ने रोककर कहा—'महाराज की अनुपस्थिति में और यहाँ से अनेक लोगों के चले जाने पर सेना किसके हाथ में छोड़ी गई है ?'

उसने जवाब दिया—'शर्माजी ने प्रबन्ध कर दिया है।'

रामदयाल चला गया।

कुञ्जरसिंह बोला—'जनार्दन ने अलीमर्दान को शांत करने के लिये आगा हैदर को कालपी भेजा है। जान पड़ता है, उस दिशा से अब भय का कारण नहीं है। इसीलिये जनार्दन मान गये हैं। मेरी समझ में आपको वहीं चलना चाहिये, जहाँ जनार्दन और लोचनसिंह महाराज के साथ जायँ। छोटी रानी साथ न जातीं, तब भी आपका जाना आवश्यक होता।'

बड़ी रानी ने भी साथ जाने की सहमति प्रकट की।

[१३]

'लोचनसिंह के हाथ में सारी सेना नहीं है। मैं कभी नहीं मानूँगी कि सब सरदार उसके कहने या तावे में हैं।' रानी ने उस दिन देर तक कुञ्जरसिंह को तटस्थ की तरह बात करते हुये सुनकर कहा।

अपनी पहले की कही हुई बातों पर डिगने या आशान्वित होने का कोई लक्षण न दिखलाते हुये कुञ्जरसिंह बोला—'राव अपनी ही घात में हैं और दीवान साहब अपने को महाराज से भी बढ़कर हक़दार समझते हैं। लोचनसिंह शूरता में उन सब स्वार्थियों से बढ़कर है और किसी विशेष पक्ष में नहीं समझा जाता है, इसलिये लोग उसकी बात मानने का कम-से-कम दिखावा अवश्य करते हैं।'

'जो आदमी संसार में यह प्रकट करता है कि मैं हथेली पर जान लिये फिरता हूं और बात-बात में सिर दे डालने का दंभ करता है, उसे शूर बोदापन ही कह सकता है। उस दिन तो तुम कहते थे कि तुम्हारे कहने में आ जायगा।'

'आपने भी तो आज्ञा की थी कि आप जनार्दन को ठीक कर लेंगी।'

'वह तो होगा ही अंत में।' रानी बोली—'परन्तु इसमें तुम्हारे किस प्रयत्न को गौरव और पुरस्कार मिलेगा?'

कुञ्जर ने उत्तर दिया—'संभव है, काकाजू स्वस्थ हो जायँ।'

'असंभव है।' रानी ने बिना किसी छद्म के कहा—'अब तो उनके कष्ट की घड़ियाँ बढ़-भर रही हैं।'

इतने में एक दासी ने आकर खबर दी कि रामदयाल आना चाहता है। बुला लिया गया।

एक बार कुञ्जर और दूसरी बार रानी की ओर बिजली की तेज़ी के साथ देखकर बोला—'महाराज आज पंचनद की ओर जाने की तैयारी कर रहे हैं। निवेदन करवाया है कि आप भी चलें।'

ज़रा अचम्भे में आकर रानी ने कहा—'जी कैसा है?'

'कुछ अच्छा है—यों ही है।'

'जनार्दन ने भी मान लिया है ?'

'उन्होंने यह कहकर समर्थन किया है कि स्थान-परिवर्तन से लाभ होगा।'

कुञ्जरसिंह ने पूछा —'कौन-कौन जा रहा है ? लोचनसिंह भी जा रहे हैं ?'

'हाँ राजा।' भृत्य ने झुककर उत्तर दिया—सेना भी उनके साथ जायगी, जितनी साथ के लिये आवश्यक होगी।'

रानी ने कहा—'छोटी महारानी जायँगी ?'

'हाँ महाराज!' उत्तर मिला।

'अच्छा, जाओ।' रानी बोली—'मैं थोड़ी देर में उत्तर भेजूँगी।'

रामदयाल जाने लगा। रानी ने रोककर कहा—'महाराज की अनुपस्थिति में और यहाँ से अनेक लोगों के चले जाने पर सेना किसके हाथ में छोड़ी गई है ?'

उसने जवाब दिया—'शर्माजी ने प्रवन्ध कर दिया है।'

रामदयाल चला गया।

कुञ्जरसिंह बोला—'जनार्दन ने अलीमर्दान को शांत करने के लिये आग़ा हैदर को कालपी भेजा है। जान पड़ता है, उस दिशा से अब भय का कारण नहीं है। इसीलिये जनार्दन मान गये हैं। मेरी समझ में आपको वहीं चलना चाहिये, जहाँ जनार्दन और लोचनसिंह महाराज के साथ जायँ। छोटी रानी साथ न जातीं, तब भी आपका जाना आवश्यक होता।'

बड़ी रानी ने भी साथ जाने की सहमति प्रकट की।

[१४]

कालपी से आगा हैदर ने जनार्दन को लिखा था कि अलीमर्दान नाराज़ तो बहुत था, परंतु अब शांत है और दलीपनगर को मित्र की दृष्टि से देखता है, लड़ाई की कोई संभावना नहीं और मुझे कुछ दिनों मेहमान बनाये रखना चाहता है।

असल बात कुछ और थी। निज़ामुलमुल्क हैदराबाद में क़रीब-क़रीब स्वतंत्र हो गया था। मालवा स्वतंत्रता के मार्ग पर दूर जा चुका था। परन्तु मराठे अपने संपूर्ण अधिकार के लिये वहाँ दौड़-धूप कर रहे थे। दिल्ली में सैयद भाई अस्त हो चुके थे और वह कठपुतलियों को नचाने वाले ओछे हाथों में थी। बुन्देलखण्ड के पूर्वीय भाग में महाराज छत्रसाल की तलवार झनझना रही थी। मुहम्मदखाँ बंगश उस झनझनाहट का विरोध करता फिर रहा था। अलीमर्दान दिल्ली, मालवा और बंगश के चक्रव्यूह से बचकर अपनी धुन बना ले जाने की चिंता में था। दिल्ली का भय उसे न था, परन्तु उसकी ओट की अपेक्षा थी। दिल्ली से ससैन्य आने के लिये बुलावा आया था। बिना समझे-बूझे शीघ्र दिल्ली पहुंच जाना उन दिनों दिल्ली का कोई सूबेदार, फ़ौजदार या सरदार आफ़त से खाली नहीं समझता था। मेरे लिये कोई षड़यंत्र तो तैयार नहीं है? मुहम्मदखाँ बंगश ने तो कोई शरारत नहीं रची है?

बंगश उसका मित्र था, परन्तु अलीमर्दान उसकी लड़ाइयों में बहुत कम शामिल होता था। होता भी, तो उस समय के मित्र के षड़यंत्र, विष और खड्ग से कैसे बचता? इसलिये उसे बंगश पर और बंगश को उस पर सन्देह रहता था। अतएव उसने शांति के साथ कालपी में कम-से-कम कुछ दिनों डटे रहना तय किया। दलीपनगर पर आमक्रण करने की बात उसने सदा के लिये स्थगित कर दी हो, सो नहीं था। मित्र भाव दिखलाकर वह दलीपनगर को सुषुप्त रखना चाहता था। अवसर आने पर चढ़ाई कर दूँगा, इस निश्चय को उसने सावधानी से गाँठ में बाँध लिया था।

आग़ा हैदर का जो अतिथि-सत्कार हुआ, उसने अलीमर्दान के मनोगत भाव को और भी न समझने दिया।

ऐसी परिस्थिति में जनार्दन ने राजा के मनोवेग का समर्थन किया। दलीपनगर में सेना का एक काफ़ी बड़ा भाग अपनी मण्डली के कुछ विश्वस्त लोगों के हाथ में छोड़ा और पंचनद की ओर राजा को लेकर कूच कर दिया। खबर लेने के लिये जहाँ-तहाँ जासूस नियुक्त कर दिये। वह राजा का साथ बहुत कम छोड़ता था।

रानियाँ साथ गईं। देवीसिंह अब बिलकुल चङ्गा हो गया था। उसे भी राजा ने साथ ले लिया।

कहने के लिये कई बार सोची हुई बात को जनार्दन ने मार्ग में एकांत पाकर देवीसिंह से कहा—'आप बड़े वीर हैं। उस दिन महाराज की रक्षा आप ही ने की।'

'बुन्देला का कर्तव्य ही और क्या है, शर्माजी ? देवीसिंह ने लापरवाही के साथ कहा—'परन्तु अब किस तरह उनके प्राण बचेंगे, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है।

'दवा-दारू हो रही है। देखिये, आशा तो बहुत कम है।' आह भरकर जनार्दन बोला—'ऐसी दशा में महाराज को इतनी दूर नहीं आने देना चाहिये था।'

'यमुनाजी की रज में वह अपने जन्म की यात्रा समाप्त करना चाहते हैं, इसलिये हम लोगों ने निषेध का उपाय नहीं किया।'

देवीसिंह ने पूछा—'यदि महाराज का स्वर्गवास बीच में ही हो गया, तब क्या कीजियेगा ?'

उत्तर मिला—'यमुनाजी की रज में उनके फूल विश्राम करेंगे। आपके प्रश्न के साथ हम सबकी एक और घोर चिन्ता का भी सम्बन्ध है। वह यह कि उनके पश्चात् इस राज्य का शासन कौन करेगा ?'

'सिवा बुन्देला के और कौन कर सकता है ?' देवीसिंह ने कहा—'कुञ्जरसिंह तो दासी-पुत्र हैं, गद्दी के हक़दार नहींहो सकनेइसलिये कोई भाई-बन्द ही सिंहासन पर बैठेगा।'

'परन्तु।' जनार्दन ने मुस्कराकर कहा—'भाई-बन्द कोई ऐसा नहीं, जिसका दृढ़ता-पूर्वक अपने चेत्र में उन्होंने निषेध न किया हो। रानियाँ अवश्य हैं।'

देवीसिंह बोला—'यह समय स्त्रियों के राज्य का नहीं।'

'और इधर-उधर कोई भी उपयुक्त भाई-बन्द नहीं। बड़ी कठिन समस्या है।'

'सब बुन्देले भाई-बन्द ही हैं।'

'आप भी ?' जनार्दन ने आँख गड़ाकर पूछा।

उसने उत्तर दिया—'हाँ, मैं भी। प्रजा होने से क्या भाई-बन्द में अन्तर आ सकता है ?'

हँसते हुये जनार्दन ने पूछा—'आपको राजा नियुक्त कर दें, तो ?'

देवीसिंह सन्न रह गया। जरा रीती दृष्टि से जनार्दन की ओर देखने लगा।

जनार्दन बोला—'यदि कर दें, तो गो-ब्राह्मणों की तो रक्षा होगी ?' और हँसा।

[१५]

पालर में और आस-पास भी खबर फैली हुई थी कि घोर लूट-मार और मार-काट होने वाली है। उत्तरी भारतवर्ष के लिये यह समय बड़े संकट का था। उपद्रवों के मारे नगरों और राजधानियों में खलबली मची रहती थी। दिल्ली डाँवाडोल हो चुकी थी। उसके सहायक और शत्रु अपने-अपने राज्य स्थापित कर चुके थे। परन्तु ईर्ष्या और शत्रुता बढ़ने के भय से अपनी पूर्ण स्वतंत्रता बहुत थोड़े राजा या नवाब घोषित कर रहे थे। बहुत से स्वाधीन हो गये थे, किन्तु नाममात्र के लिये दिल्ली की अधीनता प्रकट करते रहते थे। इनमें जो प्रबल थे, वे चौकस थे, निर्दय थे और उनकी प्रजा को बहुत खटका नहीं था, किंतु ऐसे थोड़े थे जो छोटे या निर्बल थे, वे किसी प्रबल पड़ौसी या दूर के शक्तिशाली, तूफानी जन-नायक की ओर निहारते रहते थे।

एक आग-सी लगी हुई थी। उसकी लौ में बहुत से जल-भुन रहे थे, अनेकों झुलस रहे थे और उसकी आँच से तो कोई भी नहीं बच रहा था।

बड़नगर के राजा के लिये भी कम परेशानियां न थीं। पालर के निकट किसी होने वाले तूफान की खबर पाकर कुछ प्रबन्ध करने का संकल्प किया कि दूसरी ओर और बड़े झंझावातों की दुश्चिन्ता में फँस जाना पड़ा। पालर के निकटवर्ती ग्रामों की रक्षा का कोई प्रबन्ध न किया जा सका। ऐसी अवस्था में साधारण तौर पर जैसे प्रजा को अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाता था, छोड़ देना पड़ा।

पालर के और पड़ोस के निकटवर्ती ग्रामीणों ने इस बात को समझ लिया। जङ्गलों और पहाड़ों की भयंकर गोद में छिपे हुये छोटे-छोटे गढ़पतियों की शरण के सिवा और कोई आसरा न था। कोई कहीं और कोई कहीं चला गया। रह गये अपने घरों में केवल दीन-हीन किसान, जो हर-खेती छोड़कर कहीं न जा सकते थे। उन्हें पेट के लिये, राजा के लगान के लिये, लुटेरों की पिपासा के लिये खेतों की रखवाली करनी

थी। आशा तो न थी कि चैत-वैशाख तक खेती बची रहेगी। यदि कहीं से घुड़सवार सेना आ गई तो खेतों में अन्न का एक दाना और भूसे का एक तिनका भी न बचेगा। परन्तु जहां आशा नहीं होती, वहाँ निराशा ईश्वर के पैर पकड़वाती है। यदि बच गये, तो कृतज्ञ हृदय ने एक आंसू डाल दिया और बह गये, तो भाग्य तो कोसने के लिये कहीं गया ही नहीं।

जिस समय बड़े-बड़े राजा और नवाब अपनी विस्तृत भूमि और दीर्घ संपत्ति के लिये रोज़-रोज़ खैर मनाते थे, अपने अथवा पराये हाथों अपने मुकुट की रक्षा में व्यस्त रहते थे और उसी व्यस्त अवस्था में बहुधा दिन में दो-चार घण्टे नाच-रङ्ग, दुराचार और सदाचार के लिये भी निकाल लेते थे, उस समय प्रजा अपनी थोड़ी-सी भूमि और छोटी-सी संपत्ति के बचाव की फ़िक्र करते हुये भी देवालयों में जाती, कथा-वार्ता सुनती और दान-पुण्य करती थी। सन्ध्या समय लोग भजन गाते थे। एक दूसरे की सहायता के लिये यथावकाश प्रस्तुत हो जाते थे। यद्यपि बड़ों के सार्वजनिक पतन की विषाक्त छाया में साधारण समाज को खोखला करने वाले अधर्ममूलक स्वार्थ का पूरा घुन लग चुका था, और कादरता तथा नीचता डेरा डाल चुकी थी, परन्तु बड़ों को छोड़कर छोटों में छल-कपट और बेईमानी का आम तौर पर दौर-दौरा न हुआ था।

झाँझ बजाकर रामायण गाते थे। लुटेरों कें आने की खबर पाकर इकट्ठे हो जाते थे। मुक़ाबले के लायक़ अपने को समझा, तो पिल पड़े, न समझा, तो दे-लेकर समझौता कर लिया या समय टालकर किसी गढ़पति के यहाँ वन-पर्वत में जा छिपे।

पालर के सीधे-सादे जीवन में जहां विशाल झील में नहा-धोकर काम करना और पेट भर खा लेने के बाद शाम को झाँझ बजाकर ढोलक पर भजन गाना ही प्रायः नित्य का सरल कार्य-क्रम था, वहाँ देवी के अवतार का चमत्कार ही एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। इसके रङ्ग को

बाहर वालों ने अधिक गहरा कर दिया था, क्योंकि पालर वालों ने इसकी विज्ञप्ति के लिये स्वयं कोई कष्ट नहीं उठाया था।

वही चमत्कार उन दिनों उनकी विपत्ति का कारण हुआ। असंख्य घुड़सवारों की टापों से टूटे हुये हरे-हरे पौधों की टहनियों को धूल के साथ गगन में उड़ते देखना वहाँ के बचे-खुचे लोगों का जागते-सोते का स्वप्न हो गया था।

जिस दिन दलीपनगर के राजा की मुठभेड़ कालपी के दस्ते के साथ हुई, उसी दिन कुमुद का पिता उसे लेकर कहीं चल दिया था। सब धन-सम्पत्ति नहीं ले जा पाया था। उसका ख्याल था कि शायद शाँत हो जाय। थोड़े ही दिन बाद लौट कर आया।

उसके पड़ोस में केवल ठाकुर की एक लड़की, जिसका नाम गोमती था, रह गई थी। वह घर में अकेली थी। देवीसिंह के साथ इसी का विवाह होने वाला था। परन्तु दूल्हा को राजा की पालकी थामे हुये गिरते लोगों ने और गोमती ने देख लिया था। लोचनसिंह की सहानुभूतिमयी वार्ता गोमती नहीं भूली थी। दूसरे दिन जब राजा नायकसिंह दलीपनगर की ओर चलने लगे, तब डर के मारे किसी पालर-निवासी ने देवीसिंह की कुशल-वार्ता का समाचार भी न पूछ पाया था। गोमती स्वयं जा नहीं सकती थी। उड़ती खबर सुन ली थी कि हाल अच्छा नहीं है। लोचनसिंह-सरीखे मनुष्य जिस बेड़े में हों, उसमें वह दीन घायल युवक कैसे बचेगा? परन्तु एक टूटती-जुड़ती आशा थी—शायद भगवान बचा लें, क़दाचित दुर्गा रक्षा कर दें।

नरपतिसिंह को गाँव में फिर देखकर गोमती को बड़ा ढाढ़स हुआ। जाकर पूछा—'काकाजू, कहाँ चले गये थे? दुर्गा कहाँ हैं?'

'मन्दिर में हैं।' नरपतिसिंह ने अपना सामान जल्दी-जल्दी बाँधते हुये उत्तर दिया।

'मैं अपनी दुर्गा की बात पूछती हूं।' गोमती बोली।

'मन्दिर में हैं।' वही उत्तर मिला।

बड़ी विनय के साथ गोमती ने कहा—'काकाजू, मैं भी उसी मन्दिर में तुम्हारे साथ चलूँगी। जहाँ कुमुद होगी, वहीं मेरी रक्षा होगी। इस विशाल झील के सिवा और कोई मेरा यहाँ रक्षक नहीं।'

सामान का बाँधना छोड़कर नरपतिसिंह बोला—'क्या दुर्गा रक्षा नहीं करतीं हैं? ऐसा कहने से बड़ा पाप लगता है।'

गोमती ने दृढ़ अनुनय के साथ कहा—'इसीलिये तो आपके साथ चलूँगी। मेरे पास कोई सामान नहीं है। एक धोती और ओढ़ने-बिछाने का छोटा-सा बिस्तर है, कंधे पर लुटिया-डोर डाल लूँगी। यहाँ नहीं रहूँगी। साथ चलूँगी। जहाँ कुमुद होगी, वहीं चलूँगी।'

'चल सकोगी?' करारे स्वर में नरपतिसिंह ने गोमती को विचलित करने के लिये कहा।

अचल कण्ठ से गोमती ने उत्तर दिया—'चलूँगी, चाहे जितनी दूर और चाहे जैसे स्थान पर हों।'

'विराटा, भयानक बेतवा के बीच में यहाँ से दस कोस।'

'चलूँगी।'

थोड़ी देर बाद दोनों पोटली बाँधकर पालर से चल दिये।

[१६]

टेढ़े-मेढ़े, पथरीले-नुकीले और वन्य, पहाड़ी ओछे-सकरे मार्गों में होकर नरपतिसिंह गोमती-सहित बिराटा पहुँच गया।

बिराटा पालर से उत्तर-पूर्व के कोने में है। बेतवा के तट और टापू पर, घोर वन के आँगन में, छोटी संपन्न वस्ती थी। राजा दाँगी था। नाम सबदलसिंह। नदी की करार पर उसका गढ़ था, जो दूर से वन के सघन और दीर्घ-काय वृक्षों के कारण कई ओर से दिखलाई भी न पड़ता था।

गढ़ के ठीक सामने पूर्व की ओर नदी के बीचोंबीच एक टापू पर एक छोटा मन्दिर छोटी-सी दृढ़ गढ़ी के भीतर था। इस मन्दिर में उस समय दुर्गा की मूर्ति थी। जीर्णोद्धार होने के बाद अब उसमें शंकर की मूर्ति स्थापित है। दक्षिण की ओर यह टापू एक ऊँची पहाड़ी में समाप्त हो गया है। कहीं-कहीं पहाड़ी दुर्गम है। जिस ओर यह लम्बी-चौड़ी चट्टानों में ढल गई है, उस ओर विस्तृत नीलिमामय जल-राशि है। नदी की धार टापू के दोनों ओर बहती है, परन्तु टापू से पूर्व की ओर धार बड़ी और चौड़ी है। इस पहाड़ी के नीचे एक बड़ा भारी दह है।

उत्तर की ओर टापू करीब पांच मील लम्बी, समथर, उपजाऊ भूमि में समाप्त हुआ है। सबदलसिंह की छोटी-सी बैठक उस मैदान में थी और बैठक के चारों ओर एक छोटा-सा उद्यान।

मन्दिरों में कभी कोई साधू-बैरागी आकर कुछ दिनों के लिये ठहर जाता था; वैसे खाली पड़ा रहता था। पूजा का अवश्य प्रबन्ध था, जैसा पुराने बिराटा के बिलकुल उजड़ जाने पर भी इस एकांत मन्दिर की पूजार्चा का आज भी कुछ-न-कुछ प्रबन्ध है।

बिराटा में भी कुमुद के दुर्गा होने की बात विख्यात थी। राजा दाँगी था, इसलिये कुमुद के देवत्व को यहाँ और भी अधिक बड़प्पन मिला। नरपतिसिंह थोड़े ही दिनों गाँव की बस्ती में रहा। नदी के बीच में, टापू की पहाड़ी पर स्थित मन्दिर उसे अपनी रक्षा और निधि के बचाव के

लिये बहुत उपयुक्त जान पड़ा। कुमुद भी आवभगत और पूजा की बहुलता के मारे इतनी थक गई थी कि टौरिया के मन्दिर के एकांत को उसने कम-से-कम कुछ दिनों के लिये वहुत हितकर समझा। नरपति के पालर जाने के पहले ही कुमुद इस मन्दिर में चली आई थी।

पालर से लौटकर गाँव में पहुंचने पर नरपतिसिंह ने गोमती से कहा-'तुम अब यहीं कहीं अपने रहने का वन्दोबस्त करो। मैं देवी के पास मन्दिर में जाऊँगा।'

'मैं भी वहीं चलूँगी।'

'वड़ा भयानक स्थान है।'

'भयानक स्थानों से नहीं डरती। देवी की सेवा में मेरा सम्पूर्ण जीवन सुभीते के साथ वीत जायगा।'

परन्तु यदि देवी ने पसन्द न किया, तो ?'

गोमती ने विश्वास के साथ उत्तर दिया—'अवश्य करेंगी। देवता के पास एक पुजारिन सदा रहेगी। आप जब कभी टापू छोड़कर बस्ती में राजा के पास आवेंगे, देवी को अकेला न रहना पड़ेगा। आजकल किसी को अकेला न रहना चाहिये।'

नरपतिसिंह ने ज़िद न की

जिस समय गोमती मन्दिर में पहुंची, कुमुद वेतवा के पूर्व तट के उस ओर वन की ओर जंगली पशुओं की आवाज़ें सुन रही थी। संध्या हो चुकी थी। पश्चिम दिशा का क्षितिज सुनहले रंग से भर चुका था और पूर्व की ओर से अन्धकार के पल्लड़ के पल्लड़ नदी की स्वर्ण-रेखा पर मानो आवरण डालने वाले थे। मन्दिर के चारों ओर नदी की प्रशस्त धाराएं अन्धकार और वन्य पशुओं के चीत्कारों से कुमुद की एकांतता को अलग-सा कर रही थीं। पिता को देखते ही एकांतता का गांभीर्य चला गया। हर्ष की एक सुनहली रेखा से आँखें जग गईं और गोमती को देख़ते ही आनन्द की पुलकावली का रेखा जाल विकसित मुख पर नाचने-सा लगा।

बिना किसी प्रतिबन्ध के गोमती को गले लगाकर बोली—'गोमती, तुम भी आ गईं ! अच्छा किया। भूली नहीं। एक से दो हुए। अच्छी तरह हो ! अब जब पालर चलेंगे, साथ ही चलेंगे।'

यह मिलाप नरपतिसिंह को भी बुरा नहीं लगा। देवी को—अपनी कन्या को—एक घड़ी के लिये स्वाभाविक आनन्द में लहराते देखकर वह बूढ़ा पँडा भी प्रसन्न हो गया। उसने सोचा—'ऐसा मिलाप बहुधा और सबके सामने न होना चाहिए।'

गोमती भी उमड़े हुए सौन्दर्य की युवती थी। परंतु किसी गुप्त चिंता और प्रकट थकावट ने उसे मेघाच्छन्न चाँदनी की तरह बना रक्खा था।

आलिंगन से छूटकर गोमती ने सजल, कृतज्ञ नेत्रों से एक क्षण उन महिमावान् स्थिर नेत्रों की ओर देखा। बोली—'आपकी शरण में आ गई हूँ, अब कोई कष्ट न रहेगा।' और रोने लगी।

नरपतिसिंह अपना सामान यथास्थान रखने में जुट गया।

कुमुद ने गोमती का हाथ पकड़कर कहा—'आप-आप मत कहो, तुम कहो।'

'देवी से ?'

'देवी मंदिर में हैं। मैं तो पुजारिन-मात्र हूँ।'

'नहीं, आप ही कहूँगी। सब लोग आप कहते हैं।'

'नहीं, मुझे वही बहुत प्यारा है। आप-आप सुनते-सुनते थक गई हूँ। दूसरे शब्द में अधिक शांति और सुख है।'

'जैसा आदेश हो।'

'फिर वही ! अच्छा, देखा जायगा। परन्तु मैं तुम्हारी बहन हूँ, यह सम्बन्ध मानने का वचन दो।'

'बड़ी बहन ?'

'यही सही।'

'सो तो है ही।'

कुमुद ने कहा—'तुम बहुत थक गई हो। सारी देह धूल और धूप में घूमरी पड़ गई है। नहा-धोकर भोजन करो।'

इतने में नरपतिसिंह का ध्यान आकृष्ट हुआ। उसे सिर के बाल बिखेरे पास आता देखकर कुमुद की मुद्रा धीर हो गई।

नरपतिसिंह बोला—'गोमती, तुम इस कोठरी में अपना डेरा डाल लो। तुम्हें मैं कुछ वस्त्र और दूँगा। भोजन करके आराम से सो जाओ।'

कुमुद ने अपने सहज मीठे स्वर में कहा—'हम और वह एक ही स्थान पर अर्थात् एक ही कोठरी में सोवेंगी। मैंने उसे अपनी छोटी बहन बना लिया है।'

'देवी और गोमती बहन नहीं हो सकतीं। नरपतिसिंह ने ज़रा अधिकार के स्वर में कहा। फिर नरम होकर बोला—'अच्छा, देवी के मन में जैसा आवे, करें। देवी जिस पर कृपा करें, कर सकती हैं।' गोमती को सम्बोधन करते हुये उसनें कहा—'गोमती वेटी, यहस्मरण रखना कि हमारी तुम्हारी देह मानवों की है और कुमुद कुमारी दुर्गा का अवतार है।'

'अवश्य।' गोमती ने उत्तर दिया।

भोजन के उपरान्त नरपतिसिंह मंदिर के एक बड़े कोठे में जा लेटा और तुरन्त सो गया। दूसरी ओर की एक कोठरी में कुमुद और गोमती जा लेटीं।

न मालूम आज कुमुद गोमती को क्यों गले लगा लेने की बार-बार अभिलाषा कर रही थी। आज की संध्या के पहले उसने कभी किसी को गले नहीं लगाया था। पीठ पर हाथ फेरा था, सिर पर कर-स्थापन किया था, वरदान और आशीर्वाद दिये थे। परन्तु दो स्त्रियाँ घण्टों तक जो बे-सिर-पैर की निरर्थक बातें करती हैं और फिर भी नहीं अघातीं, इसका उसके जीवन में कभी अवसर न आया था।

गोमती थकी हुई थी, अङ्ग-अङ्ग चूर हो रहे थे, परंतु मन बहुत हल्का था और आँखों में नींद न थी। जीभ वार्तालाप के लिये लौंक-सी

रही थी। परस्पर की दूरी ने मुहर सी लगा रक्खी थी। कुमुद इस अवस्था को अवगत कर रही थी। एक स्त्री हृदय को दूसरी स्त्री हृदय की मूक भाषा समझने में देर न लगी।

जब दोनों को चुपचाप लेटे-लेटे आधी घड़ी बीत गई, कुमुद ने कहा—'गोमती!'

उसने उत्तर दिया—'मैं अभी सोई नहीं हूं। आप भी जाग रही हैं?'

'फिर वही आप!' जी के उमड़े हुये किसी अज्ञात, अगम्य वेग को रोकते हुये हँसकर कुमुद बोली—'भाई, ऐसे काम नहीं चलेगा। इन दूर की बातों से अन्तर न बढ़ाओ। क्या बहन कहने से तुम्हारे सिर कोई विपद् आती है?'

कुमुद की हँसी में हलकी पैजनी की क्षीण खनक थी, परन्तु गोमती जरा विचलित-कम्पित स्वर में बोली—'मैं ठाकुर की बेटी हूं, इसलिये नहीं डरती; वैसे देवी के मन्दिर में और देवी के इतने निकट रहने पर किसी मनुष्य देहधारी में साहस नहीं हो सकता!'

'तुम्हारी जैसी तो मेरी भी देह है, गोमती! क्या तुम मुझसे डरती हो?'

'देवी, मैं किसी से नहीं डरती। परन्तु सिंहवाहनी दुर्गा का आदर किस तरह हृदय से दूर किया जा सकता है। लोग कहते हैं, आप रात को सिंह पर सवार होकर संसार भर का भ्रमण और दीन-दुखियों का कष्ट निवारण करती हैं।'

'गोमती, लोग और क्या-क्या कहते हैं?' अलसाये हुये कण्ठ से कुमुद ने प्रश्न किया।

गोमती ने उत्तर दिया—'लोग कहते और विश्वास करते हैं और यह बात सच भी है कि दुर्गा रानी किसी प्राणी के कष्ट को रात्रि के अवसान पर उतनी ही मात्रा में नहीं रहने देतीं। प्रातःकाल होते-होते कलियों को चिटक, फूलों को महक, हरियाली को दमक, अनाथों को

सनाथता, पीड़ितों को स्वास्थ्य और दलितों को आश्रय देती हैं—जैसा आज मुझे मिला।'

'गोमती, तुम पढ़ी-लिखी हो।' कुमुद ने ज़रा हँसकर कहा—'इसलिये कविता-सी कह गईं, परन्तु क्या वह नहीं जानती कि देवता का वास मूर्ति में है, मैं तो दुर्गा की केवल पुजारिन हूं ?'

वह बोली—'मेरा भाग्य उदय होना चाहता है, इसलिये आप इतनी दयालु होकर इस तरह मुझसे बातें कर रही हैं। विनती यही है कि यह कृपा कभी कम न हो।

एक क्षण सोचकर कुमुद ने कहा—'पालर में उस दिन की लड़ाई मैं रोकना चाहती थी, परन्तु न रोक सकी। दुर्गाजी की यही इच्छा रही होगी। चाहते हुये भी मैं उस रक्त-पात को न रोक सकी और यहाँ आना पड़ा। इस पर भी गोमती तुम वास्तविक दुर्गा को भुलाकर मुझे दुर्गा कहती हो ? मैं तो केवल होम आदि करने वाली हूँ और यदि तुम मुझे ऐसा ही मानती हो, तो मुझे बहन कहलवाने में ही आनन्द है।'

गोमती ने कहा—'यदि ऐसा है, तो केवल अकेले में बहन कह सकूंगी। सबके सामने कहने में मुझे भय लगेगा।'

'उस दिन युद्ध में क्या हुआ था।'

'दुर्गा ने जो चाहा, सो हुआ। अन्तर्यामिनी होकर भी आप यह प्रश्न करती हैं, यह केवल आपकी महत्ता है।'

'फिर भी तुम्हारे मुँह से सुनना चाहती हूं।'

गोमती ने जितना वृत्तान्त सुन रक्खा था, सुनाया। अपने विवाह से सम्बन्ध रखने वाली घटना नहीं कही।

कुमुद ने पूछा—'उस दिन तुम्हारी बारात आ रही थी, टीका कुशल-पूर्वक हो गया था या नहीं ?'

गोमती ने कोई उत्तर नहीं दिया। एक आह भर ली।

कुमुद ने कहा—'उधर के समाचार मुझे नहीं मिले। पूजार्चा में इतनी संलग्न रही की पूछ नहीं पाया।'

रुद्ध स्वर में गोमती ने कहा—'आपसे कोई बात छिपी थोड़े ही रह सकती है। मैं क्या बतलाऊँ।

कुमुद ने सहानुभूति के साथ कहा—'तुम्हारे ही मुँह से सुनूँगी। सच मानो मुझे नहीं मालूम।'

कुमुद ने उस अंधेरी कोठरी में यह नहीं देखा कि गोमती के कानों तक आँसू बह आये थे। प्रयत्न करके अपने को सम्भालकर गोमती ने उत्तर दिया—'मेरा भाग्य खोटा है, इसमें दुर्गा के आशीर्वाद को क्यों दोष दूँ?' अपनी बारात के दूल्हा से सम्बन्ध रखने वाली शेष रण-कथा भी सुना दी। अन्त में बोली—'घायल राजा पालकी में पड़े हुये थे। वह वन्दनवारों के सामने ही रुक गये। मेरी ओर देखते ही उनके घाव पुलकित हो उठे। सह न सके। थम न सके, जैसे तलवार टूटकर दो टूक हो जाती है, उसी समय धराशाही हो गये! मैं पास भी न जा सकी!'.

'फिर क्या हुआ?' कुमुद ने सहानुभूतिमयी आतुरता के साथ पूछा—'फिर क्या हुआ गोमती?'

'एक निठुर ठाकुर पास आकर बुरी-भली बातें कहने लगा। किसी ने उसे लोचनसिंह के नाम से सम्बोधन किया था।' गोमती ने कहा।

'लोचनसिंह।' कुमुद ने कुछ सोचकर कहा—'यह नाम मुझे भी मालूम है। उस दिन की लड़ाई से इस नाम का कुछ सम्बन्ध है। कहे जाओ बहन, आगे क्या हुआ?'

गोमती कहने लगी—'वह पत्थर का मनुष्य लोचनसिंह उन्हें ठुकरा देना चाहता था। मेरे मन में आया कि खड्ग लेकर उसे ललकारूँ और सिर काटकर फेंक दूँ। इतने पर घोड़े पर बैठे राजकुमार वहाँ आ गये।'

'राजकुमार!' ज़रा चकित होकर कुमुद बोली—'अच्छा फिर?'

गोमती ने उत्तर दिया—'राजकुमार आ गये। उन्होंने धीरे से उनके घायल शरीर को अपने घोड़े पर कस लिया और अपने डेरे पर ले गये। उनका नाम भूल गई हूं।'

'नाम कुञ्जरसिंह है।' कुमुद ने कहा, फिर तुरन्त ज़रा उपेक्षा के साथ बोली—'कुछ भी नाम सही, फिर वे सब कहां गये ?'

'लोचनसिंह ने अपना घोड़ा आपके मकान के सामने रोक लिया।'

'मेरे घर के सामने ?'

'हां, और काकाजू को पुकारा।'

'क्यों ? अच्छा फिर ?'

'वह पूजा करना चाहता था, परन्तु राजकुमार ने कहा—'आओ, मैं नहीं ठहरूँगा।' वह दुष्ट उन्हें अटकाये रखना चाहता था। फिर काकाजू के नाम से पुकार लगाई, कोई नहीं बोला। पड़ोस के पण्डितजी ने कहा—सब लोग दोपहर को ही कहीं चले गये। उसी समय मुझे भी मालूम हुआ कि काकाजू ने घर छोड़ दिया है।'

कुमुद ने ज़रा-सा खाँसा, एक क्षण बाद पूछा—'फिर वे सब लोग पालर में ही बने रहे या उसी रात चले गये ?'

गोमती ने उत्तर दिया—'पण्डितजी के जवाब देने पर राजकुमार घोड़े की लगाम हाथ में थामे वहीं थोड़ी देर खड़े रहे, परन्तु पंडितजी घर से बाहर न निकले। डर गये थे। वह पाषाण-हृदय लोचनसिंह तब राजकुमार को वहाँ से जल्दी-जल्दी लिवा ले गया। सबेरे सुना, राजा अपने दल के साथ दलीपनगर चले गये।'

कई क्षण बाद कुमुद ने पूछा—'दूल्हा का कुशल समाचार मिल गया था ?'

ज़रा संकोच के साथ गोमती ने कहा—'दूसरे दिन खबर लगी थी कि राजकुमार, जिसका नाम आपने कुञ्जरसिंह बतलाया है, रातभर मरहम-पट्टी करते और दवा देते रहे। इससे आगे और कुछ नहीं सुना। आप तो राजकुमार को जानती होंगी !'

'मैंने उनका वह नाम यों ही सुन लिया था।' कुमुद बोली—'अब सो जाओ, बहुत थकी हुई हो।'

'अभी तो नींद नहीं आ रही है, सो जाऊँगी। आप सोयें।'

'मैं भी अभी उनींदी नहीं हुई हूं। पालर का और क्या समाचार है?'

'गाँव सुनसान हो गया है। केवल चलने-फिरने से अशक्त लोग और थोड़े से किसान वहाँ रह गये हैं। मुसलमानों की चढ़ाई होने वाली है। सुनते हैं, वे लोग देश को उजाड़ देंगे। कुछ लोग कहते हैं, वे मन्दिर का अपमान करने की भी चेष्टा करेंगे।'

क्षुब्ध स्वर में कुमुद ने कहा, मानो कई तार एक साथ झंकार मार गये हों—'क्या सब क्षत्रिय उस समय पालर की झील या बेतवा की धार में डूबकर प्राण बचा ले जायेंगे? क्या बड़नगर और दलीपनगर के हिन्दू उस समय सोते ही रहेंगे?'

गोमती जरा भयभीत हो गई, पर एक क्षण बाद दृढ़ता के साथ बोली—'यद्यपि कुछ लोगों ने वहाँ जाकर फरियाद भी की थी और सुनते हैं, दलीपनगर के राजा राजधानी छोड़कर पंचनद की ओर चले गये हैं।'

[१८]

राजा नायकसिंह अपने दल के साथ एक दिन पंचनद पहुँच गये।

पंचनद, जिसे पचनदा भी कहते हैं, बुन्देलखण्ड का एक विशेष स्थान है। यमुना, चंबल, सिन्धु, पहूज और कुमारी, ये पाँच नदियाँ उस जगह आकर मिली हैं। स्थान की विस्तृत भयानकता उसकी विशाल सुन्दरता से होड़ लगाती है। बालू, पानी और हरियाली का यह संगम वैभव, भय और सौंदर्य के विचित्र मिश्रण की रचना करता है।

इस संगम के करीब एक गढी थी। राजा उसी में जाकर ठहरे। संध्या के पहले ही डेरे पड़ गये।

आज तबियत कुछ ज्यादा खराब थी, परन्तु बातचीत करने का चाव अधिक था। कुञ्जरसिंह को बुलाकर पूछा—'लोचनसिंह कहाँ हैं?' और लोचनसिंह के उपस्थित होने पर प्रश्न किया—'कुञ्जरसिंह कहाँ हैं?'

जितने प्रमुख लोग गढ़ी में राजा के साथ आये थे, सब जानते थे कि राजा के साथ यहाँ आने में गलती की है। मार्ग से भटकी हुई इस दूर की गढ़ी में पहुंचकर किसी को भी हर्ष नहीं हुआ। केवल लोचनसिंह ने ठण्डा पानी पीकर, घोड़े की पीठ ठोकते-ठोकते सोचा कि आज रात-भर अच्छी तरह सोऊँगा। कालपी पंचनद से दूर नहीं थी। कालपी के फौजदार से किसी तत्काल संकट की आशंका न थी। उन दिनों मिलाप करते-करते छुरी चल पड़ती थी और छुरी चलते-चलते मिलाप हो जाता था। पञ्चनद दलीपनगर की सीमा के भीतर था। हकीम द्वारा फौजदार की शांति-वृत्ति का पता लग चुका था और दलीपनगर की सेना भी निर्बल न थी। जनार्दन मेल और लड़ाई दोनों के लिये तैयार था। कुछ लोग सोचते थे कि दलीपनगर छोड़ आने में राज्य की हत्या का-सा काम किया, परन्तु उस परिस्थिति में राजा की आज्ञा का उल्लंघन करना असंभव था। इसलिये ऐसे लोग पछतावा तो प्रकट न करते थे, परन्तु राजा के लिये चिन्तित दिखाई पड़ते थे। ऐसे लोगों में केवल जनार्दन कम से कम ऊपर से चिंतित नहीं दिखाई पड़ता था।

सभी अगुओं के मन में एक बात ही थी—राजा की समाप्ति कब शीघ्रतापूर्वक हो और कब राजसत्ता किसी अच्छे आदमी के हाथ में सुव्यवस्था का संग्रह कर दे। केवल देवीसिंह राजा के निकटवर्तियों में ऐसा था, जो भगवान् से राजा के स्वास्थ्य-लाभ के लिये दिन में एक-आध बार प्रार्थना कर लेता था।

षड्यन्त्र खूब सरगर्मी पर थे। बिना किसी लाज-संकोच के राजा के पलङ्ग से चार हाथ के ही फासले पर रचित षड्यन्त्रों की काना-फूसी और षड्यन्त्र-रचना की बहस होने लगी।

लोगों को यह दिखलाई पड़ रहा था कि सैनिकों का विश्वास लोचनसिंह के बल-विक्रम पर और जनार्दन की दक्षता तथा कुशलता पर है। जनार्दन अपनी आर्थिक समर्थता और व्यवहार-पटुता के कारण पंचनद पर सेना के विश्वास का स्तम्भ-सा हो गया। खुल्लम-खुल्ला कोई रानी उसके खिलाफ कुछ नहीं कह रही थी। लोचनसिंह के पास न कोई षड्यन्त्र था और न कोई षड्यन्त्रकारी दल। षड्यन्त्र की सृष्टि के लायक कुञ्जरसिंह में न तो यथेष्ट मानसिक चपलता थी, और न किसी षड्यन्त्र के प्रबल नायकत्व के लिये पूरी नैतिकहीनता। भीतर महलों में षड्यंत्र बनते और बिगड़ते थे। सुलझाई हुई उलझनें और उलझती जाती थीं। अच्छी-अच्छी योजनायें भी तैयार हो जाती थीं, परन्तु उनके लिये योग्य संचालक की अटक थी।

दो दिन ठहरने के बाद बड़ी रानी ने कुञ्जरसिंह को बुलाकर प्रस्ताव किया कि दलीपनगर तुरन्त लौट चलो। यह प्रस्ताव कथन में जितना सहज था, व्यवहार में उतना नहीं।

कुञ्जर ने कहा—'यह असम्भव है। काकाजू की मर्जी नहीं है। यदि हमने सैनिकों से कहा और उन्होंने न माना, तो तिल धरने को भी स्थान न रहेगा।

'लोचनसिंह से कहो कि मेरी आज्ञा है। राजा को इस समय भले-बुरे का चेत ही नहीं।

'मैंने लोचनसिंह का रुख भी परख लिया है। उनके जी में किसी ने यह बात बिठला दी है कि महाराज इस स्थान को कदापि न छोड़ेंगे और यहीं स्वस्थ हो जायेंगे।'

'किसने ?'

'हकीमजी ने।'

'आगा हैदर के लड़के ने ?'

'हाँ, महाराज।'

'लोचनसिंह को बुला दो।' एक क्षण सोचकर फिर रानी बोली— 'मत बुलाओ उस लट्ठ को। वह गँवार रक्त, तलवार और सिर के सिवा हमारी सहायता की कोई और बात न कर सकेगा कुञ्जरसिंह।'

'आज्ञा।'

'समय आ गया है।'

'यह तो मैं भी देख रहा हूँ।'

'तुम अन्धे हो और अपाहिज भी।'

कुञ्जरसिंह कान तक लाल हो गया, परन्तु चुप रहा। रानी बोलीं— 'तुम्हारे साथ कोई नहीं दिखलाई देता और मेरे पक्ष का भी इस जङ्गल में कोई नहीं। मुझे इसी समय दलीपनगर पहुँचा सकते हो ?'

'प्रयत्न करता हूं।' उत्तर मिला।

'कुञ्जरसिंह वहाँ से जाने को ही हुआ था कि रामदयाल रोनी सूरत बनाये आया, बोला—'ककोजू—'

'हाँ, बोल कह क्यों रुक गया ?' रानी ने कुछ कठोरता के साथ पूछा।

'ककोजू।' रामदयाल ने कहा—'जमनाजी से रज और गंगाजल मँगाने का हुकुम हुआ है। चलन हौवै।'

'क्या दशा बहुत बिगड़ गई है ?' रानी ने कंपित स्वर में पूछा।

'हाँ महाराज।' कह कर रामदयाल छोटी रानी के पास चला गया।

उसी समय जनार्दन वहाँ आया। रानी आड़ में हो गईं। उत्तर देने वाली दासी, जिसे जवाबवाली कहते हैं, रानी के कहलवाने से बोली–'कहिये, महाराज का हाल अब कैसा है ?'

'पहले से बहुत अच्छा है।' जनार्दन ने उत्तर दिया—'उन्हें खूब चेत है। परन्तु अन्त समय दूर नहीं मालूम होता। दीप-शिखा की अन्तिम लौ की तरह वह जगमगाहट है। बार-बार देवीसिंह का नाम ले रहे हैं। वह महाराज के पास ही बैठे हैं। दावात-क़लम मँगाई थी।

कुञ्जरसिंह ऐसे हिला, जैसे किसी ने यकायक झकझोर डाला हो। बोला—'दावात-क़लम किस लिये मँगाई थी ?'

स्पष्टता के साथ जनार्दन ने जवाब दिया—'कदाचित् अपना अंतिम आदेश अंकित करना चाहते हैं। दावात-कलम पहुंच गई है, काग़ज़ पर कुछ लिख भी चुके हों।'

'छोटी महारानी कहाँ है ?' रानी ने तुरन्त पुछवाया।

उत्तर दिया—'उन्हें भी बुलवाया गया है। आप भी यथासंभव शीघ्र चलें।'

कुञ्जरसिंह सन्न होकर बैठ गया। जनार्दन चला गया।

[१९]

उसी समय पंचनद की छावनी में हकीम आग़ा हैदर आ गया। आते ही उसने जनार्दन से कहा—'यहाँ आकर बहुत बुरा किया। क्या राजा को मारने के लिये लाये थे?'

'नहीं, उनकी इच्छा उन्हें यहाँ ले आई। अब वह जा रहे हैं।'

'फिर दलीपनगर?'

'नहीं, गोलोक!'

'ऐसी जल्दी! उफ़!'

'यह सब पीछे सोचियेगा। राजा के पास तुरन्त चलिये।'

दोनों जा पहुंचे। लोचनसिंह दवा-दारू में व्यस्त था। उसने पंचनद पर आने के पश्चात् हर्षपूर्वक इस कर्तव्य को स्वीकार कर लिया। एक-एक युद्ध के लड़ने-जीतने में होता होगा। और वह इस कार्य में इतना संलग्न था कि उसे इधर-उधर क्या हो रहा है, इसका कुछ भी चेत न था। इतना विश्वास उसे अवश्य था कि राजा का औषधोपचार सावधानी के साथ हो रहा है। देवीसिंह राजा के पास बैठा उनकी देख-भाल कर रहा था। छोटी रानी एक ओर पर्दे में बैठी हुई थीं।

संकेत में आग़ा हैदर ने अपने लड़के से राजा की दशा पूछी। उसने सिर हिलाकर निराशा-सूचक संकेत किया। आग़ा हैदर ने पास जाकर देखा

राजा क्षीण स्वर में बोले—'हकीम जी, कहाँ थे?'

काँपते हुए गले से आग़ा हैदर ने कहा—'कदमों में।'

'आज सब पीड़ा खत्म होती है हकीमजी।' राजा सिसकते हुये बोले।

रोते हुए आगा हैदर ने कहा—'हुजूर की ऐसी अच्छी तबियत बहुत दिनों से देखी गई थी। आशा होती है……'

राजा ने हाथ हिलाकर सिर पर रख लिया।

'हकीमजी कालपी गये थे महाराज, वह अलीमर्दान को किसी गड्ढे में खपाने की चिंता में हैं।' लोचनसिंह ने राजा को शायद प्रसन्न करने के लिये कहा।

आग़ा हैदर ने हाथ जोड़कर लोचनसिंह को वर्जित किया।

'हकीमजी', लोचनसिंह ने धीरे से कहा—'क्षत्रिय न तो रण की मृत्यु से डरता है और न घर की मृत्यु से।'

इतने में एक ओर पर्दे में बड़ी रानी भी आ बैठीं।

रामदयाल ने छोटी रानी के पास से आकर जनार्दन से ज़रा ज़ोर से कहा—'आप सब लोग बाहर हो जायें कक्कोजू दर्शन करना चहती हैं।'

राजा ने यह सब वार्ता कुछ सुन ली, कुछ समझ ली। टूटे हुये स्वर में बोले—'तब सब लोग यही समझ रहे हैं कि मैं मरने को हूँ। कुञ्जरसिंह कहाँ हैं ?'

कुञ्जरसिंह तुरन्त हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया। राजा की आँखों में आँसू आ गये और गला रुँध गया। कुछ कहने को हुये, न कह पाये। कुञ्जरसिंह की आँखें भी डबडबा आईं।

जनार्दन इस समय बहुत सतर्क था, दृष्टि तुली हुई और सारी देह कुछ करने के लिये सधी हुई। वह ऐसा जान पड़ता था, जैसे किसी महत्वपूर्ण नाटक का सूत्रधार हो। उसने लोचनसिंह की ओर देखते हुए कहा—'इस समय महाराज को बात करने में जितना कम कष्ट हो, हम अपना उतना ही बड़ा सौभाग्य समझें।'

लोचनसिंह ने कुञ्जरसिंह के पास जाकर कहा—'राजकुमार ज़रा इधर आइये।' इच्छा-विरुद्ध कुञ्जरसिंह दूसरी ओर दो-तीन क़दम के फ़ासले पर हट गया।

जनार्दन दावात-क़लम और काग़ज़ लेकर राजा के पास जाकर झुक गया। राजा असाधारण चीत्कार के साथ बोले—'मुझे क्या तुम सबने पागल समझ लिया है ?' और तुरन्त अचेत हो गये। रामदयाल झपटकर राजा के पास आना चाहता था, लोचनसिंह ने रोक लिया।

कुञ्जरसिंह ने हकीम से कहा—'आप देख रहे हैं कि आपकी आँखों के सामने यह क्या हो रहा है ?'

'मेरी समझ में कुछ नहीं आता।' हकीमजी ने आँखें मलते हुये कहा।

'यह दुधारा खाँड़ा भी आज किसी लोभ में आ गया है।' लोचनसिंह की ओर इङ्गित करके कुञ्जरसिंह ने दबे गले से कहा और दृढ़तापूर्वक अपने पिता के पैताने जाकर खड़ा हो गया।

लोचनसिंह धीरे से बोला—'महाराज जिसे चाहेंगे, उसे लिख देंगे। किसी को उनसे अपनी माँग-चूंग नहीं करनी चाहिये।'

एक क्षण बाद राजा को होश आता देखकर जनार्दन ने ज़ोर से कहा—'क़लम-दावात मँगवाई थी, सो आ गई है। देवीसिंह के लिये आदेश हुआ, वह यहां उपस्थित हैं।'

'मुझे किस लिये ?' एक कोने से देवीसिंह ने पूछा।

जनार्दन ने आग्रह के ऊँचे स्वर में कहा—'अब आज्ञा हो जाय।'

राजा ने कुछ मुंह ही मुंह में कहा, परन्तु सुनाई नहीं पड़ा।

जनार्दन ने मानो कुछ सुना हो। बोला—'बहुत अच्छा महाराज, यमुनाजी की रज और गंगाजल ये हैं।' वह सामग्री पास ही रक्खी थी।

रामदयाल ने छोटी रानी के पर्दे के पास से चिल्लाकर कहा—'हकीमजी, यहां जल्दी आइये।'

हकीम राजा को छोड़कर नहीं गया। तब रामदयाल चिल्लाया—'कुंजरसिंह राजा आप ही इधर तक चले आओ।'

जैसे किसी ने ढकेल दिया हो, उसी तरह कुञ्जरसिंह छोटी रानी के पर्दे के पास पहुंचा। छोटी रानी ने सबके सुनने लायक स्वर में कहा—'भकुये बने खड़े क्या कर रहे हो ? तुम राजा के कुंवर हो, क्यों अपना हक़ मिटने देते हो ? जाओ, राजा के पास अपना हक़ लिखवा लो।'

लोचनसिंह बोला—'राजा जिसे देंगे, वही पावेगा। हक़ ज़बरदस्ती नहीं लिखवाया जा सकता।'

कुंजरसिंह राजा के पलंग की ओर बढ़ा। इतने में जनार्दन ने कहा—'महाराज देवीसिंह का नाम ले रहे हैं। सुन लो चामुंडराय

लोचनसिंह, सुन लो हकीमजी, सुन लो कुंजरसिंह राजा, सुन लो कक्कोजू !' और सब चुप रहे।

लोचनसिंह बोला—'आप झूठ थोड़े ही कह रहे हैं।'

राजा ने वास्तव में देवीसिंह का नाम दो-तीन बार उच्चारण किया था। परन्तु क्यों किया था, इस बात को सिवा जनार्दन के और कोई नहीं बतला सकता था।

जनार्दन ने और किसी ओर ध्यान दिये बिना ही खूब चिल्लाकर राजा से कहा—'तो महाराज देवीसिंह को राज्य देते हैं ?'

राजा ने केवल 'देवीसिंह' का नाम लेकर उत्तर दिया और ज़रा देर तक सिर कंपाते रहे। होठों पर कुछ स्पष्ट शब्द हिले, परन्तु सुनाई कुछ भी नहीं पड़ा। और लोगों के मन में सन्देह जाग्रत हुआ हो या न हुआ हो, परन्तु लोचनसिंह के मन में कोई संशय न रहा।

जनार्दन ने राजा के हाथ में कलम पकड़ाकर कहा,—'तो लिख दीजिये इस काग़ज़ पर कि देवीसिंह राजा हुये।' राजा का हाथ अशक्त था। किंतु किसी क्रिया के लिये ज़रा हिल उठा। सबने देखा। जनार्दन ने तुरन्त उस हिलते हुये हाथ को अपने हाथ में पकड़कर काग़ज़ पर लिखवा लिया—देवीसिंह राजा हुये। उसके नीचे राजा की सही भी करा ली।

जनार्दन ने देवीसिंह को तुरन्त इशारे से पास बुला लिया। बोला—'महाराज अपने हाथ से तिलक भी कर दें।' और गङ्गाजल से राजा के अँगूठे को भिगोकर अपने हाथ से हाथ थामे हुये जनार्दन ने देवीसिंह का मस्तक अभिषिक्त करा दिया।

लोचनसिंह से कहा—'तोपें दगवा दो।'

हकीम बोला—'कालपी खबर पहुंचने में देर न लगेगी। इसी जगह चढ़ाई हो जायगी।'

'होवे।' जनार्दन वेग के साथ बोला—'थोड़ी देर में संसार भर जान जायगा, अभिषेक गुपचुप नहीं होगा, खुल्लमखुल्ला होगा।'

लोचनसिंह बाहर चला गया।

रामदयाल चिल्लाया—'कक्कोजू की मर्जी है कि यह सब जाल है। महाराज कुछ सुन या समझ नहीं सकते। राजा कुन्जरसिंह महाराज हो सकते हैं और किसी का हक नहीं है।'

बड़ी रानी ने कहलवाया—पहले भलीभाँति जाँच कर ली जाय कि महाराज ने अपने चेत में यह आदेश लिखा है या नहीं। व्यर्थ का बखेड़ा नहीं करना चाहिये।

बड़ी रानी की ओर हाथ बाँधकर जनार्दन बोला—'बड़ी कक्कोजू के जानने में आवे कि राज्य कुँवर देवीसिंह को ही दिया गया है।'

इतने में राजा कछ अधिक कम्पित हुये। जरा जोर से बोले—'कुन्जर—सिंह।'

'मेरा नाम ले रहे हैं।' कुन्जरसिंह ने अबकी बार चीखकर कहा—'मुझे राज्य दे रहे हैं।'

जनार्दन ने कहा—'कभी नहीं, राजा अब अचेत हैं।'

राजा ने फिर अस्थिर कण्ठ से कहा—'देवीसिंह।'

'राज्य मुझे दिया है।' देवीसिंह कठोर स्वर में बोला।

कुञ्जरसिंह राजा के पास आ गया। बड़ी रानी ने निवारण करवाया। छोटी रानी ने बढ़ावा दिलवाया। रामदयाल कुञ्जरसिंह के पास खड़ा हो गया।

'धायँ, धायँ, धायँ।' उधर तोपों का शब्द हुआ।

'महाराज देवीसिंह की जय!' तुमुल स्वर में कोठी के बाहर सिपाही चिल्लाये।

इतने में राजा ने क्षीण स्वर में 'कुञ्जरसिंह!' फिर कहा। कुञ्जरसिंह और रामदयाल ने सुना। शायद जनार्दन ने भी।

कुन्जरसिंह बोला—'अब भी छल और धूर्तता करते ही चले जाओगे? मेरा नाम ले रहे हैं।'

'नहीं।' देवीसिंह ने कहा।

'नहीं।' जनार्दन बोला।

'आग़ा हैदर चुपचाप एक कोने में खड़ा था।

छोटी रानी पर्दे से चिल्ला उठीं—'कायर, डरपोक, क्या राज्य ऐसे लिया जाता है ?' पर्दा ज़ोर से हिला, मानो रानी सबके सामने किसी भयानक वेश में आने वाली हैं। रामदयाल लपककर दरवाजे पर जा डटा।

कुञ्जरसिंह ने तलवार खींच ली। इतने में लोचनसिंह आ गया। बोला—'यह क्या है कुंजरसिंह राजा ?'

'ये लोग मुझे अब अपने राज्य से वंचित करना चाहते हैं, दाऊजू। काकाजू ने अभी-अभी नाम लेकर मुझे राज्य दिया है।'

'तलवार म्यान में राजा।' लोचनसिंह ने कुञ्जरसिंह के पास जाकर डपटकर कहा—'जो कुछ महाराज ने किया है, वह सब मेरे देखते-सुनते हुआ है।'

'धोखा है।' रामदयाल चिल्लाकर छोटी रानी के दरवाजे पर डटे हुये बोला।

राजा ऊर्ध्व-श्वास लेने लगे।

हकीम गरजकर बोला—'महाराज को शांति के साथ परमधाम जाने दीजिये। अब एक-दो क्षण के और हैं, पीछे जिसे जो दिखाई दे, कर लेना।'

राजा की अवस्था ने उपस्थित लोगों के बढ़ते हुये क्रोध पर छाप-सी लगा दी।

राजा को भूमि पर शय्या दे दी गई। मुँह में गङ्गाजल डाल दिया गया।

तोपों और जय-जयकार के नाद में राजा नायकसिंह की संसार-यात्रा समाप्त हो गई।

[२०]

बहुत सपाटे के साथ लोग पंचनद से दलीपनगर लौट आये, केवल कुञ्जरसिंह पीछे रह गया। राज्य-भर ने पुरानी रीति के अनुसार सूतक मनाया, बाल मुड़वाये, परन्तु वास्तव में कोई दुःखी था या नहीं, यह बतलाना कठिन है।

असफल प्रयत्न के पीछे पड़ना बड़ी रानी की प्रकृति में न था। एक बार मनोरथ विफ़ल होते ही पुनः प्रयत्न करना उनके मानसिक संगठन के बाहर की बात थी। छोटी रानी को देवीसिंह का राजतिलक बहुत बुरा लगा। वह सती नहीं हुई। यह देखकर और शायद देवीसिंह के मनाने पर बड़ी रानी भी सती नहीं हुईं।

जनार्दन प्रधान मंत्री घोषित कर दिया गया और लोचनसिंह प्रधान सेनापति। इसी बीच में दिल्ली से जो समाचार अलीमर्दान को मिला, उससे उसकी बहुत-सी चिंताएँ दूर हो गईं। उसने दलीपनगर पर आक्रमण करना निश्चित कर लिया। यदि अलीमर्दान को वह समाचार कुछ दिन पहले मिल गया होता, तो शायद वह पंचनद पर ही युद्ध ठानने की चेष्टा करता। परन्तु इसकी सम्भावना थी बहुत कम, क्योंकि बहुत दूर न होते हुये कालपी से पंचनद पर तोपों का घसीट ले जाना काफ़ी समय ले लेता।

अब कालपी में दलीपनगर के ऊपर चढ़ाई करने के लिये तैयारी होने लगी। दलीपनगर में इसकी खबरें आने लगीं।

थोड़े दिनों बाद वह सेना कालपी से चल पड़ी।

उधर दलीपनगर में भी खूब तत्परता के साथ जनार्दन और लोचनसिंह द्वारा सैन्य-संगठन होने लगा। प्रजा में विश्वास का संचार हुआ। देवीसिंह इस तरह राजसिंहासन पर बैठने लगा, जैसे दरिद्रता या सामाजिक स्थिति की लघुता ने कभी उनका सम्पर्क ही न किया हो।

उसी समय समाचार मिला कि कुञ्जरसिंह ने कुछ सरदारों को साथ लेकर सिंध तटस्थ सिंहगढ़ पर क़ब्ज़ा करके विद्रोह का झण्डा खड़ा कर

दिया है । जनार्दन ने यह भी सुना कि छोटी रानी कुञ्जरसिंह को उभाड़ने और द्रव्य आदि से सहायता करने में कोई संकोच नहीं कर रही हैं । इस पर भी नये राजा ने उनके साथ कोई बुरा वर्ताव करने का लक्षण नहीं दिखलाया ।

परन्तु जनार्दन से सहन नहीं हुआ । बुलाकर रामदयाल से कहा—'तुम्हारी सब चालें हमें विदित हैं। कुञ्जरसिंह राजा अपने किये का फल पायेंगे। परन्तु तुम उनसे अपना कोई सम्बन्ध मत रखो, नहीं तो किसी दिन सिर से हाथ धो बैठोगे।'

'मैंने क्या किया है पंडित जी ?' रामदयाल ने पूछा ।

'तुमने कुञ्जरसिंह के पास रुपया-पैसा भेजा है । तुम यहाँ के भेद कुञ्जरसिंह के पास भेजते रहते हो।'

'मैंने यह कुछ भी नहीं किया।'

'छोटी रानी और तुम यह सब नहीं कर रहे हो ?'

'वह करती होंगी, महारानी हैं, मैं तो नौकर-चाकर हूं।'

'खाल खिचवाकर भुस भरवा दिया जायगा, जो किसी शेखी में भूले हो।'

'किसकी खाल ? रानी की ?'

'मैंने यह तो नहीं कहा, परन्तु यदि रानी पृथ्वी को सिर पर उठायेंगी, तो क्या वह न्याय से बच जायंगी ? धैर्य की सीमा समाप्त हो चुकी है।'

'मेरा कोई अपराध नहीं ।' कहकर रामदयाल चला गया ।

जनार्दन दूसरे कामों में लग गया और इस वार्तालाप को भूल गया । खबर लगी कि अलीमर्दान सेना लेकर राज्य की सीमा के पास से होता हुआ बढ़ता आ रहा है, परन्तु सीमा के भीतर प्रवेश नहीं किया, और न राज्य की किसी प्रजा को सताया ही है । शायद कहीं और जा रहा हो । कम-से-कम अपनी तरफ़ से कारण न उपस्थित किया जाय । ऐसी

दशा में उससे लड़ने के लिये सेना भेजना राजा देवीसिंह ने उचित नहीं समझा, परन्तु अपने यहाँ चौकसी रक्खी। कुञ्जरसिंह को सिंहगढ़ से निकाल भगाने के लिये कुछ सेना उस ओर रवाना कर दी। कुञ्जरसिंह अपनी छोटी-सी सेना के साथ सिंहगढ़ में घेर लिया गया। सिंधु नदी साँप की तरह कतराती हुई इस क़िले के नीचे से बहती चली गई है। नदी के उस ओर भयानक जंगल था। क़िले में खाद्य-सामग्री थोड़े दिनों के लिये थी। घेरा प्रचंडता और निष्ठुरता के साथ पड़ा। क़िले से बाहर निकलकर लड़ना आत्मघात से भी अधिक बुरा था। क़िले की दीवारों पर तोपें निरंतर गोले फेकने लगीं। बचने का कोई उपाय न देखकर जो कुछ उसे अनिवार्य दिखाई पड़ा, वही निश्चय किया, अर्थात् लड़ते-लड़ते मर जाना।

[२१]

मौक़ा मिलते ही रामदयाल ने छोटी रानी को जनार्दन द्वारा अपमानित होने की बात सुना दी। रानी के क्रोध का पार न रहा। बोलीं—'मैं तब अन्नजल ग्रहण करूंगी, जब जनार्दन का सिर काटकर मेरे पास ले आवेगा।'

रामदयाल को विस्मय हुआ, वह रानी के हठी स्वभाव को जनता था। उसकी यह कल्पना न थी कि बात इतनी बढ़ जायगी। बोला—'अभी काकाजू की तेरही नहीं हुई है; जब हो जायगी, तब इस काम के होने में देर नहीं लगेगी।'

'तेरहीं होने के दो-तीन दिन रह गये हैं। मैं तब तक बिना अन्न-जल के रहूँगी।'

'ऐसा न करें महाराज, यदि शरीर को कुछ क्षति पहुंची, तो जो कुछ थोड़ी-सी आशा है, वह भी नष्ट हो जायगी।'

'यदि जनार्दन मार डाला गया, तो मानो राज्य ही प्राप्त हो गया। उसी के प्रपञ्च से आज मैं इस दशा को पहुंची हूं। उसी के षड़यन्त्रों से राज्याधिकार से वर्जित रही, उसी की धूर्तता के कारण सती न हो पाई। बोल, तू उसका सिर काट सकेगा?'

'मैं आज्ञा-पालन से कभी न हिचकूंगा।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'फिर चाहे चरणों की सेवा में मुझे अपने प्राण भले ही उत्सर्ग करने पड़ें।'

'तब ठीक है।' रानी ने ज़रा सन्तोष के साथ कहा—'परन्तु अन्न-जल तभी ग्रहण करूंगी।'

रामदयाल ने विषयांतर के प्रयोजन से कहा—'कालपी से अलीमर्दान की सेना आ रही है।'

'आती होगी; मुझे उसकी कोई चिंता नहीं।'

'इधर से सिंहगढ़ की ओर सेना भेजी गई है। बहुत-सी तोपें भी गई हैं। जनार्दन को इस समय अलीमर्दान इतना बड़ा शत्रु नहीं जान पड़ रहा है, जितना कुञ्जरसिंह राजा।'

रानी ने चकित होकर पूछा—'कुञ्जरसिंह को समाचार भेज दिया या नहीं ?'

उत्तर दिया—'कड़ा पहरा बिठलाया गया है। गुप्तचर वेश बदलकर घूम रहे हैं। वहाँ जाने के लिये मेरे सिवा और कोई नहीं है।'

रानी बोलीं—'तुम्हारे चले जाने से यहाँ मेरे निकट कोई विश्वस्त आदमी नहीं रहेगा। तुम किसी तरह उनके पास यह समाचार पहुँचा दो कि सिंहगढ़ की रक्षा के लिये अधिक मनुष्य एकत्र कर लो, तब तक मैं अन्य सरदारों को ठीक करती हूँ।'

'परन्तु दूसरा काम भी मेरे सुपुर्द किया गया है।' रामदयाल ने बनावटी संकोच के साथ कहा।

छोटी रानी गये-गुजरे पक्ष के लिये हार्दिक अभिलाषा तक का बलिदान कर डालने वालों के स्वभाव की थीं। बोलीं—'अच्छा, जनार्दन का शीश काटने के लिये एक सप्ताह का समय देती हूँ। एक सप्ताह के पश्चात् मेरा व्रत आरम्भ हो जायगा। अभी स्थगित किये देती हूं। जल्दी कर।'

सिर खुजलाते हुये अत्यन्त दीनतापूर्वक रामदयाल ने कहा—'सेना को सिंहगढ़ की ओर गये हुये देर हो गई है। बहुत तेज़ घोड़े की सवारी से ही इस सेना से पहले सिंहगढ़ पहुंचा जा सकता है। इधर जनार्दन की हम लोगों पर बड़ी पैनी आँख है। कोई अन्य विश्वसनीय आदमी हाथ में नहीं।'

'अच्छा, मैं पुरुष वेश में सिंहगढ़ जाती हूँ।' रानी ने तमककर कठिनाइयों का निराकरण किया—'देखें, मेरा कोई क्या करता है ?'

परन्तु धीरे से रामदयाल ने कहा—'महाराज, इस तरह अपने महल को छोड़कर स्वयं देश-निष्कासित होने से कुञ्जरसिंह राजा को कोई सहायता आपके द्वारा न मिलेगी और निश्चित स्थान से अनिश्चित स्थान में भटकने की नई कठिनाई का भी सामना करना पड़ेगा।'

रानी की आँख से चिनगारी छूट पड़ी। 'मैं दलीपनगर के इस बिल में चूहे की मौत नहीं मरूँगी।' रानी ने कहा—'बड़ी की तरह नहीं हूँ कि ऐरों-ग़ैरों का उस पवित्र सिंहासन पर बैठना सह लूं। घोड़ा तैयार करवा। हथियार और कवच ला।'

रामदयाल आज्ञा-पालन के लिये चला, फिर लौटकर हाथ बांधकर खड़ा हो गया।

रानी डपटकर बोलीं—'क्या मैं ही तेरी खाल खींचूं? जानता है क्षत्रिय-कन्या हूँ, अपने हाथ से भी घोड़े पर जीन कस सकती हूँ।'

'महाराजा।' रामदयाल बड़बड़ाया।

रानी ने अपने कोषागार से तलवार, ढाल और दो पिस्तोलें निकाल लीं। मुस्कराकर कहा—जैसे साँवन की अँधेरी रात में बादलों के भीतर बिजली की एक रेखा थिरक गई हो—'तुझे हथियार उठा लाने का प्रयत्न न करना पड़ेगा। घोड़ा कस सकेगा?'

'महाराज।' रामदयाल ने कम्पित स्वर में कहा—'मैं भी साथ चलूँगा। यदि सर्वनाश ही होना है, तो हो। नहीं तो पीछे मेरी लाश को किसी घूरे पर गीध और गीदड़ नोचेंगे।'

रानी थककर चौकी की तकिया के सहारे बैठ गईं।

एक क्षण बाद पूछा—'बोल, क्या कहता है?'

'एक उपाय है। आज्ञा हो, तो निवेदन करूँ?'

'कहता क्यों नहीं मूर्ख। क्या ताम्रपत्र पर खुदवाकर आज्ञा दूँ?'

रामदयाल ने स्थिरता के साथ उत्तर दिया—'अलीमर्दान की सेना दलीपनगर पर आक्रमण करने आ रही है। अभी दूर है, परन्तु थोड़े दिन में अवश्य ही निकट आ जायगी। जनार्दन उस सेना से युद्ध करने की तैयारी कर चुका है। लड़ाई अवश्य होगी। संधि के लिये कोई गुंजायश नहीं रही। हो भी, तो कोई चिन्ता नहीं।'

'यह सब क्या पहेली है रामदयाल?' रानी ने झुंझलाकर पूछा—'सीधी तरह कह डाल, जो कुछ कहना हो।'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'अन्नदाता, अलीमर्दान ने अपने राज्य का कुछ नहीं बिगाड़ा था। लोचनसिंह दाऊजी ने नाहक़ उसकी फ़ौज के एक सरदार को मार डाला। यदि वह उसका बदला लेने के लिये आ रहा है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। मंदिर और दुर्गाजी के अपमान की बात बिलकुल बनावटी है। अलीमर्दान को केवल रुपये से ग़रज़ है।'

रानी उठ खड़ी हुई। आँखें जल रही थीं, परंतु धीमे स्वर में बोलीं—'देख रामदयाल, यदि तू पागल हो गया है, तो तेरी कोई दवा-दारू न होगी। मैं एक ही वार में तेरा सब रोग बहा दूँगी। जनार्दन का मद दूसरे वार में शांत हो जायगा; फिर यदि यह राज्य अलीमर्दान को मर्द डाले, तो चिंता नहीं और यदि वह इसे, तो भी चिंता नहीं। यदि तेरी बात समाप्त हो गई हो और तू अचेत न हो, तो तुरंत घोड़ा कस ले।'

रामदयाल वहाँ से नहीं टला। शीघ्रता-पूर्वक बोला—'कई बार दिल्ली के बादशाहों का साथ इस राज्य ने दिया है। अबकी बार दिल्ली के सरदार से यदि सहायता ली जाय, तो क्या बुराई है?'

रानी बैठ गई, सोचने लगीं। सोचती रहीं।

रामदयाल बीच में बोला—'अलीमर्दान से बड़नगरवाले नहीं लड़ रहे हैं, बिराटा का दाँगी राजा नहीं लड़ रहा है, दलीपनगर को ही क्या पड़ी है, जो व्यर्थ का वैर बिसावे? उसकी सहायता से यदि आप या कुञ्जरसिंह राजा सिंहासन पा सकें, तो कोई अनुचित बात नहीं।'

रानी ने थोड़ी देर में बहुत थके हुये स्वर में कहा—'तब कुञ्जरसिंह के पास न जाकर अलीमर्दान के पास जा। मेरी राखी लेता जा। यदि वह मंदिर तोड़ने के लिये आया हो, तो बिना कोई बातचीत किये तुरंत लौट आना। फिर मुझे सिवा जनार्दन के सिर के और कुछ न चाहिये। उस सिर को घूरे पर फेंककर सती हो जाऊँगी।'

[२२]

कुछ दिन पीछे विराटा में भी खबर पहुंची कि कालपी के सूबेदार अलीमर्दान की सेना पालर में पहुंच गई है। मंदिर तोड़कर नष्ट कर दिया है और कुमुद को लक्ष्य करके दलीपनगर पर आक्रमण करने वाली है। यह समाचार वहाँ पहले ही पहुंच गया था कि दलीपनगर का राज्य किसी एक अप्रसिद्ध, दरिद्र ठाकुर देवीसिंह को मिल गया है। किस तरह मिला, यह बात भी नाना रूप धारण करके वहाँ पहुंची थी।

बिराटा छोटा-सा राज्य था, परंतु वहाँ का राजा सबदलसिंह सावधान और दिलेर आदमी था। उसे मालूम था कि इस चढ़ाई का कारण मंदिर की मूर्ति और कदाचित् कुमुद है। उसे वह सुरक्षित रक्खे हुये था। जब उसके पड़ोस में होकर अलीमर्दान की सेना निकली, तब उसने कोई रोक-टोक नहीं की, बल्कि खातिर से पेश आया, जिसमें अलीमर्दान को कोई संदेह न हो।

कुमुद की पूजा बाहर से बिलकुल रुक गई। यदि कभी-कभी लुके-छिपे हो भी जाती थी तो बड़ी सावधानी के साथ। परन्तु बिराटा वालों की पूजा बढ़ गई। बिराटा-निवासी किसी आनेवाली विपद् के निवारण के लिये भक्ति के साथ उस पूजा में रत रहने लगे।

इधर-उधर के समाचार कुमुद को दिन में बहुत कम मिलते थे। रात को नरपतिसिंह से जो कुछ मालूम होता था, उसमें सांसारिक समाचारों का समावेश बहुत कम रहता था। आध्यात्मिक—अर्थात् पूजा-सम्बन्धी—विषय उनके भोजन और निद्रा के बीच का स्वल्प समय ले लेते थे।

उस दिन जो कुछ गोमती ने सुना, उससे उसकी विचित्र दशा हो गई। वह कभी आकाश की ओर देखती, कभी गजगामिनी गूढ़ धार की ओर और कभी दूसरे किनारे के निर्जन, सघन वन की ओर देख-देखकर कुमुद से कुछ कहना चाहती थी। पूजा और पुजारियों की भीड़ के मारे दिन में अवसर न मिला। दोनों रात गये अपनी कोठरी में चली गईं।

कुमुद को विश्राम की ओर प्रवृत होते देखकर गोमती ने कहा—'क्या नींद आ रही है ?'

'बड़ी क्लांत हूँ गोमती। आजकल काम के मारे जी बेचैन हो जाता है। मूर्ति से वरदान न माँगकर लोग मेरे सामने हाथ फैलाते हैं।'

'क्योंकि लोग उसे पा जाते हैं।' प्रफुल्ल गोमती बोली।

उदास स्वर में कुमुद ने कहा—'यह मेरी शक्ति के बाहर है। मैं तो दुर्गा से केवल प्रार्थना करती हूं, स्वयं किसी को कुछ नहीं दे सकती। जो इससे प्रतिकूल विश्वास करते हैं, वे अपने साथ अन्याय और मेरे साथ क्रूरता करते हैं।'

इस पर गोमती ज़रा सहम गई। कुछ क्षण बाद उसाँस लेकर बोली—'उधर के समाचार सुने हैं ? युग-परिवर्तन-सा हुआ है।'

'क्या हुआ है गोमती ?' कुमुद ने ज़रा रुचि दिखलाते हुये पूछा।

'दलीपनगर के राजा नायकसिंह का देहांत हो गया है।' उत्तर मिला।

'अब राजा कौन हुआ है ? युवराज को गद्दी मिली होगी।' उठती हुई उत्सुकता को स्वयं शांत करके कुमुद ने पूछा।

'सो नहीं हुआ।' संयत आवेश के साथ गोमती बोली—'राजकुमार को नहीं, दूसरों को राजा राज्य देकर मरे हैं।'

बड़े कुतूहल के साथ कुमुद ने प्रश्न किया—'किसको गोमती ? किसको ?'

गोमती कुछ कहना चाहती थी, न कह सकी।

कुमुद ने उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना कहा—'राजकुमार ने ऐसा क्या किया होगा ? उन्हें राजा ने क्यों राज्य नहीं दिया ? वह तो राज्य के उपयुक्त मालूम होते थे और दूसरे को किसको राज्य दे दिया होगा। समाचार भ्रम-मूलक जान पड़ता है गोमती।'

'देवी का वरदान खाली नहीं जाता।' गोमती ने कहा—'देवी की पूजा रीती नहीं पड़ती।'

''तुमने जो कुछ सुना हो, मुझे सविस्तार बतलाओ।' कुमुद ने मुक्त उत्सुकता के साथ कहा।

गोमती चुप रही, जैसे किसी ने उसका गला पकड़ लिया हो। थोड़ी देर बाद बोली—'राजकुमार को मैंने भी देखा है। ऐसी महत्ता, इतनी दया दूसरों में कम देखी जाती है। राजा उन्हें चाहते भी थे। वह चाहने योग्य हैं भी।'

कुमुद ने आग्रह-पूर्वक पूछा—'तब बतलाती क्यों नहीं गोमती, राजा कौन हुआ?'

उसने उत्तर दिया—'जिसने उस दिन पालर की लड़ाई में राजा के प्राण बचाने के लिये अपने शरीर को लगभग कटवा दिया था।'

कुमुद ने अनसुनी-सी करके कहा—'राजकुमार का क्या दोष समझा गया? इस कृति का मूल कारण राजा का पागलपन न समझा जाय, तो क्या समझा जाय?'

'पागलपन नहीं था जीजी?' गोमती ने दृढ़ता के साथ कहा।

इस नये सम्बोधन से कुमुद बहुत सन्तुष्ट नहीं हुई। परन्तु उसी सहज मृदुल स्वर में बोली—'तो क्या था, गोमती?'

'राजकुमार दासी से उत्पन्न हैं, इसलिये उन्हें राज्य नहीं मिला।' गोमती ने स्वाभाविक गति से उत्तर दिया।

'झूठ, झूठ है गोमती।' क्षुब्ध स्वर में कुमुद ने कहा—'लोचनसिंह सदृश पुरुष झूठ नहीं बोल सकते।'

'वह निष्ठुर, क्रूर ठाकुर।' गोमती के मुँह से निकल पड़ा—'उसने क्या कहा था?'

कुमुद कुछ देर तक चुप रही। उसके स्वर ने कुछ क्षण बाद फिर वही कोमलता धारण कर ली। बोली—'तुम्हें कैसे मालूम गोमती?'

गोमती ने इसके उत्तर में कुञ्जरसिंह की उत्पत्ति की कथा सुना दी।

लम्बी उसाँस लेकर कुमुद ने पूछा—'कौन राजा हुआ गोमती?'

गोमती ने उत्साह के साथ उत्तर दिया—'मैंने बतलाया था, जिन्होंने उस दिन राजा के प्राणों की रक्षा की थी।'

कुमुद ने बिस्तर से उठकर विस्मय-पूर्वक कहा—'तुम्हारे दूल्हा?' गोमती ने कुछ नहीं कहा।

[२३]

गाँव के जो स्त्री-पुरुष विराटा की टौरिया (अब उस स्थान को इसी नाम से पुकारना चाहिये) पर आते थे, उनके साथ कुमुद की बातचीत वरदानों और तत्सम्बन्धी विषयों के अन्तर्गत अधिक होती थी। अन्य विषयों की बातचीत सुनने के लिये वह कभी-कभी उत्कण्ठित हो जाती थी। परन्तु पूजक और भक्त लोग ऐसे विषयों की चर्चा उसके सामने नहीं करते थे। पूजक और पूज्य के बीच में श्रद्धा ने जो अन्तर उपस्थित कर रक्खा था, वह कुमुद को असह्य हो उठा, किन्तु वह ऐसी अधीर न थी कि उसका आतुरता के साथ उल्लंघन कर सकती।

कुञ्जरसिंह के विद्रोह और अलीमर्दान की अवश्यंभावी चढ़ाई का समाचार यथासमय टौरिया पर पहुँचा। गोमती ऐसे सब समाचारों को जासूसों की तरह खोद निकालने में निमग्न थी।

दो-एक दिन से गोमती कुमुद को किसी उदासी में, किसी असमञ्जस में उलझी हुई सी देख रही थी। रात को उन दिनों कोई बात नहीं हुई। गोमती को सन्देह हुआ कि कहीं कुञ्जरसिंह के उत्तराधिकार को दलित समझकर देवी ने दूसरों पर स्वत्व-भञ्जन और अनुचित अपहरण के आरोप की कल्पना न की हो। कुञ्जरसिंह के विद्रोह और अलीमर्दान के आक्रमण में अपनी बात कहने के लायक़ सामग्री पाकर रात्रि के आगमन के लिये व्यग्र हो उठी।

गोमती को उस दिन जान पड़ा कि सूर्यदेव बहुत मचल-मचलकर अस्ताचल गये, अन्धकार ने प्रकाश को घोर लड़ाइयों के बाद दबा पाया और उसके अभाग्य से कुमुद लेटने की कोठरी में बड़ा विलम्ब कर के आई।

गोमती ने तुरन्त वार्तालाप आरम्भ किया।

कुमुद से पूछा—'आज का कुछ समाचार आपने सुना है?'

उसने कहा—'मुझे पूजन से अवकाश ही नहीं मिलता।'

स्वर में कोई क्षोभ न था; परन्तु कोमल होनेपर भी उसमें संगीत की मञ्जुलता न थी—जैसे कोयल ने दूर किसी सघन वन में वायु के झोकों की गति के प्रतिकूल कूक लगाई हो।

'उस दिन मैंने कुमार कुञ्जरसिंह के विषय में जैसा सुना था, बतलाया था। राज्य न मिलने के कारण असंतुष्ट होकर उन्होंने एक बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।'

एक क्षण के लिये कुमुद की देह थर्रा गई। परन्तु उसने अपने सहज स्वर में उत्सुकता-ज्ञापन न करते हुये पूछा—'क्या सुना है गोमती आज?'

'मैंने यह सुना है।' गोमती ने उत्तर दिया—'कि दासी पुत्र कुंजरसिंह ने राज्य-विद्रोह किया है। सिंहगढ़ पर अनधिकार चेष्टा से दखल कर लिया है और इस अनुचित, अधर्मपूर्ण युद्ध में मनुष्यों के सिर काट और कटवा रहे हैं। छोटी रानी, जो मृत राजा को विष देकर मार डालना चाहती थी, उनका साथ दे रही हैं। गृह-कलह की ऐसी आग दोनों ने मिलकर सुलगा दी है कि दलीपनगर का राज्य राख में मिल जाने ही को है।'

कुमुद के हृदय से एक उष्ण उसाँस निकली।

गोमती कहती गई—'इधर कालपी के मुसलमान सूबेदार ने चढ़ाई कर दी है। वह अपने विराटा के पास से होकर आजकल में ही निकलने वाला है। उसका प्रयोजन पालर के मन्दिर को विध्वंस करने का है। उसने आपके विषय में जो वासना प्रकट की है उसे कहने से मेरी जीभ के खण्ड-खण्ड हो जायेंगे।'

अन्तिम बात सुनकर कुमुद क्या कहती है, इसकी प्रतीक्षा एक क्षण करने के बाद गोमती ने फिर कहा—'गृह-कलह, जो कुमार कुञ्जरसिंह ने खड़ी करदी है, कदाचित् इस अलीमर्दान के मुँह मोड़ने में दलीपनगर-राज्य को कुण्ठित कर दे। प्रार्थना है, आप नये राजा को ऐसा अदमनीय बल दें कि नये महाराज कुञ्जरसिंह के विद्रोह को कुचलकर अलीमर्दान की अधर्म-कुचेष्टा को नष्ट-भ्रष्ट करने में समर्थ हों।'

कुमुद देर तक कुछ सोचती रही। थके हुये कुछ कांपते हुये बारीक स्वर में बोली—'गोमती, सो जाओ, फिर कभी बात करूंगी। नींद आ रही है।'

परन्तु भक्त का हठ चढ़ चुका था। गोमती बोली—'नहीं देवी, आज वरदान देना होगा, जिसमें कोई अनिष्ट न हो। यदि कहीं आपने समझ लिया कि कुञ्जरसिंह का पक्ष न्याय-संगत है, तो दलीपनगर का, संसार भर का सर्वनाश हो जायगा। यदि दलीपनगर के धर्मानुमोहित महाराज कुञ्जरसिंह से हार गये, यदि अलीमर्दान ने ऐसी अव्यवस्थित अवस्था में राज्य पाया, तो आपके मंदिर का क्या होगा? धर्म का क्या होगा? अन्य राजा अपनी तर्जनी भी मंदिर की रक्षा में न उठावेंगे। बिराटा-राज्य में इतनी शक्ति नहीं कि अलीमर्दान का मर्दन कर सके। इसलिये जननी रक्षा करो, बचाओ।'

गोमती कुमुद के पैरों से लिपट गई और आँसुओं से कुमुद के पैर भिगो दिये।

कुमुद ने कठिनाई से उसे छुड़ाकर अपने पास बिठला लिया। सिर पर हाथ फेरकर बोली—'क्या चाहती हो गोमती? जो कुछ कहोगी, उसके लिये माता दुर्गा से प्रार्थना करूंगी। यह निश्चय जानो कि माता का मन्दिर भ्रष्ट न होने पावेगा। उसकी रक्षा भगवती करेंगी।'

'तो मैं यह वरदान चाहती हूं! गोमती ने अंधेरे में हाथ जोड़कर कहा—'यह भीख माँगती हूँ कि कुञ्जरसिंह का नाश हो, अलीमर्दान मर्दित हो और दलीपनगर के महाराज की जय हो।'

ये शब्द उस कोठरी में गूंज गये, कल-कल शब्दकारिणी बेतवा की लहरावली पर उतरा उठे। कुमुद को उस कोठरी में एक क्षण के लिये चमक-सी जान पड़ी और शून्य गगन आंदोलित-सा।

कुमुद ने कुछ समय पश्चात् शांत, स्थिर स्वर में कहा—'यह न होगा गोमती, परन्तु मन्दिर की रक्षा होगी और अलीमर्दान का मर्दन होगा, इसमें कोई संदेह नहीं।'

'यह वरदान नहीं है।' गोमती ने प्रखर स्वर में कहा—'यह मेरे लिये अभिशाप है देवी। मैं इस समय इस तपोमय भवन में इस बेतवा के कोलाहल के बीच चरणों में अपना मस्तक काटकर अर्पण करूंगी।'

कुमुद ने देखा, गोमती ने अपनी कमर से कुछ निकाला।

कुमुद ने कहा—'क्या करती हो? ऐसा मत करना।'

'भक्त के कटे हुये सिर पर ही दुर्गा का अधिकार है, अन्यथा नहीं। वरदान दीजिये या सिर लीजिये।'

'मैं बतलाती हूं। ठहरो।' कुमुद ने कहा और कुछ क्षण तक कुछ सोचती रही।

फिर दृढ़ता-पूर्वक बोली—'तुम्हारे राजा का राज स्थिर रहेगा। मंदिर बचेगा और अलीमर्दान की जय न होगी। तुम्हें इससे अधिक और क्या चाहिये?'

गोमती संतुष्ट हो गई, फिर पैर पकड़ लिये। कुमुद ने उसे धीरे से हटाकर रुखाई के स्वर में कहा—'जाओ, सोओ। भविष्य में कभी फिर उस राजकुमार का वर्णन करोगी, तो अच्छा न होगा।'

गोमती चुपचाप जा लेटी।

[२४]

आलीमर्दान एक बड़ी संख्या में सेना लिये हुये पालर जा पहुंचा। उसे अपने पड़ाव के लिये वहाँ से बढ़कर अच्छा स्थान मालूम न था। घोड़े के लिये पानी और चारा दोनों का सुबीता था तथा उसी स्थान पर दुर्गा का मंदिर और पुजारिन का घर भी था।

बड़नगर के राजा को अलीमर्दान ने आश्वासन दे दिया था कि उसकी प्रजा के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न किया जायगा और न मंदिर को नष्ट। दलीपनगर के राजा को दंड देना, राज्य-च्युत करके हलवाहे-का-हलवाहा कर देना ही सिर्फ मेरी मंशा है।

दलीपनगर और बड़नगर वर्षों से दिल्ली के मातहत राज्य थे, परन्तु परस्पर स्वतंत्र थे। उनकी दिल्ली की मातहती भी दिल्ली के बल के हिसाव से घटती-बढ़ती या तिरोहित होती रहती थी। इस समय इनमें से कोई भी दिल्ली के प्रति व्यावहारिक रूप में अपनी अधीनता प्रकट नहीं कर रहा था; लेकिन खुल्लमखुल्ला विरोध भी न था। दिल्ली के बड़े कर्मचारियों या सेना-नायकों से उनकी इन दिनों कोई घोषित लड़ाई न थी। नाम-मात्र की भी पराधीनता से बच निकलने के अवसर की ताक में अवश्य थे, परन्तु इस समय दलीपनगर का पक्ष लेकर अलीमर्दान से युद्ध छेड़ बैठना समयानुकूल नहीं समझा गया।

दलीपनगर दुविधा में था। एक ओर सिंहगढ़ का घेरा, दूसरी ओर अलीमर्दान; घर में छोटी रानी का भय और पूर्व-दुर्व्यवस्था से राज्य को निकालकर वर्तमान में संगठन का आयोजन।

इसीलिये पालर तक पहुंच जाने में अलीमर्दान की रोक-टोक की गई, शायद रास्ते में विराटा-सदृश छोटे-छोटे रजवाड़े कुछ विघ्न उपस्थित कर दें, परन्तु यह कल्पना सफल न हुई।

अलीमर्दान जब पालर पहुँचा, उसे वहाँ सिवा किसानों के कोई नहीं मिला।

मन्दिर का निरीक्षण करने गया। साथ में उसका एक सरदार था। अलीमर्दान ने सरदार से कहा—'मन्दिर तो बहुत छोटा है कालेखाँ। मैंने बहुत बड़े-बड़े मन्दिर देखे हैं। क्या इसी के ऊपर उन लोगों को इतना नाज़ था।'

'हुज़ूर, इस जगह को उन लोगों ने अपनी नाक बना रक्खा है। पुजारिन कहीं भाग गई होगी, मगर पता लग जायगा। बुन्देलखण्डी लोग भागते भी हैं, तो घर छोड़कर दूर नहीं जाते।'

'तुम्हारे साथ किस जगह लोचनसिंह लड़ा था?'

कालेखाँ ने स्थान बतलाकर कहा—'इस जगह हुज़ूर।'

'और वह कहाँ थी?'

लड़ाई के समय कुमुद जिस स्थान पर अपने पिता के साथ कुञ्जरसिंह की अभिभावकता में खड़ी थी, वह स्थान भी अलीमर्दान को बताया गया।

यह सब देख-भालकर और आसपास के रास्ते, छिपाव और आक्रमण के स्थानों की परीक्षा करके संध्या के पहले अलीमर्दान कालेखाँ को साथ लेकर झील पर गया।

चारों ओर पहाड़ों से घिरी हुई झील के पूर्वोत्तरीय किनारे पर पहाड़ी से सटा हुआ नीचे की ओर पालर गाँव। उसी किनारे के ऊपरी भाग पर जाकर अलीमर्दान कालेखाँ के साथ एक चट्टान पर बैठ गया।

झील में लहरें उठ-उठकर बैठ रही थीं और सूर्य की किरणों का एक अनन्त भंडार-सा प्रतीत हो रहा था। जैसे स्वर्ण की खानें खुल पड़ी हों और चारों ओर से विशाल ढोंके और पर्वत अपनी निधि की रक्षा के लिये तुले खड़े हों।

'पानी का बड़ा सहारा है यहाँ कालेखाँ। यहीं से दस्ते बना-बनाकर हमला करना अच्छा है।'

'बेहतर है हुज़ूर।'

'दो दिन में सामान इकट्ठा कर लो। तीसरे दिन धावा कर दिया जाय। सिपाहियों को इस बीच में आराम भी मिल जायगा।'

'मुसलमान सिपाहियों की एक ख्वाहिश है हुजूर।'

'क्या ?'

कालेखाँ बोला—'पहले मन्दिर तोड़ डाला जाय।'

मुस्कराकर अलीमर्दान ने कहा—'ताकि चढ़ाई की मुश्किलें और भी बढ़ जायँ। यह न होगा। बल्कि तुम कड़ा पहरा मन्दिर पर लगवा दो। अगर मन्दिर की एक ईंट का टुकड़ा भी किसी ने उखाड़ा, तो धड़ से सिर अलग करवा दूँगा। समझ गये कालेखाँ ?'

नीची गर्दन करके कालेखाँ ने उत्तर दिया—'हुजूर।'

थोड़ी देर में नमाज़ का वक्त होने के कारण दोनों पहाड़ी से उतर आये।

इतने में एक सिपाही ने सूचना दी कि दलीपनगर से कोई मुजरा करने के लिये आया है। उससे नमाज के बाद तक ठहरने के लिये कह दिया गया।

नमाज़ के बाद अलीमर्दान से दलीपनगर का जो मनुष्य मिला, वह रामदयाल था। उस समय अलीमर्दान के पास कालेखाँ के सिवा और कोई न था।

रामदयाल ने कहा—'मैं सरकार के पास राखी लाया हूँ।'

'राखी !' अलीमर्दान साश्चर्य बोला—'किसने भेजी है ? परन्तु तुम जवाब दो या न दो, मैं राखी मन्जूर न करूँगा।'

'ऐसा कभी नहीं हुआ है। रामदयाल अपने कपड़ों के भीतर हाथ बढ़ाता हुआ बोला।

अलीमर्दान ने कहा—'वह जमाना अब नहीं है। मैं राखियाँ लेने-देने के लिये नहीं आया हूँ। मेरे आने का प्रयोजन स्पष्ट है। और यह तो मैंने आज ही सुना है कि दलीपनगर के मर्द भी राखी भेजते हैं।'

'नहीं हुजूर।' रामदयाल ने कपड़ों में से रेशम की एक छोटी-सी पोटली निकालकर दृढ़ता के साथ कहा—'यह राखी दलीपनगर की रानी ने भेजी है। ग्रहण करनी होगी। बुरी अवस्था में हैं।'

नफ़रत भरी निगाह से देखते हुये अलीमर्दान बोला—'तुम्हारा नया राजा इतना गिरकर रानी के ज़रिये क्यों शरण माँगता है ? छोटी-छोटी-सी दो शर्तें पूरी करने में कौन से पहाड़ खोदने पड़ेंगे ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'यह राखी राजा ने नहीं भिजवाई है !'

'उसका फल एक ही है, लौटा ले जाओ।'

'यह राखी लौट नहीं सकती। मृत महाराज की छोटी रानी ने भेजी है, जो नये राजा के विरुद्ध आपसे सहायता चाहती हैं।'

अलीमर्दान चौंक पड़ा। 'छोटी रानी की राखी मंजूर है।' वह एक क्षण बाद बोला—'लाओ, आज से वह मेरी धर्म की बहिन हुईं।'

रामदयाल ने प्रसन्नतापूर्वक अलीमर्दान को राखी दे दी। उसने पगड़ी में रखली।

फिर रामदयाल से उसने एक-एक करके रियासत सम्बन्धी सब वृत्त पूछ डाला।

सब हाल सुनकर कालेख़ाँ से बोला—'तुम एक दस्ता लेकर कुञ्जरसिंह की मदद के लिये सिंहगढ़ जाओ। मैं दूसरे दस्ते से दलीपनगर पर धावा करता हूँ।'

कालेख़ाँ ने स्वीकार किया।

दूसरे दिन कालेख़ाँ एक दस्ता लेकर सिंहगढ़ की ओर रवाना हो गया। अलीमर्दान ने रामदयाल को अपने शिविर में एक-दो दिन के लिये रोक लिया।

[२५]

कुञ्जरसिंह का दस्ता सिंहगढ़-विद्रोह अलीमर्दान को रामदयाल के मिलने से पहले ही मालूम हो गया था, परन्तु उस समय के सन्देह के वातावरण के कारण रामदयाल को एक-आध दिन के लिये रोक रक्खा। उसने सोचा—यदि राखी महज़ छल-कपट ही है, तो यह आदमी जल्दी दलीपनगर जाकर किसी तरह की खबर न दे सकेगा।

अपनी सेना का एक दस्ता पालर में छोड़कर दूसरे दिन उसने कूच कर दिया। जब दलीपनगर के राज्य में कई कोस घुस गया, तब रामदयाल को विदा करते समय बोला—'रानी के पास कुछ सरदार हैं ?'

'हैं सरकार।' उसने उत्तर दिया।

'उन सबको लेकर सिंहगढ़ पहुँचो। अब रानी का दलीपनगर में रहना ठीक नहीं।'

'बहुत अच्छा। मैं अभी जाकर इसका प्रबन्ध करता हूँ।'

कुछ समय उसे और रोक कर अलीमर्दान ने कहा—'मन्दिर के विषय में तुम्हारा क्या ख्याल है कि मैं तुड़वा दूँगा।'

'कभी नहीं।' रामदयाल ने आवेश में आकर उत्तर दिया।'

ज़रा ठहर कर अलीमर्दान ने कहा—'मगर जिस लड़की ने यह फ़साद करवाया था, उसे कुछ सज़ा दी जायगी।'

रामदयाल चुप रहा।

अलीमर्दान बोला—'रामदयाल, हम तुम्हारे देवतों की इज्जत करते हैं, मगर उन आदमियों की नहीं, जो देवता बनकर दुनियाँ को शरारत से न सिर्फ ठगते हैं, वल्कि बेक़सूर सिपाहियों को मरवा डालते हैं।'

'यह दुरुस्त है हुज़ूर।' रामदयाल ने कहा।

अलीमर्दान हँसकर बोला—'मगर उस लड़की को जो सज़ा दी जायगी, वह किसी बड़े पुरस्कार से भी बढ़कर होगी।'

रामदयाल अलीमर्दान का मुंह जोहने लगा।

12

अलीमर्दान कहता गया—'उसे मैं अपने महल में जगह दूँगा। पालर की अपेक्षा शायद कालपी उसे शुरू-शुरू में कम पसन्द आवे। बस, इतने में ही सजा समझो। इसके बाद अगर वह सुखी न रह सकी, तो तुम मुझे दोष देना। क्या कहते हो रामदयाल ?'

उसने उत्तर दिया—'इसमें तो किसी प्रकार का हर्ज नहीं दिखलाई पड़ता हुजूर।'

अलीमर्दान ने आँख गड़ाकर पूछा—'उस लड़की का पता बतला सकोगे ?'

रामदयाल ने विश्वास दिलाकर कहा—'खोजकर बतलाऊंगा।'

[२६]

अलीमर्दान दलीपनगर राज्य में थोड़ा ही घुस पाया था कि उसे राज्य की सेना का सामना करना पड़ा।

राजा देवीसिंह और लोचनसिंह के नायकत्व में दलीपनगर की सेना को अलीमर्दान नुक़सान नहीं पहुंचा पाया। दलीपनगर की ओर उसकी बढ़ती हुई प्रगति को निश्चित रूप से रुक जाना पड़ा। लगभग हर समय नालों, जंगलों और पहाड़ियों में लड़ते-लड़ते अलीमर्दान ने सोचा, बिना किसी अच्छे क़िले को हाथ में किये युद्ध आसानी से और विजय की पूरी आशा के साथ न हो सकेगा। इसलिये उसने देवीसिंह की सेना को अटकाये रखने के लिये एक दस्ता जंगल में छोड़ दिया और उसी सेना के दूसरे दस्ते को लेकर होशियारी के साथ चुपचाप सिंहगढ़ रवाना हो गया। बहुत चक्करदार मार्ग से जाना पड़ा, इसलिये वह सिंहगढ़ के निकट देर में पहुंचा।

राजा देवीसिंह को इस चाल की सूचना विलंब से मिली। उस समय पालर की छावनी से अलीमर्दान की इस नई योजना के अनुसार और सिपाही आ पहुँचे। देवीसिंह इस सेना का मुक़ाबला और पालर की छावनी पर धावा करने के लिये वहीं गया और लोचनसिंह को सिंहगढ़ की ओर भेजा।

परन्तु इसके पहले ही रामदयाल ने छोटी रानी के पास पहुंचकर राजधानी में ही उपद्रव जाग्रत कर दिया था। जो लोग राजा देवीसिंह के अभिषेक से असंतुष्ट थे, वे सब छोटी रानी के झंडे के नीचे आ गये और उन्होंने खास दलीपनगर में गृह-युद्ध आरम्भ कर दिया। छोटी रानी ने एक सरदार के नीचे थोड़ी-सी सेना राजधानी को तंग करने के लिये छोड़ दी और एक बड़ी तादाद में लेकर सिंहगढ़ की ओर चल पड़ी। उसे यह नहीं मालूम था कि अलीमर्दान सिंहगढ़ की ओर गया है। मालूम भी हो जाता, तो वह न रुकती।

जनार्दन ने इस विद्रोह का समाचार राजा के पास, जहाँ वह लड़ रहा था, भेजा। पत्र-वाहक लोचनसिंह को बीच ही में मिल गया। तब लोचनसिंह सिंहगढ़ की ओर न जाकर सीधा दलीपनगर पहुंचा। राजधानी के बलवे को दबाने के लिये लोचनसिंह को कई दिन लग गये।

इस बीच में रानी और अलीमर्दान की सेनाएँ सिंहगढ़ के मुहासिरे पर पहुँच गईं। तब वहाँ राजा देवीसिंह की सेना को कुञ्जरसिंह, अलीमर्दान और छोटी रानी की सेनाओं से लोहा लेना पड़ा। परन्तु फल के निर्णय में अधिक विलंब नहीं हुआ।

[२७]

राजा देवीसिंह की सेना सिंहगढ़ के घेरे में हार गई और भागकर दलीपनगर पहुँची। विजय की अपेक्षा पराजय का समाचार ज्यादा जल्दी फैलता है। राज्य-भर के और आस-पास के लोग सुनकर घबराने लगे। अलीमर्दान के वे दस्ते, जो राजा देवीसिंह की सेना का सामना कर रहे थे, अधिक उत्साह के साथ लड़ने लगे।

देवीसिंह ने जनार्दन से कहलवा भेजा—'यदि लोचनसिंह से काम न चलता हो, तो किसी दूसरे सरदार को सिंहगढ़ भेजो। यहाँ उसे मत लौटाना। मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता।'

जनार्दन ने सामयिक स्थिति पर बातचीत करते हुये लोचनसिंह से कहा—'यदि आप सीधे सिंहगढ़ चले जाते, तो अच्छा होता। राजा की आज्ञा का उल्लंघन करके अच्छा नहीं किया।'

'इधर आपकी राजधानी खाक में मिल जाती। मैं न आता, तो यहाँ कौन लड़ता?'

'राजा किसी-न-किसी को भेजते। परन्तु जो हो गया, सो हो गया। सिंहगढ़ को किसी तरह हाथ में लेना चाहिये, नहीं तो इस राज्य की कुशल नहीं।'

'और यदि दलीपनगर भी हाथ से निकल गया, तो आपको आराम से बैठे-बैठे बातचीत करने के लिये जगह तक का ठिकाना न रहेगा।'

'महाराज की आज्ञा है कि आप सिंहगढ़ जायँ।'

'वह पुरानी बात है। यदि काम करना है, तो उसे तो यों ही मानूँगा और नहीं करना है, तो अपने घर चला जाऊंगा; परन्तु युद्ध के विषय में मैं पण्डितों की आज्ञा नहीं लिया करता।'

'महाराज ने क्या कहलवाया है, जानते हो?' जनार्दन ने उत्तेजित होकर कहा—'और युद्ध के दिनों में घर बैठ जाना तो किसी भी सरदार को शोभा नहीं देता।'

लोचनसिंह ने पूछा—'महाराज ने क्या कहलवाया है जी ?'

सावधानी के साथ जनार्दन ने उत्तर दिया—'यह कि यहाँ न आकर सीधे सिंहगढ़ जायें।'

लोचनसिंह ने कहा—'आपने यहाँ के विषय में लिख दिया था या नहीं कि क्या-क्या हुआ। किस-किस संकट में राजधानी पड़ गई थी।'

उत्तर मिला—'सब लिख दिया था।'

'महाराज ने कुछ और कहला भेजा है ?' उसने पूछा।

जनार्दन बोला—'और तो कुछ याद नहीं पड़ता। जब स्मरण हो आवेगा, बतला दूंगा। अभी तो अपना काम देखिये।'

लोचनसिंह ने तड़ककर कहा—'तो अब राजा को सूचित कर दो कि जहाँ पौरुष की क़दर नहीं, वहाँ लोचनसिंह नहीं रहेगा।' और जनार्दन के विनय-प्रार्थना करने पर भी वहाँ से उठ गया।

[२८]

सिंहगढ़ में कुजरसिंह को छोटी रानी की सेना के आने का और उसके उद्देश्य का समाचार मिल गया था। इन दोनों का संयुक्त दल सिंहगढ़ के फाटक खुलवाकर भीतर पहुंच गया। कुञ्जरसिंह को अलीमर्दान के दस्ते का हाल न मालूम था। रामदयाल अलीमर्दान के साथ-साथ था। डोले में रानी की सवारी सबसे पहले दाखिल होकर दूसरी ओर चली गई। कुञ्जरसिंह सबसे पहले रानी के पास गया। पैर छूकर खड़ा हो गया। परिश्रम और थकावट के सारे चिह्न उसके मुख पर थे, परन्तु हर्ष की भी रेखाएँ चमक रही थीं जैसे धूल में सोना दमक रहा हो।

रानी ने कृतज्ञ कुञ्जरसिंह से कहा—'खास दलीपनगर में लड़ाई हो रही है। सैयद की फ़ौज देवीसिंह से पालर की ओर लड़ रही है और स्वयं सैयद को रामदयाल यहाँ लिवा लाया है। उसकी सहायता न होती, तो तुमसे मिल पाना असम्भव होता।' और कुञ्जर के नत मस्तक पर हाथ फेरा।

हर्ष की रेखाएँ उसी थकावट की बाढ़ में डूब गईं। कुञ्जर की आँखों में तारे छिटक उठे। अलीमर्दान का नाम सुनते ही शरीर में पसीना आ गया। जब उसका सिर उठा, रानी ने देखा, एक क्षण पहले का उत्फुल्ल मुख मुरझा गया है, जैसे कमल को पाला मार गया हो।

रानी इस परिवर्तन को न समझ सकीं, परन्तु यह उन्हें भासित हो गया कि कृतज्ञता के स्थान पर उसके नेत्रों में रुखाई, उपेक्षा और घबराहट अधिक है।

'क्या है कुञ्जरसिंह ? क्या कहना चाहते हो ?' रानी ने पूछा।

'कुछ नहीं कक्कोजू।' कुञ्जरसिंह ने उत्तर दिया—'मुझ-सरीखे तुच्छ मनुष्य के लिये आपने जो कष्ट उठाया है, वह व्यर्थ गया-सा जान पड़ता है।'

इस रुखाई से रानी तिलमिला उठीं। बोलीं—'तुम सदा से रोते-से ही बने रहे। क्या इस विजय से तुम्हें राजसिंहासन अपने अधिक निकट

नहीं दिखलाई पड़ रहा है ? सेना एक-आध रोज़ विश्राम कर ले कि तुरन्त दलीपनगर के ऊपर प्रबल आक्रमण कर दिया जायगा और जनार्दन, देवीसिंह, लोचन इत्यादि बाग़ियों को उनके किये का भरपूर बदला दे दिया जायगा ।'

'महाराज—' कुञ्जरसिंह कहता-कहता रुक गया ।

'बोलो, बोलो, कुञ्जरसिंह क्या कहते हो ?' रानी ज़रा चिढ़कर बोलीं ।

सामने से रामदयाल को और उससे थोड़े ही पीछे अलीमर्दान को देखकर कुञ्जरसिंह ने कहा—'अभी कक्कोजू विश्राम करें, बहुत परिश्रम किया है । अवकाश मिलने पर निवेदन करूँगा ।' रानी का डोला क़िले के भीतर महलों में चला गया और कुञ्जरसिंह मुड़कर रामदयाल के पास पहुंचा ।

रामदयाल ने महत्त्वपूर्ण दृष्टि और मिठास-भरे स्वर में जुहार किया, धीरे से बोला—'कालपी के नवाब साहब हैं । इन्होंने बात रख ली ।'

कुञ्जरसिंह चुप-चाप चलती-फिरती पत्थर की मूर्ति की तरह बिना कोई भाव प्रदर्शित किये अलीमर्दान के पास पहुंचा । अभिवादन किया ।

अलीमर्दान को जान पड़ा, इस स्वागत में अतिथि-पूजा की अनुभूति नहीं है । परन्तु उसने अपनी कुढ़न को तुरन्त दबा लिया । हँसकर और चिल्लाकर बोला—'सिंहगढ़ के बहादुर शेर राजा कुञ्जरसिंह का दर्शन हो रहा है न ?'

कुञ्जरसिंह ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया । उसका आंतरिक भाव जो कुछ भी रहा हो, परन्तु उसमें इतनी शिष्टता थी कि हर्ष का उत्तर खिन्नता से न दे ।

अपने स्थान पर ले जाते हुये कुञ्जरसिंह ने मार्ग में कहा—'आपका किसी तरह का कोई समाचार हम क़ैदियों को यहाँ मिलना भाग्य में न बदा था । इसीलिये अकस्मात् सुनकर उचित रूप से आपकी आगवानी न हो सकी ।'

'सिपाही की आगवानी सिपाही और किस तरह करता है रा साहब ?'

कुञ्जरसिंह की रुखाई में कुछ कमजोरी आई। बोला—'नवा साहब, यदि आगवानी की त्रुटियों को अच्छे भोजन-पान आदि से कर सकता, तो भी मेरे लिये कुछ कृतकृत्य होने की बात थी, परन्तु लोगों के पास रूखे-सूखे के सिवा यहाँ और कुछ नहीं है। इसीलिये भी लज्जित हूँ।'

रामदयाल ने, जो पीछे-पीछे चला आता था, कहा—'महारा नवाब साहब बड़े कट्टर सैनिक हैं। इन्हें लड़ाई की धुन में खाना-पी कुछ नहीं सूझता।'

कुञ्जरसिंह सबसे पहले अपने जीवन में अपने को 'महाराज' शब्द सम्बोधित पाकर एक क्षण के लिये चकित और रोमांचित हो गया कुछ कहना चाहता था, न कह सका।

अलीमर्दान हँसकर बोला—'राजा साहब, रामदयाल ने बड़ी सहाय की है। आपके शुभचिन्तकों में ऐसे कुशल मनुष्य का होना गर्व की बा है। एक छोटी-सी सेना के बराबर इस अकेले का काइयाँपन है।'

कुञ्जरसिंह ने संयत शब्दों में उसकी प्रशंसा की परन्तु उनमें का कृपणता थी और रामदयाल को वह खटकी। कुञ्जरसिंह के स्थान प पहुंचकर अलीमर्दान ने तय किया कि रात को आनन्दोत्सव मनाया जाय

[२६]

कड़ी लड़ाई के बाद सिपाही जब अवकाश पाकर आनन्द मनाते हैं, तब उनका वेग पाठशाला से छूटे हुये छोटे-छोटे विद्यार्थियों के हुल्लड़ से कहीं अधिक बढ़ जाता है। इस शोर-गुल को एक ओर छोड़ कर अलीमर्दान, कुञ्जरसिंह और रामदयाल एकान्त स्थान में जा बैठे।

उमङ्ग के साथ अलीमर्दान ने कहा—'जिस दिन राजा साहब का तिलक होगा, उस दिन जश्न और भी ज़ोर-शोर के साथ मनाया जायगा। आज तो बेचारे थके-माँदे सिपाही केवल थकावट दूर कर रहे हैं।'

'बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सामने हैं।' कुञ्जरसिंह ने गम्भीरता के साथ कहा—'मैंने तो समझा था कि सिंहगढ़ के भीतर ही रण-क्षेत्र और श्मशान दोनों हैं।'

रामदयाल बोला—'अब उतनी कठिनाइयाँ हमारे सामने नहीं हैं, जितनी देवीसिंह इत्यादि के सामने हैं। राजा, ऐसी मनगिरी बातें न करनी चाहिये।'

'आप राजा साहब।' अलीमर्दान स्वाभाविक गति के साथ बोला—'राज्य प्राप्त करते ही रामदयाल को बड़ा सरदार बनाइयेगा। मैं इनके लिये सिफ़ारिश करता हूं, निवेदन करता हूँ।'

उसके स्वर में अनुरोध की विशेष मात्रा कल्पित करके कुञ्जर को रामदयाल की कुछ उन सेवाओं का स्मरण हो आया, जिनका सम्बन्ध मृत राजा नायकसिंह के साथ था।

'परन्तु।' भाव को छिपाकर बोला—'शुभ घड़ी आने पर किसी सेवक की कोई सेवा नहीं भुलाई जा सकती नवाब साहब। यथोचित पुरस्कार सभी को मिलेगा।'

रामदयाल के मन में इस बचन से किसी उमंग का संचार न हुआ। बोला—'महारानी साहब और राजा की कृपा बनी रहे नवाब साहब हमारे ऊपर, हमें तो चरणों में पड़े रहने में ही सुख है, सरदारी लेकर क्या करेंगे?'

अलीमर्दान की समझ में न आया। अधिक रोचक विषय की मनोवृत्ति को फेरने के प्रयोजन से बोला—'भविष्य में आपकी क्या क विधि होगी राजा साहब? अभी तक तो मैंने सैन्य-संचालन किया अब सेनापतित्व का भार आपको लेना होगा।'

इसके उत्तर के लिये कुंजरसिंह तैयार था। बोला—'मेरी गति- के ऊपर रानी साहबा को अधिकार है। उनकी इच्छा मालूम क आपसे प्रार्थना करूँगा।'

'बहुत अच्छा।' अलीमर्दान ने कहा—'सवेरे तक बतला दीजिये परंतु एक सम्मति है, उसे ध्यानपूर्वक सुन लीजिये और रानी साहबा अर्ज कर दीजिये। वह यह कि सवेरे तुरंत कुछ फौज दलीपनगर हमला करने के लिये रवाना करवा दी जाय और एक टुकड़ी पास-प के छोटे-मोटे क़िलों पर कब्ज़ा करने के लिये भिन्न-भिन्न दिशाओं भिजवा दी जाय।'

कुँजरसिंह बोला—'सेना को इस तरह कई भागों में विभक्त देना ठीक रणनीति होगी या नहीं, कक्केजू से पूछकर बड़े भोर नि करूँगा।'

अनसुनी-सी करते हुये अलीमर्दान ने कहा—'और क़िले में हमा और आपकी फौज का एक काफ़ी बड़ा हिस्सा हर तरफ मदद भेजने लिये बना रहेगा।'

[३०]

आनन्दोत्सव वाली उसी संध्या के बाद रामदयाल ने अलीमर्दान से बात करने का अवसर निकाला। वह भी रामदयाल की टोह में था।

परंतु अनुकूल अवसर न होने से उसने बातचीत आरम्भ नहीं की, वार्तालाप के सिलसिले को भारी-भर कर दिया।

'गद्दी मिलने के बाद राजा साहब दीवान किसको बनायेंगे रामदयाल ? अलीमर्दान ने पूछा।

'हुजूर या वह जिसे उस पद पर बिठलायें।' रामदयाल ने उत्तर दिया।

'मैं तो उन्हें गद्दी पर बिठलाकर कालपी चला जाऊँगा। वहीं के मामलों से फुरसत नहीं। न-मालूम दिल्ली जाना पड़े, न-मालूम मालवे की तरफ।'

'तब जिसे वह चाहेंगे; परन्तु राज्य, इस तिलक के बाद भी बिना आपकी सहायता के किस तरह चलेगा, सो ज़रा मुश्किल से समझ में आता है। यदि महारानी के हाथ में शासन की बागडोर रहने दी जायगी, तो निस्संदेह कठिनाइयाँ कम नज़र आवेंगी।'

अलीमर्दान हँसकर बोला—'यदि रामदयाल को दीवान बना दिया जायगा, तो शायद ज्यादा गड़बड़ न हो।' फिर तुरंत गम्भीर होकर कहने लगा—'तुम क्या इसे असम्भव समझते हो ? दिल्ली की सल्तनत में छोटे-छोटे आदमी बहुत बड़े-बड़े हो गये हैं। दिमाग़ और होशियारी की क़द्रदानी की जाती है रामदयाल।'

रामदयाल चुप रहा।

अलीमर्दान ने कहा—'तुम्हें अगर दीवान मुकर्रर किया, तो महारानी साहब को तो कोई एतराज़ न होगा ?'

उसने उत्तर दिया—'उनके चरणों की कृपा से तो मैं जीता ही हूं।' कुछ और कहना चाहता था, झिझक गया।

अलीमर्दान ने कहा—'राजा साहब तो बेचारे बड़े नेक और सीधे आदमी मालूम होते हैं।'

'रामदयाल ने कोई मन्तव्य प्रकट नहीं किया।'

'हमारा कुछ काम किया रामदयाल ?' उसने पूछा ।

'रामदयाल बोला—'आज्ञा ?'

'मैंने तुमसे पालर में कुछ कहा था ?'

'याद है।'

'इस बीच में तुम बहुत उलझनों में रहे हो। अगर अब पता लग सको, तो अच्छा है, नहीं तो खैर।'

'लगा लिया।' रामदयाल ने कहा।

उत्सुकता के साथ अलीमर्दान ने पूछा—'कहाँ है ?'

खबर लगी है कि वह विराटा के जङ्गलों में किसी गुप्त क़िले क अदृश्य गुफा में है।' रामदयाल ने उत्तर दिया।

अलीमर्दान हँसकर बोला—'यह पता तो तुमने ऐसा बतलाया शायद तुम खुद वहाँ जाकर भूल जाओ।'

उसने कहा—'जब इतना पता लग गया, तो शेष भी लग ह जायगा।'

अलीमर्दान अपनी सहज सावधानता के वृत्त को उल्लंघन कर बोला—'रामदयाल, बड़ा काफी पुरस्कार मिलेगा।'

'हुजूर, मैं उसे ढूंढूंगा और उसके सम्मुख कर दूंगा। इसका बीड़ उठाता हूँ।'

'और अगर रामदयाल तुमने इस काम में मेरी मदद की, तो इ राज्य की दीवानी तो तुम्हें मिलेगी ही, मैं अपने पास से भी बहुत बढ़ि इनाम दूंगा।'

रामदयाल ने नम्रतापूर्वक कहा—'मुझे तो आप लोगों की चाहिये और क्या करना है।'

ज़रा दबी ज़बान से अलीमर्दान ने पूछा—'तुम उसे देवी का अवता तो नहीं समझते ? वह देवी का अवतार नहीं हो सकती—'

'ज़रा भी नहीं।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'यह तो मूर्खों ढकोसला है।'

'उसका नाम क्या है ?'

'कुमुद।'

[३१]

जिस समय अलीमर्दान और रामदयाल की बातचीत हो रही थी, क़रीब-क़रीब उसी समय कुञ्जरसिंह छोटी रानी के पास था।

छोटी रानी [illegible] से कह रही थी—'तो तुम्हारा यह तात्पर्य है कि यहाँ हम [illegible] आते, तुम्हें यहीं लड़ने-सड़ने और मरने दिया जाता [illegible]ञ्जरसिंह ?'

[illegible] तो मेरे पाप कटते हैं।' कुञ्जरसिंह ने कहा—[illegible] नहीं बुलाना चाहिये था।'

अलीमर्दान को न बुलाया होता, तो सर्वनाश हो गया होता। उसने तो वैसे भी चढ़ाई कर दी थी। उसे रोक ही कौन सकता था? 'और दलीपनगर के पूर्व राजा इस तरह की सहायता का आदान-प्रदान पहले से भी करते आये हैं।'

'परन्तु जिस प्रयोजन से वह आया है, वह आपको मालूम है ?'

'वह जनार्दन और लोचनसिंह को सूली देने आया है। यदि वह इसमें सफल हो जाय, तो मैं कहूँगी कि बहुत अच्छा हुआ। और अधिक जानने की मुझे ज़रूरत नहीं।'

'वह पालर की देवी और उनका मन्दिर नष्ट करने आया है। आपको यह बात स्मरण रखनी चाहिये।'

रानी ने झल्लाकर कहा—'मुझे क्या बात स्मरण रखनी चाहिये। मैं इसे बहुत अच्छी तरह जानती हुं। इसे सुझाने के लिये मुझे तुम जैसे लोगों की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि तुम साथ रहकर लड़ाई करना चाहो, तो अच्छा है। यदि तुम्हारे मन को न भावे, तो जिस तरह चाहो लड़ो या उस धर्म-द्रोही, स्वामिघाती जनार्दन की शरण चले जाओ और हम लोगों का अशुभ चिंतन करो।'

कुञ्जरसिंह का कलेजा हिल गया। नम्रतापूर्वक बोला—'महाराज रुष्ट न हों। आप राज्य करें, मुझे राज्य की उतनी अधिक पर्वाह नहीं।

यदि होगी भी, तो जनार्दन इत्यादि को दण्ड देने के उपरान्त जो कुछ भाग्य में होगा, पाऊँगा।'

इस नम्रता में दृढ़ता की गूँज सुनकर रानी कुछ नरम पड़ीं। बोलीं—'अलीमर्दान का वह प्रयोजन नहीं, जो तुम समझ रहे हो। उसने मेरी राखी स्वीकार की है, मुझे बहिन की तरह माना है। हिन्दुओं का धर्मनाश उसका कदापि उद्देश्य नहीं है। ऐसी हालत में तुम्हें व्यर्थ के सन्देहों में माथापच्ची नहीं करनी चाहिये।'

इतने में वहां रामदयाल आ गया। रानी के पास किसी समय भी आने की उसे मनाही नहीं थी।

रानी ने उससे कहा—'रामदयाल, आगे के लिये क्या ढङ्ग सोचा गया है?'

कुञ्जरसिंह की ओर संकेत करके उसने उत्तर दिया—'जैसा निश्चय किया जाय, वैसा होगा।'

'अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ?' रानी बोलीं।

कुञ्जरसिंह ने कहा—'अलीमर्दान की राय सेना को टुकड़ियों में विभक्त करके इधर-उधर बिखेरने की है। सेना का अधिक भाग वह सिंहगढ़ में रखना चाहते हैं। यदि देवीसिंह की सेना ने किसी ओर से प्रचण्ड वेग के साथ चढाई कर दी, तो सिंहगढ़ हाथ से चला जायगा और बिखरी हुई टुकड़ियाँ कभी संयुक्त न हो पायेंगी।'

रानी झुँझलाकर बोलीं—'रामदयाल, क्या इसी तरह का युद्ध करने की बात अलीमर्दान ने कही है?'

उसने उत्तर दिया—'ठीक इसी तरह की तो नहीं कही है। नवाब साहब दलीपनगर को अधिकृत करने के लिये पर्याप्त सेना भेजना चाहते हैं।'

रामदयाल की बात कुञ्जरसिंह को कभी अच्छी नहीं लगती थी। इस समय और भी प्रखरता के साथ गड़ गई। बोला—'तो कक्कोजू रामदयाल को सेना-नायक बना दें। बस, प्रधान सेनापति अलीमर्दान

और सहकारी सेनाध्यक्ष रामदयाल । इसे यदि इन बातों के दखल से दूर रक्खा जाय, तो कुछ हानि न होगी ।'

अपने इस क्षोभ पर कुञ्जरसिंह को तुरंत पछतावा हुआ । कुछ कहना ही चाहता था कि रामदयाल ने बहुत विनीत भाव के साथ कहा–'कक्कोजू ने पूछा था, इसलिये मैंने निवेदन किया । यदि कोई अपराध किया हो, तो क्षमा कर दिया जाऊँ । मैं तो सदा भगवान् से यह मनाया करता हूँ कि आप ही लोगों के चरणों में पड़ा रहूँ ।'

रानी ने कहा—'कुञ्जरसिंह, तुम प्रायः रामदयाल पर क्यों रोप प्रकट करते रहते हो ?'

ठंडे स्वर में कुञ्जरसिंह ने उत्तर दिया—'यह कभी-कभी ज़रा अपने दायरे के बाहर निकल जाता है, इसलिये चिड़चिड़ाहट हो जाती है । परन्तु मैं वैसे इससे नाराज़ नहीं हूँ ।'

कुञ्जरसिंह ने नहीं देखा, परन्तु रामदयाल की नीची निगाहों में उपेक्षा का भाव था ।

रानी ने पूछा—'तब क्या कार्य-क्रम स्थिर किया ?'

कुञ्जरसिंह ने उत्तर दिया—'हमारी कुछ सेना सिंहगढ़ में रहे, बाक़ी दलीपनगर पर धावा कर दे और अलीमर्दान अपनी सेना लेकर देवीसिंह पर छापा मारे ।'

रानी ने रामदयाल की ओर देखते हुये कहा—'अलीमर्दान को पसन्द आवेगा ?'

'नहीं आवेगा महाराज ।' रामदयाल ने उत्तर दिया ।

कुञ्जरसिंह ने कहा—'मैं नवाब से बात करूँगा ।'

दूसरे दिन सवेरे कुञ्जरसिंह ने अलीमर्दान से अपने संकल्प के अनुरूप कराने की चेष्टा की, परन्तु सफल न हुआ । अलीमर्दान सिंहगढ़ को अपने अधिकार से बाहर नहीं होने देना चाहता था और कुञ्जरसिंह अलीमर्दान को प्रबलता के किसी विस्तृत कोण पर स्थित नहीं देखना चाहता था । दो-तीन दिन इसी विषय को लेकर वाद-विवाद होता रहा ।

इसका फल वह हुआ कि सहज निर्णयशीला रानी कुञ्जरसिंह को क़िले के बाहर निकाल देने की कल्पना करने लगीं।

अलीमर्दान को रानी का यह भाव कुछ-कुछ अवगत हो गया। उसका व्यवहार कुञ्जरसिंह के साथ कडुआ होने की अपेक्षा दो-तीन दिनों में अधिक शिष्ट हुआ। उन दो-तीन दिनों में कोई सेना कहीं नहीं भेजी गई। अलीमर्दान ने मुस्तैदी के साथ खाद्य-सामग्री इकट्ठी कर ली। परन्तु तीन दिन के उपरांत भी रण की योजना अनिश्चित ही थी।

[३२]

उसी दिन लोचनसिंह के रुष्ट होकर चले आने पर जनार्दन बहुत चिन्तित हुआ । वह उसके हठी स्वभाव को जानता था । इसलिये उस समय मनाने के लिये नहीं गया ।

देवीसिंह को सूचित्त नहीं कर सकता था, क्योंकि वह जानता था कि बात और बिगड़ जायगी ।

राजधानी का बलवा ऊपर से देखने में दब गया था, परन्तु शान्त नहीं हुआ था । जिन लोगों ने यह विश्वास करके उपद्रव किया था कि देवीसिंह यथार्थ में राज्य का अधिकारी नहीं है, बड़ी रानी अनुचित रूप से देवीसिंह का साथ दे रही हैं और छोटी रानी अन्याय-पीड़ित हैं, उन लोगों के कुचल दिए जाने से भावों की तरंग नहीं कुचली जा सकी, प्रत्युत वह भीतर-ही-भीतर और भी प्रबल और प्रचंड हो उठी । जनार्दन इस बात को जानता था, इसलिये लोचनसिंह-सदृश योद्धा और सेनापति को ऐसे गाढ़े समय में हाथ से नहीं खो सकता था ।

परन्तु लोचनसिंह की प्रकृति में ऐसी बातों के सोचने के लिये बहुत ही कम स्थान था । जनार्दन कुछ समय का अन्तर देकर बिना किसी ठाट-बाट के अकेला लोचनसिंह के घर गया ।

जाते ही हाथ बाँधकर खड़ा हो गया । बोला—'आज एक भीख माँगने आया हूँ ।'

सैनिक लोचनसिंह ने बँधे हुये हाथ छुड़ा दिये । कहने लगा—'पंडितजी, मुझे हाथ जोड़कर पाप में मत घसीटो ।'

'भीख माँगने आया हूँ । इससे तो आप ब्राह्मणों को वर्जित नहीं कर सकते ?'

'मैं आपकी सब करामात समझता हूँ । आप जो कुछ माँगें दे डालूंगा, परन्तु बात न दूँगा, मैं सिंहगढ़ न जाऊँगा ।' परन्तु लोचनसिंह के स्वर में निश्चय की ऐंठ न थी ।

जनार्दन ने तुरन्त कहा—'उसके विषय में जो आपको उचित दिखलाई पड़े, सो कीजिये। मैं और एक भीख माँगने आया हूँ।'

लोचनसिंह ने गंभीर होकर पूछा—'और क्या पंडितजी ?'

जनार्दन ने राज्य की मुहर लोचनसिंह के सामने डालकर कहा—'सिंहगढ़ मत जाइये। कहीं न जाइये। यह मुहर लीजिये और दीवानी का काम कीजिये। मेरे बाल-बच्चों की रक्षा का भार लीजिये और मुझे बिदा दीजिये। मैं बदरीनारायण जाता हूँ। ग्रीष्म-ऋतु आने तक वहाँ पहुंच जाऊँगा। यदि कभी लौटकर आ सका और दलीपनगर को बचा-खुचा देख सका, तो बाल-बच्चों का भी मुंह देख लूंगा, अन्यथा ब्राह्मणों को तीर्थ में प्राण-त्याग करने का भय नहीं है।'

लोचनसिंह ने अचम्भे के साथ कहा—'मैं दीवानी करूँगा। दीवानी में क्या-क्या करना होता है, इसे जानने की मैंने आज तक कभी कोशिश नहीं की। यह मुझसे न होगा।'

आतंक के साथ ब्राह्मण बोला—'यह भी न होगा, वह भी न होगा, तब होगा क्या ? बात देकर बदलना आपको आज ही देखा, अभी-अभी आपने क्या कहा था ?'

लोचनसिंह की आँख के कोने में एक छोटा-सा आँसू झलक आया। बोला—'मैं हार गया।'

'क्या हार गये ? भीख न दोगे ?' जनार्दन ने पूछा।

'सिंहगढ़ जाऊँगा। या तो सिंहगढ़ राजा को दे दूँगा या कभी अपना मुँह न दिखाऊँगा।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'अभी सेना लेकर रवाना होता हूँ।'

जनार्दन ने मन में कहा—'अब राजा के पास लोचनसिंह के इस प्रण का समाचार भेजूँगा।'

[३३]

अलीमर्दान को खबर लगी कि राजा देवीसिंह का सामना करने के लिये जिस फौज को वह छोड़ आया था, उसे मैदान छोड़ना पड़ा और पालर की सेना को देवीसिंह ने इस तरह आक्रांत किया कि दूसरी टुकड़ी उसमें नहीं मिल सकी। वह चक्कर काटकर सिंहगढ़ की ओर आ रही है। इस सूचना को पाकर अलीमर्दान ने एक बड़े दस्ते के साथ दलीपनगर पर धावा कर देने का निश्चय किया।

वह सिंहगढ़ को भी नहीं भूला। अच्छी तरह कालेखाँ के सेनापतित्व में सैनिकों को छोड़ने का उसने प्रबन्ध कर लिया।

रानी को भी खबर लगी। उन्होंने कुञ्जरसिंह को उसी समय बुलाकर कहा—'अब क्या करने की ठानी है मन में, अब भी परस्पर लड़ते-झगड़ते ही रहोगे?'

'मैंने तो कोई झगड़ा नहीं किया कक्कोजू। गँवार लोग गाली-गलौज आपस में करते हैं क्या उसी को झगड़ा कहा जाता है। कक्कोजू?'

'कह डालो। संकोच मत करो।'

कुञ्जरसिंह ने जरा रुखाई के साथ कहा—'मैं यदि क़िले में ही लड़ते-लड़ते मर जाता, तो बहुत अच्छा होता।'

रानी ने कहा—'वह अब भी हो सकता है कुञ्जरसिंह। मौत के लिये किसी को भटकना नहीं पड़ता। जो लोग कहते हैं कि मौत नहीं आती, वे असल में मौत चाहते नहीं, मुँह से केवल बकते हैं। तुम्हें यदि क्षत्रियों की मौत चाहिये, तो योजनाओं में मीन-मेख मत निकालो। जो कहा जाय, करो।'

'मैंने अपनी नीति निश्चय कर ली है।' कुञ्जरसिंह ने निर्णय-व्यंजक स्वर में कहा—'मैं इस गढ़ को अलीमर्दान के अधिकार में न जाने दूँगा। वह हमारी सहायता सेत-मेत करने नहीं आया है। सिंहगढ़ का परगना और किला सदा के लिये हथियाना चाहता है, क्योंकि कालपी की भूमि

इसके पास पड़ती है। मैं इस बपौती को प्राण रहते न जाने दूँगा। केवल आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है और किसी की नहीं——'

रानी ने वाक्य पूरा नहीं होने दिया। बोलीं—'तुम कदाचित् यह समझते हो कि यहाँ न होते तो प्रलय हो जायगी। मैं भी सैन्य-संचालन कर सकती हूं। लड़ना, मरना और राज्य करना भी जानती हूं।'

असंदिग्ध भाव से कुञ्जर ने कहा—'आप राज्य करें, मैं आड़े नहीं हूं। कोई राज्य करें, पर मैं सिंहगढ़ को दूसरों के हाथ में न जाने दूँगा।'

'मूर्ख।' रानी प्रचण्ड स्वर में बोली—'सदा मूर्ख रहा और सदा मूर्ख ही रहेगा। मैंने अलीमर्दान को सेनापति नियुक्त किया है। उसकी आज्ञा माननी होगी। जो कोई उल्लंघन करेगा, वह दण्ड का भागी होगा।'

कुञ्जरसिंह क्रोध के मारे काँपने लगा। काँपते हुये स्वर में उसने कहा—'आप स्त्री हैं, यदि किसी पुरुष ने यह बात कही होती, तो अपने खड्ग से उसका उत्तर देता।'

रानी का हाथ अपने हथियार पर गया ही था कि दौड़ता हुआ रामदयाल आया। यकायक बोला—'हम लोग घिर गये हैं।'

'किनसे?' कुञ्जरसिंह और रानी दोनों ने पूछा।

उसने उत्तर दिया—'लोचनसिंह की सेना का एक भाग सिंधु-नदी के उस पार वन में उत्तर की ओर बहुत निकट आ गया है। दक्षिण और पश्चिम की ओर से भी एक बड़ी सेना आ रही है।'

दाँत पीसकर बोली—'कुन्जरसिंह, कुन्जरसिंह जाओ। अब मेरे सामने मत आना।'

कुन्जरसिंह यह कहता हुआ वहाँ से चला गया—'मैं क़िला छोड़कर बाहर नहीं जाऊँगा।'

रानी ने रामदयाल से विस्तारपूर्वक हाल सुना। उसे इस बात पर बड़ी कुढ़न हुई कि दो-तीन दिन यों ही नष्ट करके लोचनसिंह को इतने

निकट चले आने का मौक़ा दिया। कदाचित् सारा कोप कुञ्जरसिंह के ऊपर केन्द्रित हो गया।

अपने विश्वास-पात्र रामदयाल से बोली--'तुझे अपना प्रण याद है?'

'हाँ, महाराज।'

'कब पूरा करेगा?'

'सिंहगढ़ के युद्ध के उपरान्त अवसर मिलते ही तुरन्त।'

'अभी चला जा। जैसे बने, राजधानी में उसका गला काट डाल। यदि सब मारे जायँ और अकेला जनार्दन बचा रहे, तो शान्ति न होगी।'

'चरणों को अकेला नहीं छोड़ सकता। कुञ्जरसिंह राजा के स्वार्थ का मुझे बहुत भय है।'

रानी इस उत्तर को सुनकर कुछ देर चुप रहीं, फिर बोलीं—'अच्छा, अभी यहीं बना रह। कुञ्जरसिंह के ऊपर निगरानी रखने के लिये सेनापति से कह दे।'

रामदयाल ने स्वीकार किया।

[३४]

कुञ्जरसिंह ने अपने सब आदमी इकट्ठे करके सिन्धु नदी की ओर उत्तरवाले छोटे फाटक के आस-पास फैला दिये और उन्हें अपनी स्थिति समझा दी। वे लोग बहुत नहीं थे, परन्तु आज्ञाकारी थे।

इतना करके अलीमर्दान के पास गया। 'नवाब साहब' कुञ्जरसिंह ने साधारण शिष्टाचार के बाद कहा—'लोचनसिंह का विरोध बड़ी सावधानी और कड़ाई के साथ करना पड़ेगा। उस-सरीखा रण-शूर और रण-चतुर कठिनाई से कहीं और मिलेगा।'

'ज़रूर होगा।' अलीमर्दान ने रुखाई के साथ कहा—'जब दुश्मन उसको बखान करते हैं, तो ऐसा ही होगा और इसमें कोई सन्देह नहीं कि देवीसिंह की सेना में हम लोगों-जैसे काहिल बहुत कम होंगे।

कुञ्जरसिंह इस प्रकट व्यंग से पीड़ित नहीं हुआ—कम-से-कम ऐसा उसकी आकृति से जाहिर नहीं होता था। बोला—'यह अच्छा हुआ कि हम लोगों ने अपनी सेना को अनेक भागों में खण्डित नहीं किया।' कुञ्जरसिंह ने कहा—'अन्यथा इस समय हाथ में कुछ भी न रहता, पर खैर, अब गई-गुजरी बातें छोड़कर लोचनसिंह के मुकाबले की तैयारी कीजिये।'

अलीमर्दान ने कहा—'वह अच्छी तरह हो गई है। आप, कालेखां और रानी साहबा क़िले के भीतर से लड़ें और मैं बाहर से लड़ूँगा। सब लोग भीतर बैठकर लड़ेंगे, तो एक तरह से कैदियोंकी-सी हालत हो जायगी।'

'मुझे यह सलाह पसंद है।' कुञ्जरसिंह ने एक क्षण सोचने का भाव दिखलाते हुये कहा।

वह बोला—'आप किले की लड़ाई बहुत पसंद करते हैं, इसलिये मैंने यही तय किया है।'

अलीमर्दान ने 'यही तय किया है,' इस बात को सुनकर कुञ्जरसिंह को बहुत सुख नहीं मिला।

वह अपने स्थान पर चला गया। थोड़े ही समय में उसे ज्ञात हो गया कि गढ़ का नायकत्व उसके हाथ में नहीं है और रानी के नाम की ओट में अलीमर्दान सेनापतित्व कर रहा है।

उसके छोटे से दल को भी यह बात विदित हो गई। अपनी प्रभुता के मद, अपनी आज़ादी के नशे में वह। पहले जिस आने वाली मौत को दोनों हाथों झेलने के लिये तैयार था, अब उसके साक्षात्कार में उस उन्माद का अनुभव न कर सका।

[३५]

लोचनसिंह एक बड़ी सेना लेकर तूफान की तेज़ी की तरह सिंहग पर चढ़ आया। चक्कर दिलवाकर उसने अपनी सेना का एक भाग सिं उस पार किले के ठीक उत्तर में भेज दिया।

अलीमर्दान ने गढ़ से बाहर निकलकर उसका सामना किया। दो दिन की लड़ाई में दोनों ओर के बहुत आदमी मारे गये। बार-बार लोचनसिंह विरोधी दल को गढ़ में भगा देने की चेष्टा करता था और अलीमर्दान उसे विफल-प्रयत्न कर डालता था। तीसरे दिन लोचनसिंह ने निरंतर आक्रमण जारी रखने के लिये अपनी सेना के अनेक दल बनाये, जो बारी-बारी से जागते, सोते और युद्ध करते थे। यद्यपि यह योजना बिलकुल सही तौर से अमल में न आ सकी, परंतु बहुत अंशों में सफ हुई और एक दिन रात की लड़ाई में उसका प्रभाव अलीमर्दान की पीछे हटती हुई सेना पर पड़ा हुआ दिखलाई देने लगा। गढ़ अभी लोचनसिं से दूर था। थोड़ा-सा पीछे हटकर अलीमर्दान खूब जमकर लड़ने लगा। दिन-भर बहुत ज़ोर की लड़ाई हुई। संध्या से ज़रा पहले उसकी कु सेना दाएँ-बाएँ कटकर बहुत तेज़ी के साथ लड़ते-लड़ते भाग गई। आध आध मील पश्चिम और पूर्व दिशाओं में भागने के बाद दूर पर ए जगह इकट्ठी होने लगी।

इस आकस्मिक दौड़-धूप में लोचनसिंह की सेना भी तितर-बितर हे गई। अन्धेरा हो जाने के कारण दूर तक पीछा न कर सकी और लौ पड़ी। अलीमर्दान की सेना ने थोड़ी दूर पर सामने इकट्ठे होकर गोला बारी शुरू कर दी, परंतु घड़ी-दो-घड़ी बाद शांत हो गई।

लोचनसिंह की समझ में यह रहस्य न आया। थोड़ी देर सोचने बाद उसने निश्चय किया कि अलीमर्दान :क़िले में जा घुसा है, परं सामने कहीं-कहीं आग का प्रकाश देखकर उसका भ्रम दूर हो गया। विश्राम-प्राप्त दल को लेकर उसने तुरंत हमला करने का निश्चय किया। लोचनसिंह के निश्चय को मिटाने या ढीला करने की [illegible] सेना

किसी को न थी, यद्यपि विश्राम-प्राप्त सैनिक भी और अधिक विश्राम प्राप्त करने के आकांक्षी थे।

घुड़सवारों ने आक्रमण किया। आक्रमण का वेग पहले कम फिर प्रचंड हो उठा। जो घुड़सवार आगे थे, एक स्थान पर जाकर यकायक रुक गये। एकबारगी चिल्लाये—'मत बढ़ो, धोखा है।' और बहुत-से सवारों का चीत्कार और घोड़ों के मर्माहत होने का स्वर सुनाई पड़ा। तुरंत ही बन्दूकों की बाढ़-पर-बाढ़ दगने लगी।

गोलियों की भनभनाहट के बीचोंबीच लोचनसिंह अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ उसी स्थान पर पहुंचा। देखा, सामने एक बड़ी गहरी और चौड़ी अंधी खाई है, जिसमें पड़े-पड़े घोड़े अपने टूटे सिर-पैर फड़फड़ा और घायल सिपाही कराह रहे हैं।

घोड़े का लगाम हाथ में पकड़े हुये, घुटने टेके हुये एक सैनिक से लोचनसिंह ने पूछा—'इसमें कितने खप गये होंगे?'

'सैकड़ों।' उत्तर मिला।

'इसी स्थान पर?'

'इसी स्थान पर।'

'मैं लोचनसिंह हूँ।'

'चामुंडरायजू, जुहार।'

'मेरे पीछे आओ। सब आओ।'

'मौत के मुँह में?'

'नहीं, मौत के मुँह से बचाने के लिये। अभागे, सब खाई में कूद पडो।'

लोचनसिंह की आज्ञा पर कोई सैनिक खाई में नहीं कूदा।

लोचनसिंह के शरीर में मानों आग लग गई। परन्तु वह अपने सैनिकों को प्यार करता था, इसलिये उसने अपने कोप का किसी को लक्ष्य नहीं बनाया। परन्तु शीघ्र कुछ करना था, इसलिये अपने पास तुरंतु थोड़े-से सैनिक इकट्ठे कर लिये।

बोला—'साफ़ा मेरी कमर में बाँधकर नीचे लटका दो। मैं वहाँ की दशा देखता हूं। उसके बाद घोड़ों को छोड़कर और लोग भी इसी तरह

उतर आओ । घोड़ों की लोथों और आदमियों की लाशों को इकट्ठा करके गड्ढा पाट दो, और मार्ग बनाकर खाई को पार कर लो । एक घंटे के भीतर सिंहगढ़ हाथ में आ जायगा । मैंने निश्चय किया है कि आज वहीं सोऊँगा ।'

लोचनसिंह को नीचे अकेले न जाना पड़ा । कई सैनिक इसके लिये तैयार हो गये, परंतु लोचनसिंह सबसे पहले नीचे उतरा । नीचे जाकर, इन लोगों ने लाशों का ढेर लगाकर खाई में एक सकरी रास्ता बना ली, पर वह इतनी बड़ी थी कि दो-तीन सवार एक साथ निकल सकते थे। दूसरी ओर से बंदूकें चल रही थीं, परंतु लोचनसिंह आगे और उसके सवार पीछे-पीछे खाई पार करके दूसरी ओर पहुँच गये । अलीमर्दान ने कल्पना नहीं की थी कि लोचनसिंह की सेना खाई पार करके इतनी शीघ्र आ जायगी । उसने इस खाई के पश्चिमी तथा पूर्वीय सिरों पर व्यूह बना लिया था और बीच की पाँत को ज़रा पीछे हटाकर जमा किया था । सिरे वाली टुकड़ियों ने उसके बँधे हुये इशारे पर काम नहीं कर पाया; नहीं तो जिस समय आरंभ में ही लोचनसिंह के बहुत से योद्धा खाई में गिरे और शोर हुआ, सिरेवाली टुकड़ियाँ इन पर दोनों ओर से हमला कर देतीं और लोचनसिंह की सेना का एक बहुत बड़ा भाग बहुत थोड़ी देर में नष्ट हो जाता । लोचनसिंह की सेना व एक बड़े दल ने खाई पार करके तुमुल-ध्वनि के साथ जय-जयकार किया । खाई के उसी तरफ़ पीछे जो लोग रह गये थे, उन्होंने भी जयकार किया । क़िले के ऊपर से तोपें गोले उगलने लगीं । खाई के दोनों सिरों की टुकड़ियाँ क़िले की ओर भागीं । इस गोल-माल में अलीमर्दान की बीच की पाँत भी पीछे हटी । क़िले की तोपों ने शत्रु और मित्र का भेद न पहचाना । दोनों दलों के अनेक लोग इन गोलों से चकनाचूर हो गये ।

अलीमर्दान ने क़िले के भीतर घुसकर युद्ध करना पसन्द नहीं किया। वह पूर्व की ओर दूरी पर अपनी सेना लेकर चला गया । यद्यपि वह चतुराई के साथ पीछे हटने में बड़ा दक्ष था, परंतु इस लड़ाई में उसका नुकसान हुआ ।

[३६]

लोचनसिंह की विजयिनी सेना क़िले की ओर बढ़ती गई। खाई के सिरों की अलीमर्दान की जो टुकड़ियाँ क़िले की ओर भागीं, उनके लिये द्वार न खुल पाया। उत्तर की ओर से लोचनसिंह के दूसरे दस्ते ने ज़ोर का धावा किया। कुञ्जरसिंह के दल ने यथाशक्ति उत्तर की ओर से आनेवाली बाढ़ का प्रतिरोध किया, परंतु कुछ न बन पड़ा वह दल उस ओर से किले के भीतर घुस आया। कुञ्जरसिंह ने अपने साथियों सहित लड़कर मर जाने की ठानी।

उसी समय रामदयाल कुञ्जरसिंह के पास आया। बोला—'राजा, महारानी के महलों पर चलकर लड़ो। यह स्थान घिर गया है। कालेखाँ फाटक पर लड़ रहे हैं। उस तरफ़ से दुश्मन की फ़ौज दाबे चली आ रही है। यदि फाटक खोलते हैं, तो भीतर-बाहर सब ओर वैरी का लोहा बज जायगा।'

कुञ्जरसिंह ने कहा—'महारानी जितने सिर कटवा सकती हैं, उतने बचा नहीं सकतीं, इस जगह लड़ना व्यर्थ है; मैं तो बाहर जाकर लड़ूँगा।'

'स्त्री की पुकार? और वह आपकी माँ भी होती हैं।'

'उन्होंने हम सबको इस दुर्दशा को पहुंचाया।'

'फिर भी माँ हैं। राजा नायकसिंह की रानी हैं। याद कर लीजिये। माँ के ऋण से उऋण होना है। अन्य सब बातों को भूल जाइये।'

'जो कुछ कहना हैं, वह तुमसे कह दिया। जाकर कह दो। वह स्त्री नहीं हैं। स्त्री वेश में प्रचण्ड पुरुष हैं। यदि उन्हें अपनी रक्षा की चिंता हो, तो मेरे साथ चलें। जाओ।'

यह कहकर कुञ्जरसिंह अपने आदमियों को लेकर चलने को हुआ—इतने में कालेखाँ आ गया। बोला—'कुञ्जरसिंह, तुमने हमारा सत्यानाश किया। कहाँ जाते हो?'

'जहाँ इच्छा होगी, वहाँ?'

'यह नहीं हो सकता। मैं कोटपाल हूँ। मेरा हुकुम मानना होगा; न मानोगे, सज़ा पाओगे।'

कुञ्जरसिंह नंगी तलवार हाथ में लिये [illegible] बोला—'दण्ड-विधान मेरे हाथ में है। जाओ, अपना काम देखो। गढ़ और राज्य का मालिक मैं हूं और कुछ फिर कभी बतलाऊँगा।'

कुञ्जरसिंह चला गया। कालेखाँ चिल्लाया—'पकड़ो, पकड़ो।'

रामदयाल ने भी वही पुकार लगाई। लोचनसिंह की सेना के जो सैनिक गढ़ के भीतर आ गये थे, वे कालेख़ाँ की ओर झपटे। वह तो लड़ता हुआ क़िले की दक्षिण ओर निकल गया, परन्तु रामदयाल पकड़ा गया। उसने घिघियाकर प्राण-रक्षा की प्रार्थना की —'मैं तो नौकर हूं, सिपाही नहीं हूँ, मुझे मत मारो।'

सिपाहियों ने उसे क़ैद कर लिया।

उधर से हल्ला करके लोचनसिंह की सेना ने गढ़ का सदर फाटक तोड़ डाला। कालेखाँ की सेना घमासान युद्ध करने लगी, परंतु लोचनसिंह को पीछे न हटा सकी। कालेखाँ कुछ सिपाहियों को लेकर क़िले से बाहर निकल गया। उसकी शेष सेना का अधिकांश मारा गया; जो नहीं लड़े, वे क़ैद कर लिये गये।

रामदयाल पहले ही कैद कर लिया था। लोचनसिंह ने रानी को भी क़ैद कर लिया।

मशालों की रोशनी में क़िले का प्रबन्ध करके लोचनसिंह ने क़िले के भीतर और बाहर सेना को नियुक्त किया। एक दल कालेखां का पीछा करने के लिये भी भेजा। अलीमर्दान भी स्थिति को समझकर वहां से दूर चला गया। कालेख़ां अपने बचे-खुचे आदमी लेकर उससे जा मिला और दोनों अपने पालर वाले दस्ते से कई कोस के फ़ासले पर कुछ समय उपरांत जा मिले। उस रात लोचनसिंह सिंहगढ़ में तो पहुंच गया, परंतु सो नहीं सका।

[३७]

राजा देवीसिंह ने अलीमर्दान के पालर वाले दस्ते को हटाकर ही चैन नहीं लिया, वल्कि इस बात का प्रवन्ध करने की भी चेष्टा की कि वह लौटकर फिर उपद्रव न करे। राजधानी सुरक्षित थी। सिंहगढ़ विजय का समाचार पाकर उसने दलीपनगर की सीमा को बचाव के लिये दृढ़ करना आरम्भ कर दिया। उधर लोचनसिंह को उचित धन्यवाद देते हुये आदेश भेजा।

लोचनसिंह ने इसे पाकर रामदयाल को बुलाया। क़ैद में था, पहरेदारों के साथ आया। लोचनसिंह ने कहा—'छोटी रानी से मिलना चाहता हूं। थोड़ी देर में आता हूँ। काग़ज़ क़लम-दावात तैयार रक्खें।'

रामदयाल लौटा दिया गया। थोड़ी देर बाद लोचनसिंह गया। पर्दे में बैठी हुई रानी से बातचीत होने लगी।

रानी ने कहा—'जो हुकुम तुमने अपने डेरे पर मेरे नौकर को बुलाकर दिया, उसे किसी से यहीं कहलवा भेजते; क्यों मेरा हल्कापन करते हो ?'

'मैं नौकरों के डेरों पर नहीं जाता। और क्या ठीक था, जो कुछ किसी के द्वारा कहलवा भेजता, उसे माना जाता या नहीं ?'

'यह नौकरों का डेरा है लोचनसिंह ?'

'यह न सही, वह तो है। अब मैं जिस काम से आया हूं, वह सुन लीजिये।'

'क्या ? सिर काटने के लिये।'

'यह काम मेरा नहीं और न मैं इसके लिये आया ही हूं। कलम, दावात, काग़ज़ मौजूद है ?'

'नहीं है। काहे के लिये चाहिये ?'

लोचनसिंह ने बहुत शिष्टाचार के साथ बतलाने की कोशिश की, परंतु फिर भी उसके स्वर में काफ़ी कठोरता थी। बोला—'आपको काग़ज़ पर यह लिखना होगा कि दलीपनगर-राज्य से आपको कोई वास्ता नहीं।'

'किसकी आज्ञा से ?' रानी ने कांपते हुये स्वर में पूछा ।

'राजा की आज्ञा से ।' उत्तर मिला ।

'राजा की आज्ञा से ।' बड़ी घृणा के साथ रानी बोलीं—'उ भिखमंगे की आज्ञा से ! जाओ, उससे कह दो कि मैं रानी हूं, राज्य की स्वामिनी हूं । वह लुटेरा और जनार्दन विश्वासघाती हैं, चोर हैं, मैं तु सबों की दण्ड की व्यवस्था करूंगी ।'

'तुम अब रानी नहीं हो ।' लोचनसिंह ने उत्तेजित होकर कहा—'स्त्री हो, नहीं तो—" लोचनसिंह वाक्य पूरा नहीं कर पाया । अपने आवेश में डूबकर रह गया ।

रानी बोलीं—'लोचनसिंह, लोचनसिंह, कोई स्त्री तुम्हारी भी मां रही होगी परंतु तुम किसी के न होकर रहे । मेरे स्वामी के लिये तुम अपना सिर दे डालने की डींग मारा करते थे । झूठे, घमंडी, इस छिछोरों का अञ्जलि-भर अन्न खाते ही तू अपने पुराने स्वामी को भूल गया ! हट जा मेरे सामने से ।'

लोचनसिंह ने इस तरह के कुवचन अपने जीवन में कभी न सुने थे। तिलमिला गया ।

बोला—'सच मानो रानी, अपने पूर्व राजा की याद ही मेरे खड्ग को इस समय रोके हुये है, नहीं तो ऐसा अपमान करके कोई भी स्त्री-पुरुष मेरे हाथ से नहीं बच सकता था । तुम क़ैद में हो, इसलिये भी अवध्य हो और इसीलिये तुम्हारी जबान इतनी तेज चल रही है । राजा को सब हाल लिखे देता हूं । वह यदि तुम्हें प्राण-दण्ड भी देंगे, तो मैं कोई निषेध नहीं करूंगा ।'

लोचनसिंह बहुत खिन्न, बहुत क्लांत वहां से चला गया; परन्तु रानी कहती रहीं—'देखूंगी, देखूंगी, कैसे देवीसिंह राजा बना रह सकता है ? सबको सूली न दी या कतर न डाला, तो मेरा नाम नहीं । इन नमकहरामों का मांस यदि कुत्तों से न नुचवा पाया, तो जान लूंगी कि संसार से धर्म बिलकुल उठ गया ।'

उस दिन से लोचनसिंह ने रानी का पहरा बहुत कड़ा कर दिया ?

[३८]

लोचनसिंह से खबर पाकर राजा देवीसिंह ने रानी को रामदयाल समेत दलीपनगर बुलवा लिया और लोचनसिंह को सिंहगढ़ की रक्षा के लिये वहीं रहने दिया।

देवीसिंह अपनी सेना को एक सरदार की मातहती में छोड़कर दलीपनगर आ गया। उस दिन जनार्दन के साथ बातचीत हुई।

राजा ने कहा—'लोचनसिंह ने रानी के साथ बहुत कड़ाई का बर्ताव किया है, परन्तु इसमें दोष मेरा है, मुझे लिखा-पढ़ी कराने का काम लोचनसिंह के हाथ में न देना चाहिये था। तुम्हारे हाथ में होता, तो सुभीते के साथ हो जाता।'

'नहीं महाराज।' जनार्दन बोला—'मुझी पर तो रानी का पूरा कोप है। उन्होंने मुझे मरवा डालने का प्रण किया है। मेरे द्वारा वह काम और भी दुष्कर होता।'

राजा ने हँसकर कहा—'वह तो इस समग्र संसार को दूसरे लोक में उठा भेजने की धमकी देती हैं। मैं ऐसे पागलों की बहक की कुछ भी परवा नहीं करता। मैं चाहता हूं, रानी का अब किसी तरह का अपमान न किया जाय और पहरा बहुत हल्का कर दिया जाय। वह राजमाता हैं। आदर की पात्री हैं। केवल इतनी देखभाल की ज़रूरत है, जिसमें संकट उपस्थित न कर सकें।

'यह बात जरा कठिन है महाराज! पहरा कठोर न होगा, किसी दिन पूर्ववत् महल से निकल भागकर विद्रोह खड़ा कर देंगी।' जनार्दन दृढ़ता के साथ बोला।

राजा ने एक क्षण सोचकर कहा—'तब उन्हें बड़ी रानी के महलों में एक ओर रख दो। वहाँ पहले ही से बहुत नौकर-चाकर और सैनिक रहते हैं। पहरा काफ़ी बना रहेगा और रानी को खटकने न पावेगा।'

इस प्रस्ताव को ध्यानपूर्वक न सोचकर जनार्दन ने स्वीकार कर लिया।

राजा बोले—'और यदि वह लिखा-पढ़ी न कराई जाय, तो क्या होगा ? सब जानते हैं, मैं राजा हूँ। एक रानी के मानने या न मानने से क्या अन्तर पड़ेगा ?'

'जो लोग महाराज !' जनार्दन ने उत्तर दिया—'भीतर-ही-भीतर राज्य से फिरे हुये हैं, उनके लिये लिखा-पढ़ी अमोघ अस्त्र का काम देगी। डाँवाडोल तबियत के आदमियों के लिये इतना ही सहारा बहुत हो जायगा।'

राजा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। इसके बाद दोनों छोटी रानी के पास गये। वहाँ पहुंचने के पहले देवीसिंह ने कहा—'पंडित जी, बातचीत आपको करनी पड़ेगी। मैं बहुत कम बोलूँगा।'

जनार्दन को कुछ कहने का मौका न मिला। दोनों रानी के पास पहुँच गये। रानी पर्दे में थीं। राजा ने देहरी पर माथा टेककर प्रणाम किया। रानी ने आशीर्वाद नहीं दिया।

बोलीं—'जनार्दन को यहाँ से हटा दो।'

देवीसिंह इस तरह के अभिवादन की आशा नहीं रखता था। सन्नाटे में आ गया। उसे अवाक् होता देख जनार्दन आगे बढ़ा। कहने लगा—'मेरे ऊपर आपका जो रोष है, सो उचित ही है, परन्तु यदि आप विचार करें, तो समझ में आ जायगा कि वास्तव में मेरा अपराध कुछ नहीं और मान लिया जाय कि मैं अपराधी ही हूं, तो भी आपको माता के बराबर मानता हूं, इसलिये क्षमा के योग्य हूं। मैंने जो कुछ किया है, राज्य के उपकार के लिये किया है—'

रानी ने टोककर कहा—'हम जो दर-दर मारे-मारे फिर रहे हैं, हमारे साथ जो छोटे-छोटे आदमी पशुओं-जैसा बर्ताव कर रहे हैं, हमें जो बन्दी-गृह में डाल रक्खा है, वह सब राज्य का उपकार ही है न पण्डित जी ? स्मरण रखना, इस लोक के बाद भी कुछ और है और देर-सबेर वहीं जाओगे।'

'सो मुझे सब मालूम है।' जनार्दन ने कहा—'आपकी मेरे ऊपर जैसी कुछ दया-दृष्टि है, वह भली-भाँति प्रकट है, परन्तु प्रार्थना है कि अब ऐसा निर्देश कीजिए, जिसमें राज्य का कुशल-मंगल हो।'

राजा ने जनार्दन से पूछा—'रामदयाल कहाँ है ?'

रानी ने तुरन्त उत्तर दिया—'क़ैदख़ाने में पैकरे डाले हुए और मुझे जितनी स्वतन्त्रता दे रक्खी है, उसका बड़प्पन इससे नापा जा सकता है कि स्नान करते समय भी दो-तीन बाँदियाँ नंगी तलवार लिये सिर पर तनी रहती हैं। एक शूरवीरता का काम तुम लोगों के लिये रह गया है—मुझे विष दिलवा दो, या तलवार से कटवाकर फिंकवा दो।'

जनार्दन कुछ कहना चाहता था, परन्तु राजा ने आँख के संकेत से मना कर दिया और स्वयं बोला—'रामदयाल को मैं इसी समय मुक्त करता हूँ। वह सदा आपकी चाकरी में रहेगा और आप बड़ी कक्कोजू वाले महल में चली जायँ।'

'न।' रानी ने कहा—'मैं इसी कैदख़ाने में अच्छी, जो पहले मेरा ही महल था, आज यातना-गृह हो गया है। इसी में बने रहने से तुम लोगों की शुभ कामना अच्छी तरह पूर्ण हो सकेगी। मैं यहाँ से नहीं जाऊंगी।'

'जाना होगा।' राजा बोले—'कक्कोजू, यदि तुम यहाँ से उस महल में न जाओगी, तो मैं सेवा करने के लिये इसी स्थान पर आ रहूंगा।'

रानी कुछ देर चुप रहीं।

जनार्दन ने कहा—'आप इसे भी हम लोगों के किसी स्वार्थ की प्रेरणा समझेंगी। परंतु कृपा करके आप शांति के साथ रहियेगा। सोचिये, आपने इस राज्य के नाश करने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी। अलीमर्दान को बुलवाया, जो पालर के मंदिर का नाश करने के लिये कटिबद्ध रहा है, जो दुर्गा के अवतार को भ्रष्ट करने का निश्चय करके आया था। आप यदि यहीं रहना पसंद करती हैं, तो बनी रहें, किया ही क्या जा सकता है ?'

'झूठ, झूठ, सब झूठ।' रानी ने कड़ककर कहा—'यह सब जनार्दन का रचा हुआ माया-जाल है। किसी तरह तुम्हीं ने मेरे स्वामी को दवा दे-देकर अधोगति को पहुंचाया, न जाने क्या लिखा-लिखाकर फिर रोग-मुक्त न होने दिया, और अंत में प्राण लेकर ही रहे और फिर—' रानी का गला रुंध गया।

राजा बीच में पड़ना चाहते थे, पर यह समझ में न आता था कि इस अवसर पर किस तरह बात को टालकर सांत्वना दी जाय।

जनार्दन ने कहने का निश्चय कर लिया और बोला—'और फिर क्या रानी? राजा ने जो कुछ आज्ञा दी, उसका मैंने पालन किया। जिसके भाग्य में भगवान ने राज्य लिखा था, उसे मिला; आप यों ही हम लोगों की जान की गाहक बन बैठी हैं। महाराज आपके सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करने की योजना करते हैं, तो आप व्यर्थ अपने कष्टों को बढ़ाने की चिन्ता में निरत हो जाती हैं।'

राजा ने कहा—'मैंने रामदयाल को मुक्त कर दिया है। आप उसे तुरन्त यहाँ भेजें।'

जनार्दन रामदयाल को लेने के लिये गया।

राजा ने कहा—'कक्कोजू, आप पण्डित जी पर क्रोध न करें। राज्य सम्भालने के लिये उन्हें अपना काम करना पड़ता है।'

'कक्कोजू मुझे मत कहो।' रानी ने रोते हुये कहा—'मैं राजा की रानी हूँ और तुम्हारी कोई नहीं। यदि कोई होती, तो क्या लोचनसिंह इत्यादि मेरा ऐसा अपमान कर पाते?'

जो कुछ हुआ, वह अनिवार्य था कक्कोजू। राजा बोले—'जो कुछ हुआ, उसका स्मरण छोड़ दीजिये। आगे जो कुछ करूँगा, आपकी आज्ञा से।'

'जिसमें मैं तुम्हें लिखा-पढ़ी कर दूं कि राज्य का हक़ छोड़ दिया।' रानी ने रोना बन्द करके, चमककर कहा—'यही है न तुम्हारी दयालुता के मूल में?

राजा ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। बांदियों से रानी के आराम के विषय में बातचीत करने लगे। इतने में रामदयाल को लेकर जनार्दन आ गया।

राजा ने रामदयाल से कहा—'कक्कोजू को बड़ी कक्कोजू वाले महल में पहुँचा दो। उन्हें यदि किसी तरह का कष्ट हुआ, तो तुम्हें संकट में पड़ना होगा।'

रानी बोलीं—'तुम उसकी खाल खिचवाओ और जनार्दन मेरी खाल खिचवाये।'

इस व्यंग्य का कोई प्रतिवाद न करके दोनों वहाँ से चले गये।

[३९]

बड़ी रानी के महल में छोटी रानी को रखने के बाद जनार्दन सोचा, अच्छा नहीं किया। एक तो यह कि छोटी रानी शायद उन्हें विचलित करने की कोशिश करें, और दूसरे यह कि वहाँ निकल भाग का अधिक सुभीता था। उसे इस बात का पछतावा था कि राजा भावुकता का नियंत्रण न कर पाया और स्वयं भी एक छोटे-से कष्ट बचने के लिये दूसरे बड़े संकट में जा पड़ा।

राजा ने छोटी रानी को बड़ी रानी के भवन में भेज देने के बाद पहरा शिथिल कर दिया और रामदयाल को उनकी सेवा में बने रहने की अनुमति दे दी। जो लोग बड़ी रानी की टहल में रहते थे, उन्हीं छोटी रानी पर निगरानी रखने के लिये चुपचाप कह दिया।

परंतु निगरानी नहीं हुई। राजा के साथ उस दिन जो वार्तालाप छोटी रानी का हुआ था, वह लोगों पर प्रकट हो गया। उसी के बाद पहरा ढीला कर दिया गया था। किसे क्या पड़ी थी कि प्रकट व्यवहार को भूलकर गुप्त आदेश का अक्षरशः अनुसरण करे। जिन लोगों को यह काम सौंपा गया था, उन्हें यह भी भय था कि यदि कोई बात राजा की मर्जी के खिलाफ़ हो गई, तो जान पर बन आवेगी और राजा की मर्जी कब क्या है, इस बात का पता लगा लेना किसी साधारण टहलुवे या सिपाही के लिये संभव नहीं था।

इस ग़लती को जनार्दन ने राजा को सुझाया भी, परंतु उन्होंने यह कहकर जनार्दन को शान्त करने की चेष्टा की कि विश्वास करने से विश्वास उत्पन्न होता है। जनार्दन ने ऊपर से तो कुछ नहीं कहा, परन्तु विश्वस्त गुप्तचर नियुक्त कर दिये। महल के टहलुओं में से इन्हें कोई-कोई पहचानते थे। गुप्तचरों के विषय में परस्पर काना–फूसी हुई, वास्तविक स्थिति का अनुमान करने के लिये इधर-उधर के अटकल लगे, चर्चा बढ़ी। रामदयाल को भी मालूम हो गया। दोनों रानियों के लिये भी वह भेद रहस्य न रह गया। छोटी रानी को विश्वास हो गया कि देवीसिंह

क्रूरता के लिये जिम्मेदार नहीं है, बल्कि जनार्दन—पुराना शत्रु जनार्दन—है। बड़ी रानी को अपने भवन में छोटी रानी का आगमन अच्छा नहीं मालूम हुआ। राजा ने क्यों ऐसा किया ? जनार्दन का इसमें क्या मतलब है ? मेरे ही महल में क्यों इस विपद् को रक्खा ? इत्यादि प्रश्न बड़ी रानी के मन में उठने लगे।

बड़ी रानी का स्वभाव गिरती पाली का साथ देने का न था, परन्तु अपने पूर्व वैभव की स्मृति को जाग-जाग पड़ने से रोकना किसकी सामर्थ्य में है ? छोटी रानी के लिये उनके हृदय में शायद ही कभी प्रेम रहा हो, परन्तु उनके कष्टों और अपमानों की बढ़ी हुई, बहुत बढ़ाई हुई, गाथा सुनकर मन खीझने लगा। उस क्षोभ का वह किसी को भी लक्ष्य नहीं बनाना चाहती थीं। राजा देवीसिंह की ओर उनके मन की प्रवृत्ति संधि की तरफ़ हो चुकी थी और उन्होंने अपनी वर्तमान अनिवार्य स्थिति के ऊपर क़रीब-क़रीब क़ाबू कर लिया था। परन्तु उजड़े हुये गौरव को लुटा हुआ बतलाने वालों की कमी न थी। दलित महत्वाकाँक्षा का पुरा हुआ घाव कभी-कभी हरा होकर निःश्वास के रूप में गल-गलकर बाहर आ जाता था।

छोटी रानी की उपस्थिति ने खीझ, क्षोभ और दलित हृदय की आहों का सिलसिला जारी कर दिया। मन की इस अवस्था में जनार्दन के गुप्तचरों की चिनगारी के समाचार ने उन्हें इस बात के सोचने पर विवश किया कि छोटी रानी को जैसा थोथा, आश्वासन, बिना किसी विघ्न-बाधा के जीवन-यापन कर लेने का दिया है, उसी तरह का मुझे भी दिया गया है, क्योंकि जिस तरह चुपचाप उनके ऊपर चौकसी रहती है, उसी तरह अवश्य ही मेरे ऊपर भी रहती होगी।

दो ही तीन दिन के बाद छोटी रानी से सलाह कर के रामदयाल बड़ी रानी के पास पहुंचा। जब तक दासियां पास रहीं, तब तक वह केवल शिष्टाचार की बातें करता रहा। रानी समझ गईं कि किसी गुप्तचर की उपस्थिति के कारण रामदयाल हृदय-तल की बात कहने से

झिझक रहा है। अपनी निज की दासियों में भी कोई गुप्तचर नियुक्त है, इस कल्पना पर रानी का जी जल उठा। दासियों को हटाकर रानी ने रामदयाल के साथ अधिक स्वतन्त्र वार्तालाप की आशा की।

रामदयाल नें दासियों के चले जाने पर कहा—'वह आपसे छोटी हैं। आप क्या उनके किये न किये को क्षमा कर देंगी ? जो दुःख आपको है, वही उन्हें भी है।'

ठण्डी साँस लेकर रानी ने कहा—'उनमें और सब गुण हैं, केवल एक वाणी उनके काबू में होती, तो वृथा का झंझट आपस में कभी न होता। उनके कष्ट और अपमान की बात सुनकर हृदय बैठ जाता है।'

रामदयाल ने इधर-उधर की बातें करने के सिवा उस समय और कुछ नहीं कहा।

जाते समय बोला—'यदि कुञ्जू आपके पास आयें, तो क्या आपको अखरेगा ?'

बड़ी रानी की पूजा उनके स्वाभिमान के माप से अधिक हो गई। आँखें छलक पड़ीं। रुद्ध कण्ठ से कहा—'वह क्या कोई और हैं ? अवश्य आवें।'

'बहुत अच्छा महाराज।' कहकर रामदयाल चला गया।

'महाराज' शब्द के सम्बोधन में खोखलेपन की पूरी झाईं अवगत करके बड़ी रानी को अपनी असमर्थ अवस्था पर परिताप हुआ।

[४०]

नियुक्त समय पर छोटी रानी बड़ी रानी के पास आईं। बड़ी का चरण-स्पर्श द्वारा अभिवादन किया। बड़ी ने आशीर्वाद देना चाहा। क्या आशीश देतीं? कोई गुप्त वेदना हृदय में जाग पड़ी और मुख पर आँसुओं की बूँद ढलक आई। छोटी रानी भी घूँघट मारे रोई, परन्तु बड़ी रानी को यह नहीं मालूम हुआ कि उनके आँसुओं ने घूँघट को भिगो पाया या नहीं।

बड़ी रानी की समझ में जब कुछ समय तक यह न आया कि कौन सी बात पहले कहूँ, तब छोटी रानी बोली—'जो कुछ मुझसे बुरा-भला बना हो, उसे बिसार दिया जाय क्योंकि अब, यह सोचना है कि इतने बड़े जीवन को कैसे छोटा किया जाय।'

बड़ी ने कहा—'मैं तो आज ही जीवन को समाप्त करने के लिये तैयार हूं, अब और क्या देखना है, जिसके लिये जियूँ।'

छोटी रानी ने ज़रा घूँघट उघारा। बोली—'मैं केवल एक अनुष्ठान के लिये अब तक जीवन बनाये हुये हूँ। बात फैल भी गई है, परन्तु मुझे उसकी चिन्ता नहीं। आज्ञा हो, तो सुनाऊँ?'

'अवश्य, अवश्य।'

'जनार्दन हम लोगों के सर्वनाश की जड़ है।'

'अब उसकी चर्चा व्यर्थ है।'

'अब चर्चा अमिट है। क्या भूल गईं; किस तरह से उसने महाराज के हस्ताक्षर का जाल किया? किस तरह उसने एक अनजान लड़के को अपना खिलौना बनाकर सारे राज्य की बागडोर अपने हाथ में रखी है?

इन प्रश्नों का बड़ी रानी ने कोई उत्तर नहीं दिया। नीचा सिर कर लिया। छोटी रानी ने ज़रा धीमे होकर कहा—'असल में हम लोग राज्य के अधिकारी हैं। बिराने को अपनी संपत्ति भोगते देखकर छाती सुलग जाती है। यही मेरा दोष है, यही मेरा पाप है।'

'पर इसका प्रतिकार ही क्या हो सकता है ? जो भाग्य में लिखा है, सो होकर रहेगा ?'

'हमारे भाग्य में यह सब दुःख और जनार्दन के भाग्य में हमारा अपमान करना ही लिखा है, यह अभी कैसे कहा जा सकता है ?'

बड़ी रानी छोटी का मुंह ताकने लगीं।

छोटी रानी ने उत्तेजित होकर कहा—'हमारे भाग्य में राज्य लिखा है, प्रजा-पालन लिखा है और जनार्दन के भाग्य में प्राण-वध का दंड बदा है। मुझे देवी ने सपना दिया है।'

देवी के सपने की बात सुनकर बड़ी रानी बोलीं—'अलीमर्दान को तुमने क्यों निमन्त्रण दिया ? इसे लोग अच्छा नहीं कहते।'

'न कहें अच्छा।' छोटी ने कहा—'कष्टों से पार पाने के लिये मैंने उसके पास राखी भेजी थी। और क्या करती ?'

'वह देवी का मन्दिर तोड़ने आया है।'

'नहीं।'

'और मन्दिर की पुजारिन को, जो देवी का अवतार भी मानी जाती है, नष्ट करने।'

'इसमें बिलकुल तथ्य नहीं। हमारे विरुद्ध प्रजा को उभाड़ने के लिये ही जनार्दन इत्यादि ने यह षड़यन्त्र खड़ा किया है।'

'लोचनसिंह सौगन्ध खाकर कहता है।'

'ओह ! उस नीच, नराधम पशु की बात मत कहो। उस जैसी हृदय-हीनता पत्थर की शिलाओं में भी न होगी। ऐसा मूर्ख, ऐसा अभिमानी —'

बड़ी रानी ने धीरे से छोटी रानी की उग्रता के बढ़ते हुये. वेग को रोकने के लिये टोककर कहा—'अपने स्वभाव को अपने हाथ में रक्खो। जो कुछ करो, समझ-बूझ कर करो। हमारे निर्बल हाथों में कोई शक्ति नहीं। जो सरदार किसी समय तरफ़दार थे, उनके जी मुरझा गये हैं। अब कदाचित् कोई साथ न देगा।'

'यह सब पाजीपन जनार्दन का है।' छोटी रानी ने धारा-प्रवाह में कहा—'जिस समय सरदार मुझे नंगी तलवार लिये घोड़ी की पीठ पर देखेंगे, उस समय उनके बाहु फड़क उठेंगे। न्याय और धर्म का साथ देने में मनुष्यों को विलम्ब नहीं होता। बिखरी हुई, सोई हुई शक्तियाँ, मुर्झाई हुई अचेत आत्मायें धर्म के लिये सिमटकर प्रचण्ड रूप धारण करती हैं और—'

उद्दण्ड प्रबलता के इन काल्पनिक चित्रों से ज़रा भयभीत होकर बड़ी रानी बोलीं—'तुम ठीक कहती हो, परन्तु इस विषय पर फिर कभी शान्ति के साथ बातचीत होगी, तब तक सावधानी के साथ अपने मन में रक्खो।'

'मैं किसी से नहीं डरती।' छोटी रानी ने कहा—'मन की बात मन में ही बन्द कर लेने से वह वहीं की होकर रह जाती है। आपको सीधा पाकर ही तो इन लोगों की बन आई है। आप कैसे इन लोगों की करतूतों को सहन करती हैं?'

इसका उत्तर बड़ी रानी ने एक लम्बी सांस लेकर दिया। थोड़ी देर में छोटी रानी चली गईं। बड़ी रानी ने सोचा—'यदि मैं छोटी के साथ अपनी शक्ति को मिला देती, तो ये दिन सिर पर न आते। मैं अपने को निस्सहाय, निराश्रय समझकर ही इस हीन दशा को पहुंची हूं।'

[४१]

कुञ्जरसिंह अपने साथियों को लेकर अँधेरे में सिंहगढ़ से निकल आया था। सिंधु-नदी के उत्तर ओर कई कोस तक दलीपनगर का राज्य था—वन और पर्वतों से आकीर्ण; परन्तु कोई दृढ़ क़िले उस ओर नहीं थे। जहाँ दलीपनगर की सीमा ख़त्म हुई थी, वहाँ से कालपी का सूबा शुरू हो गया था। उस ओर चले जाने पर दलीपनगर के दीर्घक्षेत्र से संबंध टूट जाता और कोई पक्का आश्रय मिलता नहीं। ऐसी दशा में उसने पूर्व की ओर पहूज और बेतवा नदियों के आस-पास ठहरकर अपनी टूटी हुई शक्ति को फिर से जोड़ने का निश्चय किया। उसके संगी भी राज़ी हो गये, परन्तु साथ बहुत थोड़ों ने दिया। गिरती हुई अवस्था में भी आशा के बल पर साथी बलिदान करने के लिये अनुप्राणित रहते हैं, परन्तु निराशा की दशा में बलिदान लगभग असंभव हो जाता है। इसलिये कुञ्जरसिंह के साथियों की संख्या क्रमशः कम होती चली गई।

सिंहगढ़ से निकलने के उपरांत दो-एक दिन भटकने में लग गये। शीघ्र किसी निश्चय पर पहुँच जाने का अभ्यास न होने के कारण कभी उत्तर और कभी पूर्व की ओर भटकते गये। पहूज के निकट की उर्वरा शस्य-श्यामला भूमि शीघ्र त्यागकर वन में पहुंचे। वहाँ भी एक आध दिन ही रह पाये। अंत में २५-३० कोस की उद्देश्य-हीन यात्रा समाप्त करके इन लोगों ने बेतवा-किनारे के घोर वन और सुरक्षित गढ़ों की ओर दृष्टि डाली।

कुछ ही समय पहले प्रसिद्ध चंपतराय ने बेतवा के जंगल-भरकों और इन छोटे-छोटे क़िलों के आश्रय से मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब की नाकों दम करके बुन्देलखंड की स्वाधीनता का अनुष्ठान किया था। अभी लोगों को वे दिन याद थे। कुञ्जरसिंह की धारणा और विचार पर भी उस स्मृति का प्रभाव पड़ा। उसने बिराटा और रामनगर के पड़ोस में अपनी योजना सफल करने की ठानी। इन गढ़ों के पड़ोस में वह पहुंच चुका था।

झाँसी से पूर्वोत्तर-कोण में विराटा की गढ़ी, जिसका अवशेष अब एक मंदिर-मात्र है पच्चीस मील की दूरी पर है। रामनगर और विराटा में केवल कोस-भर का अंतर है। दोनों वेतवा के किनारे भयंकर वन में छिपे-से अर्द्ध-भग्नावस्था में अब भी पड़े हैं।

बिराटा से दो कोस दक्षिण-पश्चिम की ओर मुसावली एक छोटा-सा उजड़ा गाँव है। उन दिनों भी वह बड़ी जगह न थी। परंतु छिपाव और रक्षा का साधन वहाँ सदा रहा है। नालों और काँटेदार पेड़ों की विस्तृत भरमार है। मुसावली की पहाड़ी इस जंगल की ओट का काम करती है।

उन दिनों विराटा में दाँगी राजा राज्य करता था और रामनगर में एक बुन्देला सरदार रहता था। ये दोनों कभी पूर्ण स्वतंत्र नहीं रहे, परन्तु इनकी अधीनता भी नाम-मात्र की थी। कभी कालपी को कर देते थे, कभी ओरछा को और कभी किसी को भी नहीं।

औरंगज़ेब के काल तक ये लोग भांडेर या कालपी के मुग़ल-सूबेदार की मार्फ़त मुग़ल सम्राटों को कर चुकाते रहे। औरंगज़ेब की दक्षिण चढ़ाइयों के समय शासन शिथिल हो गया। उसके मरने के उपरांत जो राजनीतिक भूकंप आया उसमें ये लोग क़रीब-क़रीब स्वाधीन हो गये। स्वाधीनता-यज्ञ के बड़े यजमानों का ये लोग साथ देते रहते थे, परन्तु स्वयं खुल्लमखुल्ला किसी शक्ति के कोप को उत्तेजित नहीं करते थे। इसीलिये इतने दिनों बचे रहे।

चंपतराय ने ऐसे लोगों का खूब उपयोग किया था। कुञ्जरसिंह ने भी इनके उपयोग को ही अपना एक मात्र आश्रय निर्धारित किया।

परन्तु एकाएक इनमें से किसी के पास सहायता माँगने के लिये पहुँचना उसने उचित नहीं समझा।

उसने सोचा, मुसावली में पहुंचकर स्थिति का निरीक्षण और बिराटा तथा रामनगर के सरदारों से मिलकर अपने बल की पुनः स्थापना करूँगा। यदि यह संभव न हुआ, तो बिराटा-वन के किसी अदृश्य स्थान

में भगवती दुर्गा का स्मरण करते-करते जीवन समाप्त कर दूँगा और अलीमर्दान इस स्थान पर किसी मतलब से चढ़ाई करे, तो उसके निरोध में शरीर त्याग करना राज्य-प्राप्ति से भी बढ़कर होगा। उसे मालूम था कि कुमुद कहीं बिराटा के आस-पास ही है।

परन्तु इस योजना में कुञ्जरसिंह के बचे-खुचे सरदार ऊपर से ही सहमत हुये, भीतर से उन्हें इस योजना की अन्तिम सफलता पर कोई विश्वास न था। दो-तीन दिन बाद यह लोग भी अपने घरों को चले गये और समय आने पर सहायता करने का वचन दे गये।

अलीमर्दान को इस तरह की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। पालर वाले दस्ते को उसने झाँसी के उत्तर में १०—१५ कोस के फ़ासले पर पहूज के किनारों पर पा लिया। वहाँ से वह भांडेर चला गया। कालेखाँ भी उसे भांडेर में आकर मिल गया। वहीं से अलीमर्दान आगे की कतर ब्योंत का हिसाब लगाने लगा।

[४२]

कुञ्जरसिंह मुसावली में एक अहीर के घर ठहर गया था। घर से लगा हुआ काँटों की बिरवाई से घिरा एक बेड़ा था। उसमें कुञ्जरसिंह घोड़ा बाँधकर स्वयं घर के एक कोने में अकेला जा बसा।

बिरवाई से लगे हुये ३-४ महुए के पेड़ थे। महुओं के पीछे से एक चक्करदार नाला निकला था। दूसरी ओर वह पहाड़ी थी, जो मुसावली-पाठा कहलाती है। एक ओर वीहड़ जंगल। कुञ्जरसिंह महुओं के नीचे गया। अहीर की कुछ भैंसें नाले के पास चर रही थीं, कुछ महुए के नीचे ऊंघ रही थीं। एक लड़का कुछ धूप कुछ छाया में सोता हुआ जानवरों की देख-भाल कर रहा था।

घास आधी हरी, आधी सूखी थी। करधई के पत्ते पीले पड़-पड़कर गिरने लगे थे। नाले का पानी अभी नहीं सूखा था—कुछ भैंसें उसमें लोट-लोटकर शब्द कर रही थीं। चिड़ियाँ इधर-से-उधर उड़कर शोर कर रही थीं। सूर्य की किरणों में कुछ तेज़ी और हवा में थोड़ी उष्णता आ गई थी। कुञ्जरसिंह अपने घोड़े के सामने घास डालकर महुए के नीचे आया। जो भैंसें दूर पर बैठी ऊँघ रही थीं, यकायक उठ खड़ी हुईं। चरवाहे की आँख खुल गई। पास में कुञ्जरसिंह को देखकर लड़के ने उठाई हुई लाठी को नीचा कर लिया। बोला—'दाउजू, सीताराम।' प्रणाम का उत्तर देकर कुञ्जरसिंह पेड़ की जड़ से टिककर बैठ गया। लड़का बिना किसी संकोच के एकटक कुञ्जरसिंह की ओर देखने लगा। उस चरवाहे के शरीर पर फटी हुई अँगरखी थी। घुटन्ना चढाये मैला अंगोछा पहने था; आँखों में एक निर्मल, निर्भय दृढ़ता थी।

कुछ देर टकटकी लगाने के बाद बोला—'दाउजू, अबै दर्शन नई भये का ?'

लड़के की सहज, सरल निर्भयता और प्रश्न की विचित्रता से जरा आकृष्ट होकर कुञ्जरसिंह ने प्रश्न किया—'किसके दर्शन भाई ?'

'एल्लों ! हमई सें टिटकरी करन आये ! दर्शन खों नई आये, इतै तौ कायके लानै आये इत्ती दूर सें ? संसार-भर के राजाराव नित्त आउत रहत।'

लड़के के बेधड़क सम्बोधन से कुञ्जरसिंह जरा चकराया, क्योंकि महल और क़िले के वातावरण में इस तरह की स्वच्छता उसने नहीं देखी थी। उसकी समझ में प्रश्न नहीं आया था, परन्तु उस प्रश्न ने किसी गुप्त कौतूहल को जागृत किया। कुंजरसिंह उपेक्षा के भाव को छोड़कर बोला—'हम कितनी दूर से आये हैं, तुम्हें मालूम है ?'

'पालरे सें।'

'अच्छा, बतलाओ, हम किसके दर्शन के लिये आये हैं ?'

'जीके दर्शन खों हमाओ दद्दा कभउँ-कभउँ जात। कओ दाउजू, हमने जान लईं कै नईं ? हमखों कौन काऊ ने बताई, पै हम तो जान गये।'

कुञ्जरसिंह चौंक पड़ा। पालर से आना तो उसने ही चरवाहे के पिता को बतलाया था, परन्तु आने का प्रयोजन उसने कुछ और ही ज़ाहिर किया था। कुञ्जरसिंह को अनुमान करने में विलम्ब नहीं हुआ कि किसके दर्शन की ओर लड़के का भोला संकेत था। उससे कहा—'तुम्हारे साथ चलेंगे, कब जाओगे ?'

लड़ने ने उत्तर दिया—'जब चाये, तब। कौन दूर है ? इतै सें दो कोस तो हैई। हमाई एक भैंस कें दूध नईं निकरत, सो बिनती के लानें कालई-परौं जैहैं। तुम जो कछू माँगो, सौ तुमें सोऊ मिल जैय।'

कुञ्जरसिंह के हृदय में गुदगुदी पैदा हुई। उसने कल्पना की कि पूजा और बरदान का स्थान एक कोस पर बिराटा ही है। पूरा पता लगाने के प्रयोजन से पूछा—'रास्ता क्या बहुत बीहड़ में होकर है ? यहाँ तो मन्दिर दिखाई नहीं देता।'

'पाठे पै होकें सब दिखात है।' लड़का बोला—'बिराटा की गढ़ी दिखात और देवी को मन्दिर दिखात। ठीक नदी के बीच में बिराजमान

हैं। ए दाउजू, हमने जब पैलउँपैल देखी, तब आँखें मिच गईं हतीं। उनके नेत्रन में सें झार-सी निकर रईं हती।'

कुञ्जरसिंह को विश्वास हो गया कि यह वर्णन कुमुद का ही है। तो भी और अधिक जानकारी पाने की गरज से कहा—'कब से आई हैं यह देवी ?'

'सदा सें।' लड़के ने चकित होकर जवाब दिया—'उनकौ कछू आद-अन्त थोरक सौ है।'

इसके बाद उस सीधे लड़के ने देवी की करामातों की गिनती का ताँता बाँध दिया।

वह कहता गया। कुञ्जरसिंह कुछ और सोचने लगा—'सदा से ही यहाँ पर हैं ? यह असम्भव है। यदि वही हैं, तो कुछ ही दिन आये हुये होंगे। परन्तु यदि नहीं होतीं, तो लड़का सदा से यहीं रहने की बात न कहता। शायद कोई और हो। शायद यह और ही कोई अवतार हो। जो कुछ भी हो। एक बार दर्शन अवश्य करूँगा।'

कुञ्जरसिंह ने लड़के से उक्त देवी के विषय में और भी अनेक प्रश्न किये, परन्तु उसे कोई अभीष्ट उत्तर न मिला।

निदान उसने लड़के के पिता से पूछ-ताछ करने का निश्चय किया। चिड़ियों की विभिन्न चहचहाहट और अपनी दुर्दशाओं की विश्रुङ्खल गणना में कुञ्जरसिंह ने सन्ध्या तक का समय किसी तरह व्यतीत किया। सूर्यास्त के पहले दूर के खेत पर से गृह-स्वामी जब आया, तब कुञ्जरसिंह ने अवसर प्राप्त होते ही उससे कहा—'देवी के दर्शन करके मैं यहां से दो-चार दिन में चला जाऊँगा।'

कृषक बोला—'सौ काए ? ऐसी का जल्दी परी दाउजू ? जो कछू लटो-दूबरौ कनूका हमाये गाँठ में है, सो नजर है। हमसें ऐसी का बिगरी कि अबई जावौ हो जैय ?'

कृषक के इस सरल और सच्चे आतिथ्य-हठ से कुञ्जरसिंह का जी भर आया। घर पर चढ़ी हुई कद्दुयें की बेलों को देखते हुये कुञ्जरसिंह ने कहा—'माते हम तो सिपाही हैं, न जाने अभी कहाँ-कहाँ भटकना पड़े। देवी के दर्शन करके कार्य-सिद्धि के पीछे यदि बचे रहे, तो फिर तुमसे आकर मिलेंगे।'

'जैसी मर्जी।' अहीर ने कुछ उदास होकर कहा। एक क्षण के बाद बोला—'मैं परों दर्शन करबे जैहों, तबईं चलबौ होए। आजकल बड़ो हूला-चालौ मचौ है। कछू दिना इतै बनौ रैवो हुईये, तो मड़ैया बची रैय।'

किसान के इस प्रकट स्वार्थ पर कुञ्जरसिंह क्षुब्ध नहीं हुआ। उसने विश्वास दिलाते हुये कहा—'अच्छा।'

[४३]

छोटी रानी की वाग्मिता बड़ी रानी को अधिक आकृष्ट करने लगी और दोनों एक दूसरे से बहुधा मिलने-जुलने लगीं। थोड़ी ही दिनों में दोनों के बीच का बहुत दिनों से चला आने वाला अंतर कम हो गया। राजा को इस मेल-जोल पर संतोष हुआ, परन्तु जनार्दन को इसमें श्रद्धा के योग्य कुछ न दिखाई दिया।

एक दिन बहुत लगन के साथ छोटी रानी बड़ी रानी से बातें कर रही थीं। बातचीत के सिलसिले में छोटी रानी ने कहा—'जब तक हम लोग इस बन्दीगृह में बैठी-बैठी दूसरों का मुंह ताकती रहेंगी, तब तक कोई सरदार मैदान में नहीं आवेगा। बाहर निकलते ही बहुत से सरदार साथ हो जायँगे।'

बड़ी रानी थोड़ी देर पहले कही हुई एक बात को दुहराते हुये बोलीं—'इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस राज्य के असली अधिकारी क़ैद में हैं और जिसे क़ैद में होना चाहिये, वह राजदंड हाथ में लिये है।'

परन्तु उसके छीनने की शक्ति अब भी हमारे हाथ में है।' छोटी रानी ने उत्तर दिया।

बड़ी रानी ने पूछा—'मुझे केवल एक बात का भय है कि यदि तुम्हारी योजना असफल हुई, तो रक्षा का यह एक स्थान भी हाथ से निकल जायगा।'

'रक्षा का! इस बन्दी-गृह को आप रक्षा का स्थान बतलाती हैं। मेरे लिये तो सबसे बड़ी रक्षा का साधन घोड़ा, तलवार और रण-क्षेत्र है।'

'मैं भी मानती हूं और यदि काफी तादाद में सरदार लोग सहायता के लिये आ गये, तो सब काम बन जायगा। परन्तु यदि ऐसा न हुआ, तो प्रलय की आशंका है।'

'जरा भीं नहीं। दृढ़ निश्चय के साथ जो काम किया जाता है, वह कभी असफल नहीं होता, थोड़ी देर के लिये मान लीजिये, असफल भी

हो गये, तो इस अवस्था की अपेक्षा स्वतन्त्र विचरण फिर भी बहुत अच्छा होगा।'

'तो यहाँ लौटकर नहीं आवेंगीं, यह निश्चित है।'

'असफलता का कोई कारण नहीं मालूम होता। असफलता ही हुई, तो इस जीवन से मरण अच्छा। आप किसी बात से डरती हैं ?'

बड़ी रानी ने निश्चय पूर्ण स्वर में कहा—'मुझे कोई डर नहीं, मैं डरती किसी से भी नहीं। परन्तु यह कहती हूं कि जो कुछ करो, सोच-समझकर।'

छोटी रानी अधिक निश्चय पूर्ण स्वर में बोलीं—'बिलकुल सोच समझ लिया है। रामदयाल अपने पक्ष के सरदारों से मिल चुका है। वे लोग नये राजा से असन्तुष्ट हैं, परन्तु जब तक हम लोग महलों में बन्द हैं, तब तक वे लोग अपनी निज की प्रेरणा से कुछ नहीं कर सकते। बाहर निकल पड़ते ही ठठ के ठठ सरदार आ पहुंचेंगे।'

'यहाँ से चलकर ठहरोगी कहाँ ?' बड़ी रानी ने ज़रा संकोच के साथ पूछा।

'कहीं भी, दलीपनगर के बाहर कहीं भी। सिंह की गुफा में, नदी की तली में, पहाड़ के शिखर पर, कहीं भी।' छोटी रानी ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया—'हमारे स्वामिधर्मी सरदार कहीं भी हमारी सहायता के लिये आ सकते हैं।'

बड़ी रानी ने प्रतिवाद करते हुये कुछ रुखाई के साथ कहा—'मैं इस तरह की यात्रा के प्रस्ताव से सहमत नहीं हो सकती। व्यर्थ मारे-मारे फिरने से यहीं अच्छे।'

छोटी रानी तुरन्त रुख बदलकर बोलीं—'रामनगर के राव के यहां ठिकाना रहेगा। वहां से अलीमर्दान की भी सहायता सहज हो जायगी। सिंहगढ़ पर चढ़ाई उसी ओर से अच्छी तरह हो सकती है।'

छोटी रानी के ढले हुये स्वर ने बड़ी रानी को नरम कर दिया। कहा—'रामनगर के राव के पास बड़ा बल तो नहीं, परन्तु स्थान-रक्षा

के विचार से अच्छा है। अलीमर्दान की सहायता बिना काम न चलेगा ?'

'वह हमारा राखी-बन्द भाई है।' छोटी रानी ने उत्तर दिया—'उसकी ओर से जी में कोई खटका मत कीजिये। किसी भी मन्दिर के विध्वन्स करने की कोई इच्छा उसके मन में नहीं है।'

इसी समय एक दासी ने बड़ी रानी को ख़बर दी कि दीवान जनार्दन आशीर्वाद देने के लिये आना चाहते हैं।

बड़ी रानी उसका नाम सुनते ही चौंक पड़ीं! छोटी रानी ने कहा—'इस समय इसका यहाँ आना बुरा हुआ। न मालूम किस टोह को लगाकर आया है।'

छोटी ने आश्चर्य प्रकट किया—'बुरा हुआ! क्या वह इस क़ैदखाने का दारोग़ा है, जो आप भयभीत सी मालूम पड़ती हैं ? क्या बुरा हुआ ?'

वड़ी रानी को चोट-सी लगी। उन्होंने दासी से पूछा—'और क्या नहीं कहते थे ?'

छोटी रानी की ओर देखकर दासी ने जवाब दिया—'और क्या कहते थे, महाराज !'

छोटी रानी ने कड़ाई के साथ पूछा—'क्यों डरती है ? बोल, कुछ कहते थे !'

वड़ी रानी ने समाधान के स्वर में कहा—'डर मत। कह, क्या कहते थे ?'

उसने उत्तर दिया—'केवल यह पूछते थे कि छोटी महारानी भी यहाँ हैं या नहीं ?'

'तूने क्या कहा ?' बड़ी ने पूछा।

छोटी रानी बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये हुये बोलीं—'इसने कह दिया होगा कि हैं। मैं कोई बाघिनी या तेंदुनी तो हूं नहीं, जो इसी समय दीवान जी को फाड़ डालूंगी ?'

दासी ने उत्तर दिया—'नहीं महाराज, मैंने कहा था कि नहीं हैं।' छोटी रानी ने कड़ककर प्रश्न किया—'क्यों ? तूने क्यों यह भूठ बोला ?'

दासी काँपने लगी।

बड़ी रानी ने शाँति स्थापित करने के प्रयोजन से कहा—'यह बेचारी साधारण स्त्री है। मुंह से निकल गया होगा। कोई बुराई मत मानो। वह मुझे चाहती है और मेरा इसपर स्नेह है। यहां की और स्त्रियां तो दुष्ट हैं।'

छोटी रानी कुछ नहीं बोलीं। कुछ सोचती रहीं। बड़ी रानी ने कहा—'तुम ज़रा छिपकर देखो न, जनार्दन क्या कहता है, किस प्रयोजन से आया है?'

'व्यर्थ है।' छोटी रानी ने उत्तर दिया—'वह इस बात को जानता है कि आप मेरे ऊपर कृपा करती हैं, इसलिये मेरे छिपकर सुनने लायक कोई बात न कहेगा।'

'तो भी क्या हर्ज है।' बड़ी रानी ने कहा—'सुन लो। तमाशा ही सही।'

छोटी रानी बड़ी को प्रसन्न करने की नियत से बोलीं—'छिपने की क्या ज़रूरत है। मैं एक कोने में बैठी जाती हूं। डचोढ़ी के बाहर से वह बातचीत करेगा। में अपने को प्रगट न होने दूंगी। आप उसे बुलवा लें।'

बड़ी रानी ने जनार्दन को लिवा लाने के लिये संकेत किया और छोटी रानी से कहा—'वह उन स्त्रियों में से है, जो मेरे लिये अपना सिर कटाने को तैयार रहती है।' इस पर छोटी रानी केवल मुस्कराईं। कोई मंतव्य प्रकट नहीं किया।

थोड़ी देर में जनार्दन आगया। आशीर्वाद और कुशल-मङ्गल पूछने के पश्चात् उस दासी द्वारा जनार्दन और बड़ी रानी का वार्तालाप होनेलगा।

जनार्दन ने पूछा—'छोटी महारानी न मालूम मुझसे क्यों रुष्ट हैं? महाराज इस बात को जानते हैं कि मैं उनका कोई अहित-चिंतन नहीं करता।'

बड़ी रानी ने जवाब दिलवाया—'इस बात से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। आप इस विषय पर उन्हीं से कहें सुनें।'

'मैं आपकी सहायता चाहता हूं। उन्हें इस राज्य में जो स्थान पसन्द हो, उसमें आनन्द-पूर्वक रहें, जिससे इस लाँछन से बचूं कि दलीपनगर में मैंने उन्हें बरबस रोक रक्खा है।'

'इसे तो वह अवश्य पसन्द करेंगीं।' और जवाब देने वाली ने रानीं की ओर से कहा—'बड़ी महारानी भी कुछ दिनों के लिये बाहर यात्रा कर आवेंगी।'

जनार्दन को यह प्रस्ताव पसन्द न आया। बोला—'आजकल अवस्था ज़रा खराब हो रही है और वैसे भी यह स्थान तो आपको बहुत प्यारा रहा है। आपने कभी शिकायत नहीं की कि—'

बीच में टोक दिया गया। बड़ी रानी की तरफ़ से कहा गया—'ज़रूर जाऊँगी। क़ैदी नहीं हैं, जो उन्हें तो जाने दिया जाय और इन्हें रोक रक्खा जाय।'

जनार्दन बोला—'मैं महाराज से अनुमति के लिये कहूँगा। परन्तु जिस काम से मैं आया था, वह यदि यहाँ नहीं हो सकती, तो छोटी रानी के ही पास जाकर अपने अपराधों की क्षमा मागूँगा।'

'वहाँ आने की कोई आवश्यकता नहीं।' छोटी रानी ने दासी का आश्रय लिये बिना ही पर्दे के भीतर से कहा—'हम दोनों अत्याचार पीड़ित स्त्रियाँ एक स्थान में शांति के साथ रहना चाहती हैं, वह भी तुम्हें सहन नहीं। हमारा राज्य-पाट ले लिया और दोनों को एक दूसरे से अलग करके क्या किसी एकांत गढ़ी में हमारा सिर कटवाओगे?'

जनार्दन चौंका नहीं। थोड़ी देर तक स्तब्ध, निश्चल बना रहा। कुछ ही क्षण पश्चात् बोला—'मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं कही, जिससे आपके इस निष्कर्ष की पुष्टि होती हो। आपसे क्षमा-प्रार्थना करने की ही बात कह रहा था। वह न रुची। जाता हूँ।'

यदि ठहरता, तो उसे और प्रलाप भी सुनना पड़ता।

छोटी रानी ने सन्नाटे में आई हुई बड़ी रानी से कहा—'देख लो इसकी चाल! हम लोगों को अलग करना चाहता है और अलग कर के हमारा नाश। हम लोग अलग नहीं हो सकतीं।'

बड़ी रानी ने जोश के साथ कहा—'कभी नहीं। मैं तुम्हें कदापि न छोड़ूंगी।'

(४०)

जनार्दन दोनों रानियों को एक दूसरे से अलहदा करना चाहता था। इसी प्रयोजन से वहाँ गया भी था, परन्तु अपनी साधारण सावधानी से काम न लेने के कारण और छोटी रानी के ताड़ लेने से उसका मनोरथ निष्फल हो गया। छोटी रानी के कुवाक्य का उसे बहुत थोड़ी देर ध्यान रहा होगा। उसके मन में इस बात की बहुत ग्लानि थी कि चतुराई के साथ बातचीत नहीं की।

राजा के पास गया। चतुर मन्त्री के लिये समय से बढ़कर मूल्यवान और कोई चीज नही हो सकती थी। इसलिये उसने राजा से तुरन्त भेंट की। दोनों रानियों की परस्पर बढ़ती हुई घनिष्ठता में किसी भयंकर विपद की विभीषिका, किसी विकट षड्यंत्र की जनन-शक्ति की आशंका का चित्र जनार्दन ने खींचा।

राजा ने जरा खीझकर कहा—'तब क्या करूँ? जब तक कोई बड़ा अपराध सिद्ध न हो जाय, दण्ड तो दिया नहीं जा सकता।'

राजा की खिझलाहट से जरा भी न घबराकर जनार्दन बोला,—न तो किसी अपराध के सिद्ध करने की ज़रूरत है और न किसी दण्ड के विधान की। इन्हें तो अन्नदाता दो अलग-अलग स्थानों में सम्मानपूर्वक रख दें।'

'इससे वैमनस्य और बढ़ेगा। जो सरदार अभी पीछे-पीछे और शायद दबी जबान यह कहते हैं कि हम लोगों ने रानियों को महल में क़ैद कर रक्खा है, वे भड़ककर खुल्लम-खुल्ला बुराई करेंगे। रानियों को यहाँ से हटाकर मैं अपने लिये व्यर्थ का विरोध नहीं खड़ा करना चाहता था।'

'अन्नदाता, वे यहाँ बैठी-बैठी सम्मिलित शक्ति से राज्य को उलटने-पलटने की तरकीबें सोचा करती हैं, सरदारों को अराजकता के लिये उभाड़ा करती हैं। एक दूसरे से दूर रहने पर दोनों निर्बल हो जायँगी।'

'मैं इस बात को नहीं मानता।'

'जैसी महाराज की मर्जी हो, परन्तु छोटी रानी की हरकतों के मारे मेरी तो नाक में दम आ गया है। यह तो अन्नदाता को मालूम ही है कि मेरा सिर काटने या कटा लेने का रानी ने प्रण ठान रक्खा है—'

राजा ने हँसकर जनार्दन की बात काट दी। कहा—'डरो मत। तुम्हारी उम्र अभी बहुत है। चाहे ज्योतिषियों से पूछ लेना।' फिर एक क्षण बाद गम्भीर होकर राजा बोला—'शर्माजी, तुम्हें तलवार चलाना सीखना चाहिये था। राजनीति के गणित लगाते लगाते बहुत से व्यर्थ भय के भूत तुम्हें सताने लगे हैं। स्त्रियाँ बात काटती हैं, सिर नहीं काटतीं। अपना काम-काज देखो। राज्य की बहुत सी समस्यायें तुम्हें उलझाने के लिये यों ही बहुत काफी हैं। इधर का खयाल जरा कम कर दो। कुछ मेरा भी भरोसा करो।'

विनीत भाव से दीवान ने कहा—'महाराज का भरोसा न होता तो एक घड़ी भी बचना क़रीब-करीब असम्भव था, परन्तु—'

'किन्तु-परंतु कुछ नहीं।' राजा ने कहा। फिर हँसकर बोला—'तुम्हारा सिर सही-सलामत है घबराओ नहीं, मौज करो।'

जनार्दन चला आया। अकेले में एक आह भरकर मन में बोला—'अब तो मेरा सिर राजा को इतना सस्ता मालूम पड़ना ही चाहिये।'

[४५]

अलीमर्दान अपनी फौज लिये भांडेर में पड़ा था। दलीपनगर-दमन की प्रवल आकांक्षा उसके मन में थी। परन्तु दिल्ली की अस्थिर अवस्था और इलाहाबाद के सैयद भाइयों की प्रवल हलचल उसे उग्र रूप धारण करने से वर्जित कर रही थी। कालेखाँ पालर की पुजारिन की बीच-बीच में काफ़ी याद दिला देता था। उस विषय के लिये भी अलीमर्दान के हृदय में एक बड़ा-सा लालसा-युक्त स्थान था। परन्तु इस सम्बन्ध में भी उसकी इच्छाओं पर एक बड़ा बन्धन कसा हुआ था। वह यह था कि अलीमर्दान और उस-सरीखे अन्य मनचले सूबेदार, जो सिर से दिल्ली का बोझ हल्का होते ही, स्वतंत्र हो जाने के मनोहर स्वप्नों में डूबे रहते थे, अपने सूबे की और पड़ोस की हिन्दू जनता पर साधनों और सैनिकों के लिये बहुत निर्भर रहते थे, इसलिये यथासम्भव उसे व्यर्थ नहीं चिढ़ाते-छेड़तें थे। जिस समय दिल्ली में कमजोर नरेश और प्रान्तों में महत्त्वाकांक्षी सूबेदार होते थे, उस समय यह बात बहुत स्पष्ट रूप में दिखलाई पड़ती थी।

धीरे-धीरे भांडेर में भी यह खबर पहुँच गई कि विराटा में एक देहधारिणी देवी हैं, जो अपने वरदानों से निस्सहायों को समर्थ कर देती हैं। यदि अलीमर्दान चढ़ाई के साथ अनुसंधान करता, तो पालर और विराटा की देवी की समानता उसे कदाचित् शीघ्र मालूम हो जाती। उसने इस विषय को किसी शीघ्र आने वाले अनुकूल समय की आशा से प्रेरित होकर स्थगित कर दिया और केवल ऐसी साधारण ढूँढ़-खोज की, जो आसानी से दूसरों पर प्रकट न हो पाय, जारी रक्खी। इस साधारण ढूँढ़-खोज से शीघ्र पता इसलिये और न लगा कि लोग सहज और स्पष्ट का शीघ्र विश्वास नहीं करते, दूर के कारणों का आविष्कार करने में निकट की वस्तुस्थिति दृष्टि से लोप होने लगती है। विराटा में पालर की सुन्दरी-भांडेर के इतने नज़दीक! असंभव!! अनुसंधानकर्ता उस देवी की उपस्थिति को भांडेर के इतने पास भान नहीं कर

सकते थे। इसके अतिरिक्त अलीमर्दान की इस विषय की ओर कोई प्रबल रुचि प्रकट न होती देखकर भी उन लोगों ने ढूँढ़-खोज का सिलसिला ढीला रक्खा।

भांडेर के आस-पास के राजा और राव अलीमर्दान की भांडेर में उपस्थिति देखकर ज़रा चौकन्ने थे, किसी भी प्रबल व्यक्ति का अपने पड़ोस में ज़रा देर तक टिका रहना देखकर उन्हें मन-ही-मन अखरता था। उनका अपना स्वच्छन्द वन-पर्वत किसी अस्पष्ट आतंक के विरुद्ध-सा दिखाई पड़ता था और वे उससे शीघ्र छुटकारा पाने के लिये व्याकुल से थे। उदाहरणों की उनके सामने कमी न थी।

रामनगर का राव पतराखन इस बीच में कई बार भांडेर गया-आया। वह यह बात जानना चाहता था कि अलीमर्दान क्यों यहाँ पड़ा हुआ है और कब तक इस तरह पड़ा रहेगा। साथ ही वह अलीमर्दान को मौका मिलने पर यह विश्वास दिलाना चाहता था कि भांडेर में और अधिक ठहरना बेकार है। एक दिन अलीमर्दान से अकेले में बात-चीत हुई। अलीमर्दान ने पूछा—'सुना है राव साहब, आपके पड़ोस में देवी का कोई अवतार हुआ है।'

'जी हाँ। कोई नई बात नही है, हमारे धर्म में ऐसा होता रहता है।'

'कब हुआ था?'

'बरसें हो गई हैं। हमेशा से उसकी बाबत सुनता आया हूँ।'

'हाँ साहब, अपने-अपने मज़हब की बात है। मुझे उसमें दखल देने कीं कोई जरूरत नहीं है। वैसे ही पूछा है।'

परन्तु बिराटा लौट आने के कई रोज़ पीछे भी पतराखन ने सुना कि अलीमर्दान भांडेर में ही है।

[४६]

संध्या हो चुकी थी। रामनगर की गढ़ी के फाटक वंद होने में अधिक विलंब न था। पहरेवालों ने फाटकों को अधमुँदा रख छोड़ा था। उनका कोई साथी गाँव में तंबाकू लेने गया था। इतने में गढ़ी के नीचे, जो बेतवा-किनारे एक ऊंची टौरिया पर बनी थीं, दस-बारह घुड़सवार आकर रुक गये। और सवार तो वहीं रहे, एक उनमें से फाटक पर आया। पहरेवाले ने फाटक को जरा और खोलकर पूछा—'आप कौन हैं ?'

'दलीपनगर से आ रहा हूँ। महारानी और कुछ सरदार नीचे खड़े हैं, बहुत शीघ्र और आवश्यक काम से मिलना है।' आगंतुक ने उत्तर दिया।

पहरेवाले ने नम्रता-पूर्वक कहा— आपका नाम ?'

'राव साहब को मेरा नाम रामदयाल बतला देना।' उत्तर मिला।

पहरेवाला भीतर गया। राव पतराखन आ गया। अँधेरा था, नहीं तो रामदयाल ने देख लिया होता कि पतराखन के चेहरे पर इस आगमन के कारण प्रसन्नता के कोई चिह्न न थे। रामदयाल से प्रयास-पूर्वक मीठे स्वर में बोला—'महारानी को ऐसे समय यहाँ आने की क्या आवश्यकता पड़ी ?'

रामदयाल ने कहा –'कालपी के नवाब अलीमर्दान को कर्तव्य-पथ पर सजग करने के लिये आई हैं। दलीपनगर की दूरी से यह काम नहीं बन सकता था। इस समय नवाब साहब भांडेर में हैं। यहाँ से सब काम ठीक हो जायगा।'

पतराखन ने पूछा—'महारानी कहाँ हैं ?'

रामदयाल ने इशारे से वतला दिया।

कुछ सोचता विचारता पतराखन गढ़ी से उतरा और नीचे से दलीपनगर के सवारों को गढ़ी पर लिवा लाया। कुशल-मंगल के बाद जब सब लोगों को डेरा दे दिया, तब रामदयाल से बातचीत हुई।

पतराखन ने कहा—'अब की बार बड़ी रानी ने भी छोटी रानी का साथ दे दिया।'

रामदयाल ने जवाब दिया—'साथ तो वह सदा से हैं, परन्तु कुछ लोगों ने बीच में मनमुटाव खड़ा कर दिया था।'

'परन्तु बड़ी रानी के साथ हो जाने पर भी फ़ौज-भीड़ तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ती। इतने आदमियों से देवीसिंह का क्या बिगड़ेगा ?'

'ये सब सरदार हैं। इनके साथ की सेना पीछे है और फिर नवाब साहब की मदद होगी। आप भी सहायता करेंगे ?'

'सो तो है ही। इसमें संदेह ही क्या है ? यदि नवाब साहब ने सहायता कर दी, तो बहुत काम बनने की आशा है। मैं भी जो कुछ सहायता बनेगी, करूँगा ही। बिराटा का दाँगी भी अपने भाईबन्दों को लायेगा। आजकल उसे ज़रा घमंड हो गया है।'

'किस बात का ?'

'अपनी संख्या का। उसके गाँव में देवी का अवतार हुआ है। उसका भी उसे बहुत भरोसा है।'

'देवी का अवतार ! हाँ, हो सकता है। होता ही रहता है। उसका पालर में हुआ था, परन्तु—'

'परन्तु क्या ? सुनते हैं, वही यहाँ चली आई हैं। एक दिन अलीमर्दान ने मुझसे पूछा था। लोग कहते थे, उनके कारण ही देवी को पालर से भागना पड़ा। यह सब ग़लत है। नवाब कहता था कि अवतार सब क़ौमों में होते हैं और उसे किसी के धर्म में दखल देने की ज़रूरत नहीं है और मैं इन विषयों पर बहुत कम बहस करता हूँ।'

'नवाब साहब कहते थे !' रामदयाल ने प्रकट होते हुये आश्चर्य को रोककर कहा—'ज़रूर कहते होंगे। वह तो बड़े उदार पुरुष हैं। उन्होंने पालर में जाकर देवी की पूजा की थी। मूर्तियों को छुआ तक नहीं, तोड़ने की तो बात क्या।'

किसी कल्पना से विकल पतराखन बोला—'हमारी गढ़ी की बहुत दिनों से मरम्मत नहीं हुई है। दीवारें गोलाबारी नहीं सह सकतीं। फाटक भी नये चढ़वाने हैं, गोला-बारूद की भी कमी है। इस गढ़ी में होकर युद्ध करना बिलकुल व्यर्थ होगा। वैसे मैं और मेरे सिपाही सेवा के लिये तैयार हैं।'

रामदयाल समझ गया। बोला—'यहाँ से युद्ध कदापि न होगा। आप गढ़ी की मरम्मत चाहे कल करा लें, चाहे दस वर्ष बाद। यह स्थान छिपा हुआ है और सुरक्षित है, इसलिये महारानी को पसन्द आया—'

पतराखन ने रोककर कहा—'सो तो उनका घर है, चम्पतराय कई बार ठहरे हैं, परन्तु ठहरे वह थोड़े-थोड़े दिन ही हैं। खैर, उसकी कोई बात नहीं है। विराटा की गढ़ी देखी है?'

'नहीं तो।'

'बहुत सुरक्षित है। दाँगी को उसी का तो बड़ा गर्व है।'

'मैं कल ही जाकर देखूँगा।'

'परन्तु मेरी ओर से वहाँ कुछ मत कहना।'

'नहीं, मैं तो क़िला देखने और देवी के दर्शनों को जाऊँगा, किसी से वहाँ बातचीत करने का क्या काम? इसके पश्चात परसों नवाब साहब के पास जाऊँगा। देवीसिंह से जो लड़ाई होगी, उसमें महारानी आपसे बहुत आशा करती हैं और आपको पुरस्कार भी बहुत देंगी।'

पतराखन ने उत्तर दिया—'वैसे तो मैं किसी का दबा हुआ नहीं हूं। दलीपनगर के राजा से कोई सम्बन्ध नहीं। कालपी के नवाब और दिल्ली के बादशाह से हमारा ताल्लुक है, इसलिये जिस पक्ष में नवाब साहब होंगे, उसी का समर्थन मैं भी करूँगा।'

पतराखन को रामदयाल रानियों के डेरे पर ले गया। दोनों आड़-ओट से वार्तालाप करने लगीं।

छोटी रानी ने कहा—'बड़ी महारानी ने भी अबकी बार हम लोगों का साथ दिया है। चोर-डाकू एक अधर्मी ब्राह्मण की सहायता से हमारे

पुरखों के सिंहासन पर जा बैठा है। कुछ दिनों तो वह बड़ी महारानी और क्षत्रिय सरदारों को भुलावे में डाले रहा, परन्तु अन्त में भंडा-फोड़ हो गया। अबकी बार बहुत-से सामन्त हमारे साथ हैं। आशा है, विजय प्राप्त होगी। आपको हम धन-धान्य और जागीर से संतुष्ट करेंगे। टेढ़े समय में जो हमारी सहायता करेगा, उसे सीधे समय में हम कभी नहीं भुला सकेंगी।

पतराखन ने बड़ी रानी के सिसकने का शब्द सुना।

बोला—'मुझसे शक्ति-भर जितनी सहायता बनेगी, करूँगा। यह टूटी-फूटी सी गढ़ी आप अपनी समझें।'

बड़ी रानी ने करुण कण्ठ से कहा—'राव साहब, हम आपको इसका पुरस्कार देंगे।'

राव पतराखन ने अदृष्ट को, अनिवार्य को सिर-माथे लेकर सोचा—'यदि इन दो निस्सहाय स्त्रियों की रक्षा में इस गढ़ी को धूल में मिलाना पड़ा, तो कुछ हर्ज नहीं। किसी और गढ़ी को ढूँढ़ लूँगा।'

[४७]

कुञ्जरसिंह मुसावली वाले कृषक और चरवाहे के साथ बिराटा की ओर पैदल गया। वह अपने को प्रकट नहीं करना चाहता था। मार्ग के भरकों और वृक्षों के समूहों में होकर जाते हुए उसने सोचा—'यदि वही हैं, तो शायद पहचान लें। न पहचानें, तो बुराई ही क्या है? जिसे संसार ने करीब-करीब त्याग दिया है, उसे देवता क्यों तिरस्कृत करने चला? न पहचाने जाने में एक सुख भी है। खोद-खोदकर लोग कुशल-वार्ता न पूछेंगे और उन्हें व्यथा न होगी। शांति-पूर्वक उनके दर्शन कर लूंगा। परन्तु यदि उन्होंने पहचान भी लिया, तो उन्हें व्यथा क्यों होने लगी? मैं उनका कौन हूं। केवल भक्त और फिर थोड़े से पलों का परिचय।'

कृषक और चरवाहे ने बातचीत करना चाही। कुञ्जरसिंह अन्य-मनस्क था। प्रोत्साहन न पाकर वे लोग आपस में ही बातचीत करते चले।

थोड़ी देर में नदी पार करके टापू के सिर पर स्थित मन्दिर में पहुंच गये। वह देवी के दर्शनों का खास समय न था। कृषक और उसके साथी को घर लौटना था, परन्तु कुञ्जरसिंह ने कहा—'क्यों जल्दी करते हो? यदि किसी ने मना कर दिया, तो अपना-सा मुंह लेकर रह जायँगे और ठहरना तो पड़ेगा ही।'

कृषक बोला—'कए सें का बिगरत? जो दर्सन हो जैएँ, तो अच्छोई है और न हूं हैं, तो आप ठैर जाइयो, हम भोर फिर आ जैएँ।' कुञ्जर के निषेध की परवा न करके कृषक आगे बढ़ा। गोमती दिखलाई पड़ी। कृषक ने विनय के साथ कहा—'पालर सें जे कोऊ ठाकुर आए हैं, दर्सन करन चाउत हैं। का अबै दर्सन न हुईएँ? कोई बहुत बड़े आदमी हैं।'

गोमती पालर का नाम सुनकर जरा पास आई। कुञ्जरसिंह को पहचानने की चेष्टा की, न पहचान पाया।

कृषक से बोली—'यह तो पालर के नहीं जान पड़ते। किसी और स्थान के हैं। मैं तो पालर के हर एक व्यक्ति को पहचानती हूं।'

'परन्तु वे तो अपुन खों पालर को बताउत्ते।'

चरवाहे बालक ने कहा—'पालर के तो आहैं ई। झूठीं थोरक सी बोलत। हमसैं कही, हमाए दाऊ सैं कही।

इस चर्चा ने कुमुद को भी उस स्थान पर आकृष्ट कर लिया। एक ओर से उसने आगन्तुकों को बारी-बारी से देखा। कुञ्जरसिंह को उसने कई बार बारीकी से देखा। वहाँ से हटकर चली गई। नरपतिसिंह को भीतर से भेजा।

उसने आकर अधिकार के स्वर में कहा—'क्या है ? आप लोग क्या चाहते हैं ?'

'दर्शन।' क्षीण स्वर में कुञ्जर ने उत्तर दिया।

'हो जायेंगे।' नरपति ने उसी स्वर में कहा—'ज़रा ठहरिये। हाथ-पैर धो लीजिये। आप पालर से आये हैं ?'

'जी हाँ।' कुञ्जर ने बहुत क्षीण स्वर में उत्तर दिया।

नरपति—'आपको पालर में तो मैंने कभी नहीं देखा। आप वहाँ के रहने वाले नहीं हैं !'

कुञ्जरसिंह—'रहने वाला तो वहाँ का नहीं हूं, परन्तु इस समय अर्थात् कुछ दिन हुए, तब—आया वहीं से था।'

नरपति ने पास आकर कुञ्जरसिंह को घूरा। कुछ सोचकर बोला—'आपको कभी कहीं देखा अवश्य है, परन्तु याद नहीं पड़ता। पालर के ऊपर कालपी के नवाब के आक्रमण के समय आप दलीपनगर की सेना में या ऐसे ही किसी मेले में उससे पहले कभी आये हैं।'

'आप ठीक कहते हैं।' कुञ्जर ने जरा सम्भलकर कहा—'मैं एक मेले में पालर गया था।'

नरपति ने अपनी स्मरण-शक्ति को ज़रा और दबाकर पूछा—'आप कालपी के सैनिकों के उपद्रव के समय पालर में नहीं थे। मुझे आपकी आकृति खूब याद आ रही है।'

कुञ्जरसिंह ने टौरिया से नीचे बहती हुई वेतवा की धारा और उस पार के जंगलों की हरियाली को देखते हुये कहा—'मुझे याद नहीं पड़ता। शायद आया होऊँ।'

कुमुद ने भी यह वार्तालाप सुनी। गोमती जरा उत्सुकता के साथ बोली—'आप दलीपनगर के रहने वाले होंगे।'

'हाँ।' कहकर कुञ्जर ने सोचा, प्रश्नों की समाप्ति हो जायगी और हाथ-पाँव धोने के लिये नदी की ओर टौरिया से नीचे उतर गया। नरपतिसिंह सिर खुजलाता हुआ भीतर चला गया। गोमती कृषक से बातचीत करने लगी। बोली—'तुम इन ठाकुर को पहचानते हो?'

उसने उत्तर दिया—'मैं तो नईं चीनत। मोसें तो कहत्तो कै पालर के आहैं।'

'तुमसे इनसे क्या सम्बन्ध?'

'मोरे इतैं डेरा डारौ है।'

'तब तुम्हें इससे ज्यादा जानने की अटक ही क्या पड़ी? पालर से आये, इसलिये पालर का बतलाया, परन्तु हैं यह असल में दलीपनगर के रहने वाले। दलीपनगर का कुछ हाल इन्होंने बतलाया था?'

'हमें तो अपने काम से उकासई नई मिलत।'

और अधिक बातचीत करना उचित न समझकर गोमती कुमुद के पास चली गई। कुमुद कुछ व्यग्रता के साथ मन्दिर को साफ़ कर रही थी। पहले की अपेक्षा दोनों में अब संबंध कुछ अधिक घनिष्ठ हो गया था।

बोली—'दलीपनगर से एक ठाकुर आये हैं।'

किसी भाव से दीप्त होकर कुमुद का चेहरा एक क्षण के लिये रञ्जित हो गया। गोमती की ओर बिना देखे ही उसने कहा—'हाँ, आये होंगे। नित्य ही लोग आया करते हैं।'

'इनसे वहाँ का कुछ हाल पूछूँ?'

'पूछने में तुम्हें लाज नहीं आवेगी ? और फिर इसका क्या निश्चय कि यह ठाकुर कोई संतोष-प्रद वृत्तांत भी तुम्हें सुना सकेंगे या नहीं।'

'तब क्या करूँ। दलीपनगर का तो बहुत दिनों से कोई यहाँ आया ही नहीं। यह एक आये हैं, सो प्रश्न करने में मुझे भी संकोच मालूम होता है। इसलिये आप से पूछा।'

'मैं क्या कह सकती हूं ?'

'पूछूँ कुछ हाल ?'

'तुम्हारा मन न मानता हो, तो पूछ देखो; परन्तु मुझे विश्वास है, तुम्हें कोई सन्तोष-जनक उत्तर न मिलेगा। इस समय वह हारे-थके भी होंगे। यदि आज यहां बस जायें, तो सबेरे निश्चित होकर पूछ लेना; नहीं तो पिताजी द्वारा कहो, तो मैं बहुत-सा हाल पुछवा लूं ?'

गोमती सहमत हो गई।

थोड़े समय के पीछे हाथ-पाँव धोकर कुञ्जरसिंह नदी से आ गया। उसने नरपतिसिंह से दर्शनों की इच्छा प्रकट की।

नरपतिसिंह ने एकाएक कहा—'मैंने पहिचान लिया।'

कुञ्जरसिंह का बेतवा के जल से धुला हुआ मुंह जरा धूमरा पड़ गया। नरपति के मुंह की ओर देखने लगा।

नरपति ने कहा—'आप उस दिन पालर के दंगा करने वालों में थे। अवश्य थे। वह दिन भुलाये नहीं भूलता। न वह दंगा होता और न हमें इतनी विपद झेलनी पड़ती। परन्तु, परन्तु—'

नरपति सोचने लगा। एक क्षण बाद बोला—'परन्तु एक लम्बा पुष्ट और था, सफेद दाढ़ी-मूछ वाला उसी ने सब गोल-माल किया था।'

कुमुद और इस वार्तालाप के बीच में केवल एक छोटी-सी दीवार थी। कुमुद ने तुरन्त पुकारकर कहा—'यहाँ आइये।'

कुमुद की पुकार के उत्तर में नरपति 'हाँ' कहते हुये कुञ्जर से बोला—'आप शायद नहीं थे, शायद कोई और रहा हो; परन्तु वह बूढ़ा अवश्य था।'

कुञ्जरसिंह कुछ उत्तर देना चाहता था, परन्तु नरपति के संदेह का निवारण करना इस समय उसका उद्देश्य न था, इसलिये ज़रा-सा खाँस कर चुप रहा।

नरपति भीतर से लौटकर तुरन्त आ गया। बोला—'चलिये, दर्शन कर लीजिये।'

कृषक और चरवाहा भी हाथ-पैर धोकर आ गये थे, परन्तु उन्हें नरपति ने टोका। कहा—'तुम लोग फिर दर्शन कर लेना। यह समय तुम्हारे लिये नहीं है।'

कुञ्जर लौट पड़ा। बोला—'उन्हें भी आने दीजिये। इन बेचारों को इसी समय लौट जाना है। मैं तो दर्शनों के लिये रुक भी सकता हूं।'

कुञ्जर का प्रतिवाद शायद बेकार जाता, परन्तु कृषक और चरवाहा मन्दिर में घँस पड़े। नरपति ने उन्हें रोक न पाया।

देवी की मूर्ति के पास एक किनारे पर कुमुद बैठी थी। वही मुख, वही रूप। आज केवल कुछ अधिक आतंकमय दिखलाई पड़ा। भौहों के बीच में सिन्दूर और भस्म का टीका अधिक गहरा था।

पुजारिन को एक बार चंचल दृष्टि से कुञ्जर ने देखा, फिर देवी को साष्ठांग प्रणाम करके मन-ही-मन कुछ कहता रहा।

जब विभूति-प्रसाद की बारी आई, तब फिर कुमुद की ओर देखा। वह पीली पड़ गई थी।

काँपते हुये हाथ से कुमुद ने फूल और भस्म कुञ्जरसिंह को दी। वह अँगूठी उसकी उङ्गली में अब भी थी। कुंजर ने नीची दृष्टि किये हुये ही काँपते कंठ से कहा—'वरदान मिले। बहुत दुर्गति हो चुकी है।'

कुमुद देवी की ओर देखने लगी, कुछ न बोली।

कुञ्जर ने फिर कहा—'देवी के वरदान के बिना मेरा जीवन असंभव है।' कुञ्जर का गला और अधिक काँपा।

'देवी जो कुछ करेंगी, सब शुभ करेंगी।' कुमुद ने कुंजर की ओर दृष्टिपात करने का प्रयत्न करते हुये उत्तर दिया।

इतने में नरपति बोला—'आप पालर क्या अभी चले जायँगे ?'

कुञ्जर के मन में कोई जल्दी न थी। बोला—'अभी तो न जाऊँगा और कुछ ठीक नहीं, कहाँ जाऊँ।'

'तो क्या आप दलीपनगर जायँगे ?' नरपति ने पूछा।

'वहाँ का भी कुछ ठीक नहीं।' कुञ्जर ने संयत् निःश्वास के साथ उत्तर दिया।

कुमुद अपने सहज स्वाभाविक धैर्य को पुनः प्राप्त-सा करके भर्राये कण्ठ से बोली—'इनके भोजनों का प्रवन्ध कर दीजिये।'

गोमती ने एक कोने से कहा—'और विश्राम का भी, क्योंकि लौट कर कल जायँगे, सन्ध्या होने वाली है।'

[४८]

मन्दिर का विस्तार थोड़े-से स्थान में था। उसकी कोठरियाँ भी छोटी-छोटी थीं। नरपति ने अपनी कोठरी में कुञ्जरसिंह को स्थान दिया। भोजन के उपरांत नरपति कुञ्जर के पास बैठ गया। दोनों एक दूसरे के साथ बातचीत करने के इच्छुक थे, परन्तु नरपति दिमाग़ के किसी दोष के कारण और कुंजर किसी संकोच के वश यह निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि चर्चा का आरम्भ किया किस तरह जाय।

इतने में पास ही कोठरी में गोमती ने ज़रा आह खींचकर कुमुद से कहा—'काकाजू को आज जल्दी नींद आ गई!'

नरपति ने सुन लिया। किसी कर्तव्य का स्मरण करके कुंजर से बोला—'मैं बड़ी देर से सोच रहा हूं कि आपको उस दंगे के अवसर पर पालर में देखा था या नहीं। आप थे या आपके साथ राजकुमार था। था कोई अवश्य। बहुमूल्य वस्तु देवी को भेंट की थी, परन्तु और याद नहीं पड़ता। दिन बहुत हो गये हैं। बूढ़ा हूं और देवी की रट के सिवा मन में अब कुछ उठता भी नहीं।'

'मैं क्या हूं।' कुंजर ने कहा—'इसे जानकर आप क्या करेंगे? किसी दिन मालूम हो जायगा। आपके लिये इतना जान लेना बहुत होगा कि आफ़तों का मारा हुआ हूं।'

'क्या आप राजकुमार हैं?' कुछ जोर से और एकाएक नरपति ने पूछा।

कुञ्जर ने बहुत धीरे से जवाब दिया—'सैनिक हूं। संसार का ठुकराया हुआ दरिद्र मनुष्य हूं और अधिक मत पूछिये।'

पास की कोठरी में लेटी या बैठी हुई उन दोनों स्त्रियों ने नरपति का प्रश्न तो सुन लिया, परन्तु शायद उत्तर न सुन पाया।

नरपति ने पूछा—'आप दलीपनगर के रहने वाले हैं?'

'जी हाँ।'

'वहाँ का राजा कौन है? सुनते हैं, कोई देवीसिंह राज्य करते हैं।'

'आपको मालूम तो है।'

'कैसा राजा है ?'

कुञ्जर चुप रहा।

'नरपति ने ज़िद करके पूछा—'कैसा राजा है ? प्रजा को कोई कष्ट तो नहीं देता ?'

'अभी तो सिंहासन को अपने पैरों के नीचे बनाये रखने के लिये ख़ून-ख़राबी करता है।'

'यह राज्य तो उन्हें महाराज नायकसिंह ने दिया था ?'

'बिलकुल झूठ बात है।'

नरपतिसिंह ने पांडित्य प्रदर्शित करते हुये कहा—'हमें भी ख्याल होता है कि महाराज ने राज्य न दिया होगा, क्योंकि उनके एक कुमार थे। उनका क्या हुआ ? आप क्या वह राजकुमार नहीं हैं ? सच-सच बतलाइये। आपको क़सम है।'

कुञ्जरसिंह ने एक क्षण सोचकर कहा—'नहीं, मैं इस समय वह नहीं हूं, परन्तु जो राजकुमार है, वह किसी समय प्रकट अवश्य होगा।'

नरपतिसिंह अपनी उसी धुन को जारी रखते हुये बोला—'राजकुमार बड़ा सुशील और होनहार था। मैंने उसके लिये देवी से प्रार्थना की थी। उस बेचारे को राज्य तब नहीं मिला, तो कभी-न-कभी मिलेगा।'

'स्वार्थियों की नीचता के कारण।' कुञ्जर ने उत्तर दिया—'दलीपनगर में जनार्दन शर्मा एक पापी है। उसके षड्यन्त्रों से देवीसिंह राजा बन बैठा है। वास्तविक राजकुमार वंचित हो गया है और रानियों की मूर्खता के कारण भी उसे नुक़सान पहुंचा है—'

नरपति ने टोककर कहा—'देवी की कृपा हुई, तो असली हक़दार को फिर राज्य मिलेगा और नीच, स्वार्थी, पापी लोग अपने किये का फल पावेंगे।'

गोमती को दूसरी कोठरी में बड़ी ज़ोर से खांसी आई।

उसकी खांसी के समाप्त होने पर कुञ्जर ने पूछा—'बिराटा के राजा के पास फ़ौज-फांटा कैसा है ?'

'अच्छा है।' नरपति ने उत्तर दिया—'रामनगर के राव साहब की अपेक्षा यह बहुत जन और धन-सम्पन्न हैं। वह अपने को छिपाते बहुत हैं, नहीं तो उनमें इतनी शक्ति है कि किसी भी राजा या नवाब का मुकाबला कर सकते हैं। हमारी जाति के वह गौरव हैं।'

कुञ्जर ने नरपति के जाति-गर्व को मन-ही-मन क्षमा करते हुये कहा—'यदि किसी समय दलीपनगर के राजकुमार उनसे मिलने आवें, तो अच्छी तरह मिलेंगे या नहीं ?'

'अवश्य।' नरपति ने उत्तर दिया—'राजा राजों के साथ बराबरी का ही बर्ताव करते हैं। आपसे उस राजकुमार से कोई सम्बन्ध है ?'

'जी हाँ।'

'क्या ?'

'मैं उनकी सेना का सेनापति रहा हूं।'

'वही तो, वही तो।' नरपति ने दम्भ के साथ कहा—'मेरी स्मरण-शक्ति ने धोखा नहीं खाया था। मुझे देखते ही विश्वास हो गया था कि आप राजकुमार या राजकुमार के साथी या दलीपनगर के कोई व्यक्ति अवश्य हैं।'

स्मरण-शक्ति का यह प्रमाण पाकर कुञ्जरसिंह को अपनी उस दशा में भी मन में हँसी आ गई। बोला—'राजकुमार आपके राजा से पीछे मिलेंगे, मैं उनसे पहले मिल लूंगा। आप कुछ सहायता करेंगे ?'

नरपति ने पूछा—'उस दंगे के दिन राजकुमार के साथ आप किस समय आये थे या शुरू से ही साथ थे ?'

कुञ्जर ने अँधेरी कोठरी में दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—'मैं शुरू से ही साथ था। आपको अवश्य याद होगा।'

कुञ्जरसिंह ने अपने पहले प्रश्न को फिर दुहराया—'आप राजकुमार की कुछ सहायता कर सकेंगे ?'

नरपति बोला—'अवश्य। मैं आपके कुमार के लिये देवी से प्रार्थना करूंगा और राजा सबदलसिंह से भी कहूंगा। अपने साथ आपको ले चलूंगा।'

[४६]

नरपति और कुंजर शायद जल्दी सो गये होंगे, परन्तु उन दोनों युवतियों को देर तक नींद नहीं आई। धीरे-धीरे बातें करती रहीं।

गोमती ने कहा—'यह तो उनके बैरी का आदमी निकला। क्या इसका यहाँ अधिक टिकना अच्छा होगा?'

'यह मन्दिर है।' कुमुद ने उत्तर दिया—'यहाँ कोई भी ठहर सकता है। किसी को मनाही नहीं।'

'चाहे जितने दिन।'

'इसके विषय में मैं कुछ नहीं कह सकती। काकाजू जानें।'

'काकाजू ने तो उसे वचन-सा दिया। यहाँ के राजा यदि महाराज के विरुद्ध हथियार उठावें भी, तो उनका कुछ बिगड़ेगा नहीं। देवी का वरदान उनके लिये है। परन्तु काकाजू का साथ देना मुझे भयभीत करता है।'

'अपनी-अपनी-सी सभी करते हैं। काकाजू ने इस सैनिक को यहाँ के राजा के पास पहुंचा देने की सहायता के लिये अनुरोध-मात्र का वचन दिया है; इससे आगे और बात से उन्हें प्रयोजन ही क्या है?'

गोमती की घबराहट इससे शांत न हुई। विनय-पूर्वक बोली—'परन्तु वह देवी से भी प्रार्थना करेंगे। इससे उन्हें क्या कोई रोक सकेगा?'

'देवी से प्रार्थना वह नहीं करते।' कुमुद ने रूखेपन के साथ कहा—'जो कुछ कहना होता है, मेरे द्वारा कहा जाता है।'

गोमती चुप हो गई। थोड़ी देर सन्नाटा रहा। फिर बोली—'क्या सो गई?'

'अभी नहीं।' उत्तर मिला।

'अपराध क्षमा हो, तो एक बात कहूँ?'

'कहो।'

'न मालूम क्यों मेरे मन में रह-रहकर यह खटका उत्पन्न हो रहा है कि यह मनुष्य मेरे अनिष्ट का कारण होगा।'

'तुम्हारा भय भ्रम से उत्पन्न हुआ है, जैसे सब तरह के भयों का मूल-कारण किसी-न-किसी प्रकार का भ्रम होता है।'

'तो आप एक बार फिर कह दें कि महाराज का इस व्यक्ति के द्वारा कोई अनिष्ट न होगा।'

'उस दिन सब कुछ कह दिया था। अब और कुछ नहीं कहूँगी।'

[५०]

सवेरे कुञ्जरसिंह नरपति के साथ बिराटा के राजा सबदलसिंह के पास गया। राजा ने स्पष्ट इनकार तो नहीं किया; परन्तु नरपति के बहुत हठ करने पर कहा—'देवीजी की कृपा से काम बनने की आशा करनी चाहिये, परन्तु भरोसा पक्का उस समय दिला सकूँगा, जब यह निश्चय हो जाय कि कालपी के नवाब की सहायता बिना आपके कुमार दलीपनगर के राजा की शक्ति का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। यदि दिल्ली का पाया लौट गया और कालपी की नवाबी खतम हो गई, तो मुझे आपके राजा का साथ देने में बिलकुल संकोच न होगा। अथवा यदि आप लोग किसी तरह कालपी के नवाब को अपने पक्ष में कर लें, तो कदाचित मुझे अपना सिर खपाने में ऊँच-नीच का विचार न करना पड़ेगा।'

कुंजरसिंह बोला—'कालपी का नवाब दलीपनगर पर धावा अवश्य करेगा; परन्तु वह अपने स्वार्थ के लिये करेगा।'

'तब ऐसी दशा में आपको कुछ दिन बल एकत्र करने और चुपचाप अवस्था देखने में बिताने पड़ेंगे। अनुकूल स्थिति होने पर हम और आप दोनों मिल-जुलकर काम कर सकते हैं।'

नरपति बोला—'हाँ, ठीक है। जरा देश-काल को परखकर काम करने में ही लाभ है। फिर दुर्गा सहायता करेंगी। आप तब तक रहेंगे कहाँ ?'

'कुछ निश्चय नहीं।' कुञ्जर ने सोचकर कहा—'चाहे कुमार कुंजरसिंह के पास चला जाऊँ, चाहे इधर-उधर सैन्य-संग्रह के लिये दौड़-धूप करता फिरूँ। आजकल हम लोगों के ठौर का कुछ ठिकाना नहीं।'

नरपति ने आग्रह-पूर्वक कहा—'तब आप हमारे राजा के यहाँ ठहर जायें।' और, जरा निहोरे के साथ सबदलसिंह की ओर देखने लगा।

सबदल ने पूछा—'आप का नाम ?'

बिना किसी हिचकिचाहट के कुञ्जर ने उत्तर दिया—'अतबलसिंह।'

सबदल ने कहा—'आप यहाँ ठहर सकते हैं, यदि आपकी इच्छा हो तो। परन्तु आपको रहना इस तरह पड़ेगा कि आपका पता किसी को न लगे, अर्थात् जब तक आपका अभिप्राय सिद्ध न हो जाय।'

कुञ्जर बोला—'यह ज़रा मुश्किल है। ऐसा स्थान कहां है, जहाँ मैं बिना टोका-टाकी के बना रहूं; स्वेच्छा-पूर्वक जब चाहे जहां आ-जा सकूं।'

'ऐसा स्थान है।' नरपति ने बात काटकर कहा—'ऐसा स्थान देवी का मन्दिर है। एक तरफ कहीं जब तक चाहो तब तक, पड़े रहो। तैरना जानते हो ?'

'हाँ।' कुञ्जर ने उत्तर दिया :

'तब।' नरपति बोला—'तब डोंगी की सहायता बिना भी स्वेच्छा-पूर्वक चाहे जहाँ आ-जा सकते हो।'

'परन्तु।' सबदलसिंह ने ज़रा जल्दी से कहा—'डोंगी मिलने में अधिक अड़चन न हुआ करेगी। हाँ, किसी समय उसका प्रबन्ध न हो सके, तो आप यों भी तैरकर पार जा सकते हैं। इस ओर की धार भी छोटी-सी ही है। मन्दिर में आने-जाने वाले लोग आपकी रोक-टोक भी न करेंगे।'

एक धीमी, अस्पष्ट आह भरकर कुञ्जर बोला—'देखें, कब तक वहां इस तरह टिका रहना पड़ेगा।' फिर तुरन्त भाव बदलकर उसने कहा—'सैन्य-संग्रह शीघ्र हो जायगा और देवीजी की कृपा होगी, तो बहुत शीघ्र सफलता भी प्राप्त हो जायगी।'

[५१]

गोमती को मालूम हो गया कि दाँगी राजा ने सहायता-प्रदान का पक्का वचन न देकर भी अपने को कुञ्जरसिंह का सेनापति बतलाने वाले व्यक्ति को आश्रय-दान दिया है। गोमती को अखरा। यद्यपि वह स्वयं दूसरों के आश्रित थी, परन्तु अपने को धीरे-धीरे दलीपनगर की रानी समझने लगी थी और राजा देवीसिंह के सब प्रकार के शत्रुओं के प्रति उसके जी में घृणा उत्पन्न हो गई थी। यदि दाँगी राजा ने बिलकुल 'नाहीं' कर दी होती, अथवा स्पष्ट रूप से पूरी सहायता देने का वचन दिया होता, तो वह भयभीत भले ही बनी रहती, किन्तु उस अवस्था में घृणा के भयंकर भाव उदय न होते।

सबदलसिंह के यहाँ से लौट आने पर गोमती की इच्छा कुंजर को दो खोटी बातें सुनाने की हुई, परन्तु मन में उसके यथेष्ट रूप को निश्चित और परिमित न कर पाया। नरपतिसिंह साफ़ तौर पर उस देवीसिंह के द्रोही का पक्षपाती जान पड़ता था। कुमुद देवी का अवतार या देवी की अद्वितीय पुजारिन होने पर भी लड़की तो नरपति की थी। गोमती को रोष हुआ, कष्ट हुआ, परन्तु उसने नरपति के उस अनधिकार कृत्य पर उत्पन्न हुये अपने उद्दंड रोष को कुमुद के सामने प्रकट न करने का निश्चय कर लिया। भीतर ही भीतर असंतोष और ग्लानि बढ़ने लगी और किसी सुपात्र के सम्मुख प्रकट न कर पाने के निषेध और बन्धन के कारण हृदय जलने लगा।

इसी समय उस मन्दिर में एक व्यक्ति और आया। गोमती को उसके पुष्ट, भरे हुये चेहरे पर सतर्कता के चिह्न मालूम हुये, परन्तु इससे अधिक वह उस समय और कुछ न देख सकी, क्योंकि उसने ज़रा आँख गड़ाकर गोमती की ओर देखा था। वह व्यक्ति रामदयाल था।

रामदयाल ने बहुत थोड़ी देर के लिये कुमुद को पालर में देखा था, गोमती को उसने देखा न था। इसीलिये पहले उसकी धारणा हुई कि

यही पुजारिन कुमुद है। गोमती भी सौन्दर्य-पूर्ण युवती थी। रामदयाल को उसके नेत्र अवश्य बहुत मादक जान पड़े।

ज़रा सिर झुकाकर गोमती से नीची आँखें किये हुये ही बोला—'दूर से दर्शन करने आया हूँ।'

'कहाँ से?' गोमती ने बिना कुछ सोचे-समझे पूछा।

'दलीपनगर से।' तुरन्त उत्तर मिला।

गोमती के मन में कुछ और पूछने की प्रबल इच्छा हुई, परन्तु उसने एक ओर कुमुद को देखा। संकोच हुआ। दूसरी ओर जाने लगी। सोचा—'यह आदमी शीघ्र यहाँ से नहीं जायगा। यदि यह कुञ्जरसिंह के पक्ष का या राजा के किसी बैरी का आदमी नहीं है, तो अवश्य इससे कुछ पता लगेगा।'

रामदयाल ने कुमुद को न देखा था। गोमती को हाथ के संकेत से रोकता हुआ-सा बोला—'मैं दूर से दर्शन करने आया हूँ, क्या इस समय दर्शन हो जायँगे?'

'मैं पूछकर बतलाती हूं।' गोमती ने उत्तर दिया।

रामदयाल ने प्रश्न किया—'किससे?'

गोमती बोली—'यदि तुम्हें इस समय दर्शन न हों, तो सबेरे तो हो ही जायेंगे।'

उसने कहा—'मैं तो दर्शनों के लिये चार दिन तक पड़ा रह सकता हूँ। आप—' बड़ी नम्रता और विनय का नाटय करता हुआ रामदयाल रुक गया।

'क्या कहना चाहते हो, कहो?' गोमती ने वार्तालाप करने की इच्छा से पूछा।

'आप ही तो हम भूले-भटकों और भवसागर के कष्ट-पीड़ितों की बात को दूर तक पहुंचाती हैं। आपको किससे पूछना पड़ेगा?'

गोमती ने कहा—'मैं वह नहीं हूँ।'

रामदयाल ने सिर ज़रा ऊँचा करके पूछा—'तब वह कहाँ हैं? आप कौन हैं?'

'वह यहीं पर हैं और मैं दलीपनगर के...की...' आगे गोमती से कुछ कहते न बन पड़ा। मुख पर लज्जा का रंग दौड़ आया। द्रुत गति से वह जहाँ कुमुद थी, वहाँ चली गई। रामदयाल उस ओर देखने लगा।

कुमुद कोठरी से निकल कर एक दो क़दम आँगन में आई। पीछे-पीछे गोमती थी।

कुमुद के दिव्य सौंदर्य की एक झलक रामदयाल ने पालर में देखी थी। यद्यपि उसके स्मृति-पटल पर उस सौंदर्य के यथार्थ रूप की रेखाएँ अंकित न थीं, परन्तु यह धुंधला स्मरण था कि विचित्र सौंदर्य है। देखते ही पालर का स्मरण जाग पड़ा और उसने समझ लिया कि जिस युवती से पहले-पहले संभाषण हुआ था, वह कुमुद नहीं है।

तब वह कौन थी?

रामदयाल के मन में यह प्रश्न उठा, परन्तु उस समय इसकी विवेचना के लिये रामदयाल को आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। वह कुछ स्त्रियों के स्वभाव से परिचित था। उसने सोचा थोड़ी देर में उसका परिचय भी मिल जायगा।

कुमुद से विनय-पूर्वक कहा—दूर से आया हूँ। क्या इस समय दर्शन हो जायँगे? यदि न हो सकें, तो सवेरे तक के लिये ठहर जाऊँगा और फिर कदाचित् एक अनुष्ठान के लिये यहाँ कई रोज़ ठहरना पड़ेगा।'

कुमुद बोली—'दर्शन इस समय भी हो सकते हैं, परन्तु यदि तुम सवेरे तक के लिये ठहर सकते हो, तो प्रातःकाल का समय सबसे अच्छा है।'

'बहुत अच्छा।' रामदयाल ने कहा—'मैं तब यहीं कहीं या किसी पेड़ के नीचे ठहर जाऊँगा।' उसने अंतिम बात को प्रस्ताव के रूप में कहा।

'हमारी कोई हानि नहीं।' कुमुद बोली—'चाहे जहाँ ठहर जाओ, मंदिर है। तुम कौन हो?'

उसने उत्तर दिया—'मैं दलीपनगर का रहने वाला हूं। महलों से मेरा संबन्ध रहा है। तीर्थ-यात्रा और एक विशेष अनुष्ठान के लिये यहाँ आया हूँ।'

गोमती ने कुमुद के कान में पीछे से कुछ कहा। उस पर विशेष ध्यान न देकर कुमुद बोली—'मन्दिर में तो कोई खास स्थान ठहरने के लिये है नहीं। यह दालान खाली है। चाहो, तो इसमें पड़ रहना। यदि बाहर ठहरने की इच्छा हो, तो वैसा कर सकते हो।'

गोमती किसी आग्रह की दृष्टि से रामदयाल की ओर कुमुद के पीछे से देख रही थी। रामदयाल ने कहा—'मैं दालान में ही ठहर जाऊंगा। बाहर अकेले जरा बुरा मालूम पड़ेगा।'

इसके बाद वे दोनों लड़कियाँ मन्दिर के एक दूसरे भाग में चली गईं।

वहाँ जाकर कुमुद ने गोमती से कहा—'तुम्हें कभी-कभी बड़ी उतावली हो जाती है। इस समय उस हारे-थके आदमी से दलीपनगर के विषय में कुछ नहीं पूछना चाहिये। फिर किसी समय देख लेना।'

'मैं पूछ लूँ उससे किसी समय?'

'पूछ लेना। मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं।'

उधर रामदयाल ने दालान के एक अँधेरे से कोने में अपना डेरा लगा लिया।

उस समय मन्दिर में नरपतिसिंह नहीं था। परन्तु कुंजरसिंह अपनी कोठरी में था।

उसने रामदयाल के कंठ को पहिचान लिया। सन्नाटे में आकर अपनी कोठरी में ही बैठा रहा। थोड़ी देर में अपने को सम्भालकर बाहर निकला। उस समय रामदयाल दालान के उस कोने में अपना डेरा लगा रहा था। पहचान लिया। रामदयाल नहीं देख पाया। कुञ्जर अपनी कोठरी में लौट आया।

[५२]

सन्ध्या के उपरान्त—जब वेतवा की अस्पष्ट कल्लोल के साथ-साथ पश्चिम तटवर्ती विराटा-ग्राम से लोगों की आहट आ रही थी और देवी के मन्दिर में कुञ्जर और नरपति देवी की आरती की तैयारी में लगे हुये थे—गोमती किसी काम के करने की इच्छा से आँगन में आई, परन्तु किसी काम को सामने न पाकर वहाँ बैठ गई, जहाँ से रामदयाल का डेरा पास पड़ता था। रामदयाल की ओर न देखती हुई बोली—'दलीपनगर का कोई और विशेष समाचार नहीं है ?' बात कोमलता का प्रयत्न करके कही गई थी और रामदयाल को कोमल जान भी पड़ी, परन्तु उस पर अधिकार की भी छाप थी। यह रामदयाल की परख में न आई।

उसने अपने आसन से ज़रा-सा खिसककर उत्तर दिया—'विशेष समाचार तो कुछ नहीं है। राजा सैन्य-संग्रह में लगे हुये हैं। उन्हें और किसी बात की धुन नहीं है।'

'सुना है, पालर की किसी लड़ाई में बहुत घायल हो गये थे ?'

'हाँ, बहुत बाल-बाल बचे।'

'अब अच्छी तरह हैं ?'

'हाँ, अब अच्छी तरह हैं। बहुत दिन हुये, तब चोट लगी थी। तब से तो वह कई लड़ाइयाँ लड़ चुके हैं, उस चोट की अब उन्हें याद भी न होगी।'

'दलीपनगर की सेना में एक लम्बा, कठोर, कठिन आदमी था। वह मर गया या महाराज की सेवा में है ?'

'उन्हीं की सेवा में है। आपको पालर की घटना कैसे मालूम है ?'

ज़रा अधिकार-व्यञ्जक स्वर में गोमती बोली—'मैंने पालर में उस व्यक्ति को देखा था। राजा ने उस पाषाण हृदय को कैसे अपनी सेवा में फिर रख लिया ?'

रामदयाल के मन में गोमती का कुछ अधिक परिचय प्राप्त करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई।

बोला—'आप दलीपनगर में किस की बेटी हैं ?'

'मैं दलीपनगर में किसी की बेटी नहीं हूं।'

'परन्तु दलीपनगर में आपका कोई न कोई तो अवश्य है। आपने ही थोड़ी देर पहले बतलाया था।'

गोमती जरा गर्व-पूर्ण स्वर में बोली—'पहले तुम यह बतलाओ कि राजा से तुम्हारा कोई सम्बन्ध है या नहीं ?'

'है और नहीं है।' रामदयाल ने उत्तर दिया।

'राजा अपने सेवकों को सेवाओं का कैसा पुरस्कार देते हैं ?'

'जैसा उनके मन में आता है। दानी हैं।'

गोमती ने धीरे से, परन्तु स्पष्ट कोमलता के साथ, किन्तु अधिकार युक्त स्वर में कहा—'तुम्हें मुंह मांगा पुरस्कार मिलेगा।'

रामदयाल सावधान हुआ। जरा और आगे खिसका।

गोमती से बोला—'मेरे योग्य जो सेवा होगी, अवश्य करूंगा।'

'यहाँ कुञ्जरसिंह का सेनापति ठहरा हुआ है।' गोमती ने भी धीरे से कहा—'वह राजा के विरुद्ध कुछ कार्य कर रहा है। तुम पता लगा कर राजा की सहायता करो।'

'कहाँ ठहरा हुआ है ?'

'इसी मन्दिर में।'

'कब से ?'

'हाल ही में आया है।'

'किस प्रयोजन से ?'

'बिराटा के राजा से महाराज के विरुद्ध सहायता की याचना करने के लिये। इससे अधिक मुझसे कुछ न पूछो, क्योंकि मैं नहीं जानती। तुम्हें राजा का सेवक समझकर मैंने बतलाया है।'

रामदयाल कुछ क्षण तक सोचता रहा।

'आप कौन हैं ?' रामदयाल ने एकाएक पूछा।

'मैं दलीपनगर के राजा की' गोमती ने शीघ्र उत्तर दिया—'रानी हूं।'

'रामदयाल ने तुरन्त खड़े होकर मुजरा किया। खड़ा रहा।'

गोमती मन-ही-मन प्रसन्न हुई। बैठने का संकेत किया। वह बैठ गया।

रामदयाल ने विनीत भाव से कहा—'उस दिन महाराज की जो बारात पालर को आ रहीं थी, परन्तु बीच में ही युद्ध हो पड़ा। क्या।'

गोमती ने अभिमान के साथ उत्तर दिया—'हाँ, मैं वही हूँ। मुझे इस बात का बड़ा दुःख रहा करता है कि इस चिन्ता-पूर्ण समय में महाराज का कुशल समाचार मुझे बहुत कम मिल पाता है।'

'वह समाचार मैं कभी-कभी आपको दिया करूँगा।' रामदयाल ने प्रस्ताव किया।

गोमती बोली—'महाराज के स्वामिभक्त सेवक का नाम तो मुझे मालूम हो।'

'मेरा नाम।' रामदयाल ने बतलाया—'रामदयाल है। मैं बड़ी कठिनाइयों में हूँ और बड़े कठिन कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ। आपने शायद सुना होगा कि मृत राजा की दो रानियाँ थीं। मैं उनकी सेवा में था। वे बाग़ी हो गईं। जासूस बनकर मुझे कभी एक के पास, कभी दूसरे के पास और कभी दोनों के पास रहना पड़ा। बड़ा नाजुक काम है। भेद खुलने पर पूरी विपद् की आशंका है। इस समय भी उन रानियों की जासूसी के लिये दलीपनगर के बाहर हुआ हूँ।'

'रानियाँ कहाँ हैं?'

'वे दलीपनगर से बाहर हैं, तभी तो मैं बाहर हूँ। उनका ठीक-ठीक पता मालूम होने पर बतलाऊँगा। एक प्रार्थना है।'

'क्या?'

'कोई बात कहीं प्रकट न हो, अन्यथा महाराज के हित की हानि होगी।'

'कभी किसी प्रकार प्रकट न हो सकेगी।'

'इस मन्दिर में मैं कभी-कभी आना-जाना चाहता हूं। आपकी बात से मुझे एक और काम का पता लग गया।'

गोमती बोली—'ठहर तो यहाँ सकोगे, परन्तु शायद बाहर रहना पड़ेगा। पुजारिन के पिता नरपति कुञ्जरसिंह के पक्ष में मालूम होते हैं। उन्हें अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करना चाहिये।'

'वह सब मैं धीरे-धीरे देखूँगा।' रामदयाल बोला—'चढौती के विषय में यहाँ क्या नियम हैं?'

'कोई विशेष नियम नहीं है। परन्तु कुंजरसिंह ने उस बार पालर में एक बहुमूल्य आभूषण नरपति को भेंट किया था। इसलिये शायद वह कुञ्जरसिंह के नाम का पक्ष करते हैं। कुमुद अवश्य बहुत और शांत तेजस्विनी हैं उनमें अवश्य देवी का अंश है।'

'मेरे लिये तो।' रामदयाल ने स्वर में सचाई की खनक पैदा करके कहा—'संसार भर की सब स्त्रियों में सबसे अधिक मान्य आप हैं।' अंधकार में रामदयाल ने नहीं देखा। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि उसके गालों पर मंतव्य के प्रकट होने पर गहरी लाली छा गई। इतने में देवी की आरती के लिये गोमती को कुमुद ने पुकार लिया।

[५३]

दूसरे दिन सवेरे रामदयाल दर्शनों के लिये मूर्ति के सामने पहुँचा। कुमुद मूर्ति के पास बैठी हुई थी और नरपति उससे ज़रा हटकर। रामदयाल ने बड़ी श्रद्धा दिखलाते हुये मूर्ति पर जल चढ़ाया और बेले के फूल अर्पण किये। उसने कपड़े की ओर कुछ निकालने के लिये हाथ बढ़ाया। नरपति ने एक बार उस ओर देखकर दूसरी ओर मुंह कर लिया। इतने में कुञ्जरसिंह भी आ गया। कुमुद की आँखें मूर्ति की ओर देखने लगीं। रामदयाल ने बगल से कुञ्जरसिंह को देखा, फिर मुड़कर। पहचान में संदेह न रहा। एक क्षण के लिये सकपका-सा गया। गोमती पास थी। उसने रामदयाल का यह शारीरिक व्यापार ताड़ लिया। उसे वह बहुत स्वाभाविक जान पड़ा और रामदयाल के प्रति सहानुभूति और कुञ्जरसिंह के प्रति घृणा का भाव कुछ और गहरा हो गया। रामदयाल ने अपने को संयत कर लिया। कपड़ों में से सोने का बहुमूल्य गहना निकालकर मूर्ति के चरणों में चढ़ा दिया।

नरपति विस्फारित लोचनों से इस व्यापार को देखने लगा।

गहना अपने हाथ में उठाकर नरपति ने कहा—'आप कहाँ के कौन हैं?'

'मैं दलीपनगर का हूँ।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'इससे अधिक कुछ और बतलाना मेरे लिये इस समय असंभव है। आफ़त में हूँ। दुर्गा के दर्शनों से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये आया हूँ। मेरी प्रार्थना है कि मेरे स्वामी का भला हो।'

गोमती ने उसी समय आँखें मूंदकर रामदयाल की प्रार्थना स्वीकार की जाने के लिये देवी से प्रार्थना की और बड़े अनुनय की दृष्टि से कुमुद की ओर देखा।

नरपति बोला—'आपके स्वामी का कल्याण होगा।'

गोमती किसी उमड़े हुये भाव के वेग को सहन न कर सकने के कारण बोली—'जीजी के मुख से यह आशीर्वाद और अच्छा मालूम होगा।'

कुमुद कुछ नहीं बोली।

नरपति ने तुरन्त कहा—'दुर्गा का प्रसाद इन्हें दिया जाय—'फूल और भस्म।'

कुमुद ने भस्म उठाकर रामदयाल को दे दी। पुष्प नहीं दिया।

गोमती के हृदय को बड़ी पीड़ा हुई। नरपति बोला—'यदि उचित समझा जाय, तो पुष्प भी दे दिया जाय। यह दुर्गा के अच्छे सेवक जान पड़ते हैं।'

कुमुद मूर्ति को प्रणाम करके वहाँ से मन्दिर के दूसरे भाग में धीरे से चली गई। गोमती ने कुमुद के नेत्रों में इतनी अवज्ञा पहले कभी नहीं देखी थी।

बड़ी कठिनाई से गोमती ने नरपति से कहा—'इन्होंने क्या कोई अपराध किया है?'

उदास स्वर में नरपति बोला—'कोई अपराध नहीं किया और न देवी इनसे रुष्ट हैं। रुष्ट होतीं, तो भस्म का प्रसाद क्यों देती? जान पड़ता है, अभी इनके कार्य में कुछ विलंब है, इसलिये पुष्प प्रसाद नहीं मिला।'

'तब इनके यहाँ थोड़े दिनों ठहरे रहने में आपकी कोई हानि तो होती नहीं?' गोमती ने कहा।

नरपति ने उत्तर दिया—'ज़रा भी नहीं। चैन से ठहरे रहें। एक दिन ऐसा अवसर अवश्य आयगा, जब देवी प्रसन्न होकर मनचाहा वरदान भी देंगी।'

रामदयाल कुञ्जरसिंह को देखकर सकपकाया था, परन्तु इस घटना से विचलित नहीं जान पड़ा।

मुस्कराकर बोला—'एक दिन उनकी कृपा अवश्य होगी और मेरा तथा मेरे स्वामी का अवश्य कल्याण होगा।'

'अवश्य।' नरपति बोला।

'अवश्य।' रामदयाल ने कहा।

नरपति ने रामदयाल से कहा—'आप यहाँ जब तक मन चाहे, बने रहिये, अर्थात जब तक आपको अभीष्ट आशीर्वाद न मिल जाय।'

इसके बाद रामदयाल वहाँ से उठकर मन्दिर के बाहर गया। कुञ्जरसिंह उसके पीछे-पीछे।

जब दोनों अकेले रह गये, कुञ्जरसिंह ने धीमे स्वर में, परन्तु तीखेपन के साथ कहा—'यहाँ किसलिये आये हो?'

'दर्शनों के लिये।'

'तुम्हें ये लोग जानते नहीं हैं?'

'जानते हैं।'

'ये लोग यह जानते हैं कि तुम्हारा नाम रामदयाल है और किस तरह के मनुष्य हो।'

'मैंने उन्हें स्वयं बतला दिया है।'

'तुम यहाँ से चले जाओ।'

क्रोध के मारे कुञ्जरसिंह काँपने लगा।

रामदयाल ठंडक के साथ बोला—'राजा, गुस्से से काम न चलेगा। मैंने अपना परिचय इन लोगों को दे दिया है, परन्तु आप यहाँ नाम और काम दोनों की दृष्टि से छिपे हुए हैं। आपका भेद खुलने से मेरी कोई हानि न होगी।'

'राजा देवीसिंह के आदमी आपके लिये घूम रहे हैं। कालपी का नवाब, जो भांडेर में यहां से पास ही ठहरा हुआ है, आपसे शायद बहुत सन्तुष्ट नहीं है। रानियों से आपकी पटती नहीं। रियासत के सरदार आप लोगों के झगड़ों से अपने को बचाये हुये हैं। लोचनसिंह अभी जीवित हैं और मैंने कभी आपका कोई बिगाड़ नहीं किया, फिर न जाने राजा मुझसे क्यों रुष्ट है।'

कुञ्जरसिंह ने एक क्षण के लिये कुछ सोचा। बोला—'जानता हूं, तुम घोर नास्तिक हो। तुम केवल दर्शनों के लिये यहां कदापि नहीं आये हो। बोलो, काहे के लिये आये हो?'

'आप जानते हैं।' रामदयाल ने बनावटी विनय के साथ उत्तर दिया—'मैं और कुछ नहीं, तो स्वामिधर्मी तो अवश्य हूं। मेरे स्वामी का विश्वास इस स्थान पर है। इसीलिये आया हूं।'

कुञ्जरसिंह जिस बात का सन्देह रामदयाल पर कर रहा था, उसे प्रकट करना उचित नहीं समझा, परन्तु भर्त्सना करने की प्रबल इच्छा जान पड़ी थी और भर्त्सना नहीं कर पाई थी, इसलिये रामदयाल का गला घोंट डालने का भाव तो मन में उठा, परन्तु जीभ या हाथ ने कोई तैयारी नहीं दिखलाई।

रामदयाल कनखियों से देखकर धीरे से बोला—'यदि राजा क्षमा करें, तो एक बात कहूं ?'

कुञ्जरसिंह ने मुंह से कुछ न कहकर सिर से हां का संकेत किया।

रामदयाल ने कहा—'इस बार दोनों रानियाँ देवीसिंह के विरुद्ध हैं। दोनों दलीपनगर छोड़कर चली आई हैं। आप उनके साथ अपनी शक्ति सम्मिलित कर दें और कालपी के नवाब के साथ घृणा न करें, तो दलीपनगर का सिंहासन आपके पाँव-तले शीघ्र आ जायगा।'

'मैं सदा रानियों के सम्मान का ध्यान रखता आया हूं, परन्तु अनुचित कार्यों का सहायक नहीं हो सका। कालपी के नवाब के ऊपर भी कोई है, जानते हो ?'

'हां, राजा। दिल्ली है। परन्तु वहां किसी की कोई कुछ भी सुनने वाला नहीं मालूम पड़ता, ऐसा मैं आप ही लोगों से सुना करता हूँ।'

'खैर, देखा जायगा; परन्तु मैं एक बात से तुम्हें सावधान करना चाहता हूँ।'

'वह क्या है राजा ?'

'तुमने जिसके प्रति अपना अशुद्ध प्रयत्न पालर में किया था, उससे दूर रहना—बहुत दूर नहीं तो मैं सिंहासन प्राप्ति की अभिलाषा को एक ओर रख दूंगा और तुम्हें उस प्रयत्न के किये पर पछताने का भी समय न मिलने दूंगा।'

कुञ्जरसिंह ने अन्तिम बात बड़े जोश के साथ कही थी।

रामदयाल हँसा। वह हँसी कुञ्जर के मन में छुरी की तरह चुभ गई।

रामदयाल बोला—'राजा, यदि मैंने कुछ किया था, तो अपने मालिक की आज्ञा से। जो कुछ करूँगा, अब अपने स्वामी की भलाई के लिये। परन्तु यह मैं वचन देता हूँ कि आपका मार्ग लाँघने की चेष्टा न करूँगा। यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें, तो मैं यही विनती करूँगा कि यहां न पड़े रहकर आप राज्य-प्राप्ति का कुछ और भी उपाय करें। पूजार्चा तो उन लोगों के लिये है, जो हथियार का भरोसा कम करते हैं और अन्य वातों का अधिक।'

. सुनकर कुञ्जर विकल हो गया। बोला—'मैं तुम्हें स्वामिद्रोही नहीं कहता। परन्तु तुम नीच अवश्य हो।'

'यह तो राजा ;लोगों का क़ायदा ही है।' रामदयाल ने कुटिल मुस्कराहट के साथ कहा—'काम निकल जाने पर नौकरों को धता वता देते हैं। ग़रीव तो सदा से ही दोषी चला आया है और चाकर अनन्त काल से नीच।'

'मैं पूछता हूँ, तुम उस लड़की से कल शाम को क्या घुल-घुलकर बातें कर रहे थे?' कुञ्जर ने एकाएक पूछा।

प्रश्न के आकस्मिक वेग से बिलकुल विचलित न होकर रामदयाल ने उत्तर दिया—'पुजारिन से तो मेरी कोई बातचीत नहीं हुई।'

'वह नहीं।' कुञ्जर जी कड़ा कर के बोला—'तुम उस दूसरी लड़की से घुल-घुलकर क्या बातें करते थे?'

'वह कौन है, आप जानते हैं?' रामदयाल ने दृढ़तापूर्वक पूछा। कुञ्जरसिंह ने अवहेलना की दृष्टि से उसकी ओर देखा।

रामदयाल ने कहा—'वह राजा देवीसिंह की रानी है।'

कुञ्जरसिंह सन्नाटे में आ गया। एक क़दम पीछे हट गया, बोला—'झूठ, असम्भव?'

कोई उत्तर न देकर रामदयाल फिर मन्दिर में चला गया।

[५४]

रामदयाल को मन्दिर में घुसते हुये नरपति मिला। वह कहीं बाहर जा रहा था। कुञ्जरसिंह रामदयाल के पीछे-पीछे नहीं आया था। काना-फूसी-सी करते हुये नरपति बोला—'यहाँ के राजा से कुछ काम हो, तो मेरे साथ चलो।'

रामदयाल बोला—'अभी तो नहीं, किसी और समय चलूंगा। एकाध दिन यहां रहकर मैं काम से बाहर जाऊंगा। लौटकर फिर विनती करूंगा।'

नरपति चला गया।

कुमुद वहाँ दिखाई नहीं पड़ी। गोमती को एकान्त में देखकर रामदयाल ने एक ओर बुलाने का सम्मान-पूर्वक संकेत किया। वह आ गई।

रामदयाल ने कहा—'जिसे आपने कुञ्जरसिंह का सेनापति समझ रक्खा था, यह सेनापति नहीं है।'

'तब कौन है?' गोमती ने जरा चिंतित होकर पूछा।

'स्वयं कुञ्जरसिंह।'

गोमती चौंकी। रामदयाल ने निवारण करते हुये कहा—'आप आश्चर्य न करें, वह महाराज को हानि पहुंचाने के लिये तरह-तरह के उपायों की रचना में सदा व्यस्त रहते हैं। परन्तु मैं इसका उपाय करूंगा, आप चिंतित न हों। केवल एक भीख माँगता हूँ।'

स्नेहपूर्वक गोमती बोली—'क्या चाहते हो रामदयाल।'

'आप इस भेद को कदापि किसी के सामने प्रकट न करें।'

रामदयाल ने प्रस्ताव किया—'मेरी अनुपस्थिति में यहाँ जो कुछ हो, उस पर अपनी दृष्टि रक्खें और मेरे ऊपर विश्वास। मैं एक-आध रोज के लिये बाहर जाऊंगा। वहाँ से लौटकर अपनी और योजनायें बतलाऊंगा। जैसा कुछ उस समय निश्चय हो उसके अनुसार फिर काम करें।'

गोमती ने सरलता-पूर्वक कहा—'मैं तो कुछ-न-कुछ करने के लिये बहुत दिनों से बेचैन हो रही हूँ, परन्तु यह ठीक-ठीक समझ में नहीं आता था कि क्या करूँ। महाराज के पास शीघ्र जाओगे न ?'

'अवश्य ।'

'उन्हें हमारा यहाँ का रहना मालूम है ?'

'नहीं मालूम है, परन्तु अब मालूम हो जायगा। मेरी अभिलाषा है, अभी वह यहाँ न आवें, और न आप वहाँ जायँ।'

अभिमान-पूर्वक गोमती बोली—'जब तक वह स्वयं यहाँ नहीं आयँगे, मैं दलीपनगर नहीं जाऊँगी।'

रामदयाल नम्रता-पूर्ण स्वर में बोला—'यह तो उचित ही है, परंतु इस समय सरकार यह आशा न करें और न मुझे ही आज्ञा दें कि महाराज यहाँ आवें।'

'नहीं मैं ऐसा क्यों करने चली ? क्या यहाँ आने से उनके किसी अनिष्ट की सम्भावना है ?'

'बहुत बड़ी। कालपी का नवाब उनका परम शत्रु है। कुञ्जरसिंह उनका प्रतिद्वन्दी इस मंदिर में है। मृत राजा की रानियाँ उनके विरुद्ध खड्गहस्त होकर विचरण कर रही हैं। ऐसी हालत में उनका अकेले-दुकेले इस स्थान में आना बड़ा संकट-पूर्ण होगा। और ससैन्य वह अभी आ नहीं सकते। मैं स्वयं रानियों का आदमी बनकर घूम रहा हूँ। मुझे लोग महाराज का सेवक नहीं समझते।'

गोमती ने प्रसन्न होकर कहा—'तुम बड़े चतुर मनुष्य जान पड़ते हो, रामदयाल। धन्य हैं महाराज, जिनका ऐसा दक्ष और पुरुषार्थी सेवक हो। तुम कब तक यहाँ रहोगे ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'एक आध दिन और हूँ। जरा यहाँ के राजा को कुञ्जर के पक्ष से विमुख कर लूँ, या कम-से-कम उत्साह रहित कर दूँ, तब दूसरा काम देखूँ।'

यह कहकर रामदयाल एकटक गोमती की ओर देखने लगा, मानो कुछ कहना चाहता हो और कहने के लिये या तो शब्द न मिलते हों, अथवा हिम्मत न पड़ती हो।

गोमती बोली—'क्या कहते हो, कहो।'

'कहते डर लगता है।' रामदयाल बोला।

'कहो, कहो।' गोमती प्रोत्साहन देते हुये बोली।

'आपका इन पुजारिन के विषय में क्या विश्वास है?' उसने पूछा।

गोमती ने उत्तर दिया—'बहुत शुद्ध हैं। दुर्गा से उनका संपर्क है। लोग उन्हें देवी का अवतार समझते हैं।'

'यह सब ठीक है।' रामदयाल आँखें नीची करके बोला—'परन्तु मेरी यह प्रार्थना है कि आप जरा यह अच्छी तरह से देखती रहें कि कुञ्जरसिंह का वह कितना पक्ष करती हैं और क्यों करती हैं? आपको स्मरण होगा कि उन्होंने मुझे स्वामी की सफलता के लिये पूरा आशीर्वाद नहीं दिया।'

कुछ सोचकर गोमती ने कहा—'मुझे खूब याद है। उन्होंने एक बार आशीर्वाद दे दिया है। दूसरी बार आशीर्वाद फिर भी दे देंगी। क्या वह तुम्हें पहचानती हैं।'

'नहीं, वह मुझे नहीं जानतीं।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'परन्तु मुझे विश्वास है कि वह कुञ्जरसिंह को पहचानती हैं। उन्होंने यह समझकर मुझे पूरा आशीर्वाद नहीं दिया कि कहीं कुञ्जरसिंह के विरुद्ध न जा पड़े।'

गोमती गम्भीर चिंतन करने लगी। रामदयाल बोला—'मैं केवल यह विनती करता हूँ कि आप सावधानी के साथ वस्तुस्थिति का निरीक्षण करती रहें। इस बात का भय न करें कि यह देवी का अवतार हैं—'

'कहो, कहो, और क्या कहते हो, मैं भय किसी का नहीं करती।' गोमती ने आग्रह-पूर्वक कहा।

वह बोला—'मेरा यह विश्वास है कि इस कलयुग में अवतार नहीं होता। मैं आपसे केवल इतना अनुरोध करता हूँ कि आप खूब देख-भाल करती रहें।'

[५५]

इसी समय बाहर से कुञ्जर आकर अपनी कोठरी में चला गया।

कुञ्जरसिंह को जितनी बेचैनी उस दिन हुई, उतनी लोचनसिंह के मुक़ाबले में सिंहगढ़ छोड़ने के लिये विवश होने पर भी नहीं हुई थी। उसे भय हुआ कि रामदयाल कुमुद को किसी षड्यंत्र में फँसाने और स्वयं उसे किसी विपद् के कुचक्र में डालने की चिंता में है। उसने कुमुद से उसी दिन अकेले में कुछ कहने का निश्चय किया।

कई वार निराला पाने की कोशिश की, परन्तु कभी गोमती को उसके पास पाया और कभी किसी दर्शन करने वाले को। कुमुद ने भी उसकी विचलित अवस्था को एकआध बार देखा और उसने यह भी देखा कि उसकी दृष्टि में कुछ अधिक तत्परता, कुछ अधिक आग्रह है। गोमती ने भी उसे विना किसी उद्देश्य के इधर-उधर भटकते हुये देखा और वह सावधानी के साथ उसके विषय में विचार करने लगी। कुञ्जर ने सोचा—'यह स्त्री मेरी ओर आँख गड़ाकर क्यों देखती है ? क्या रामदयाल ने अपने कुचक्र में इसे भी शामिल किया है ?'

अन्त में कुञ्जरसिंह को दोपहर के लगभग एक अवसर हाथ लगा। गोमती रसोई बनाने के लिये एक कोठरी में चली गई। दूसरी में नरपति को कुमुद भोजन कराने लगी। रामदयाल मन्दिर के एक कोने में मुँह पर चादर ढांपे पड़ा था। कुञ्जर मन्दिर के आँगन में जाकर ऐसी जगह खड़ा हो गया, जहाँ से नरपति उसे नहीं देख सकता था, केवल कुमुद देख सकती थी। परन्तु कुमुद ने उसकी ओर देखा नहीं। जब धूप में खड़े-खड़े कुमुद की ओर टकटकी लगाये कुञ्जर को कई पल बीत गये, तब उसने धीरे-से पैर की आहट की।

कुमुद ने देखा। उधर रामदयाल ने भी चादर को ज़रा-सा खिसकाकर देखा। कुञ्जर ने कुमुद को हाथ जोड़कर सिर से बुलाने का संकेत किया। देखकर भी वह कुछ समय तक वहीं बैठी रही। जलती धूप में कुञ्जर वहीं खड़ा रहा।

यथेष्ट से कुछ अधिक भोजन-सामग्री नरपति के सामने रखकर कुमुद ने अपने पिता से कहा—'मैं अभी आती हूँ।'

कभी-कभी सनक के साथ काम करने का कुमुद को अभ्यास पड़ गया था। उसका पिता इस गुण में किसी दैवी व्यापार का लक्षण समझा करता था। इसीलिये उसने कुमुद से कोई पूछ-ताछ नहीं की।

आँगन में प्रवेश करते ही कुमुद ने चारों ओर आँख डाली। गोमती वहाँ न थी, मन्दिर की बग़लवाली छोटी-सी दलान में रामदयाल चादर से मुँह ढके पड़ा था। वहाँ और कोई न था।

कुञ्जरसिंह ने मंदिर के बाहर चलने का इशारा करते हुये दरवाजे की ओर क़दम बढ़ाया। कुमुद भीतर जाकर देवालय की चौखट पर जा बैठी। कुञ्जर लौटकर वहीं जा पहुँचा। नीचे बैठ गया। कुमुद भी चौखट से उतरकर नीचे बैठने को ज़रा हिली, परन्तु फिर जहाँ-की-तहाँ बैठी रही। उस स्थान से, जहाँ रामदयाल लेटा था ओट थी।

'क्या है ?' बहुत बारीक स्वर में निस्संकोच भाव से कुमुद ने पूछा।

'क्या कहूँ, बहुत दिनों से—बड़ी देर से कहना चाहता था।' कुञ्जर बोला—'आप मेरी ढिठाई क्षमा करेंगी ?'

'कहिये।' कुमुद ने कहा—'ऐसी क्या बात है, जो आप अकेले में कहना चाहते हैं ?'

प्रश्न की हिम-तुल्य ठंडक से कुञ्जर सिकुड़-सा गया।

बोला—'आप मुझे नहीं जानती हैं, न जानने की आवश्यकता है और न कभी जान सकेंगी, क्योंकि कभी फिर इस जीवन में आपके दर्शन होंगे या नहीं, इसमें पूर्ण सन्देह है।'

कुमुद का होंठ कुछ कहने के लिये ज़रा-सा हिला, परन्तु बोली नहीं। उत्सुकता के साथ कुञ्जर की ओर देखने लगी।

उसने कहा—'मैं दलीपनगर का एक अभागा हूं। एक दिन—उस दिन, जब संक्रांति का स्नान करने दलीपनगर के महाराज पालर आये थे, मैंने मन्दिर में दर्शन किये थे। उस समय यह लड़की आपके साथ न थी।'

'मैं आपको जानती हूं ।' आँखें विना नीची किये हुए कुमुद ने कहा ।

'मुझे !' कुञ्जर ने आश्चर्य प्रकट किया—'मुझे आप जानती हैं ।' फिर आश्चर्य को संयत करके बोला—'हाँ, किसी-किसी भक्त का कुछ स्मरण आपको रह सकता है; परन्तु मैं कौन हूं, यह आप न जानती होंगी ।'

'जानती हूं अथवा न भी जानती होऊँ, तो भी कोई हानि नहीं ।' कुमुद ने अपनी साधारण मिठास के साथ कहा—'आप अपनी बात तो कहिये ।'

कुमुद की उँगली में अपनी हीरे की अंगूठी देखते हुये कुञ्जरसिंह बोला—'इस अंगूठी ने मेरा नाम बतलाया होगा । एक दिन वह था और एक दिन आज है । यदि आपकी कृपा हुई, तो दिन फिर फिरेंगे । न भी फिरें, परन्तु आपकी कृपा बनी रहे ।'

कुमुद ने अँगूठी वाले हाथ को ज़रा पीछे खींचकर कहा—'मुझे पिताजी को परोसने के लिये जाना है । आपने किसलिये बुलाया था ?'

'यहाँ कोई संकट उपस्थित होने वाला है ।' कुञ्जरसिंह बोला—'षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं । यह जो पुरुष कल यहाँ आया है, बड़ा भयंकर और नीच है । उस लड़की के साथ कुछ सलाह कर रहा था । आपकी रक्षा का कुछ उपाय होना चाहिये ।'

नेत्र स्थिर करके कुमुद ने कहा—'मेरे लिये किसी बात की चिन्ता न करना चाहिये । दुर्गाजी की कृपा से मेरे ऊपर कोई संकट कभी नहीं आ सकता । यह लड़की मेरे गाँव की ही है । उस दिन जब पालर में युद्ध हुआ, इस लड़की का विवाह उस पुरुष के साथ होने जा रहा था, जो अब दलीपनगर का राजा है । वह अपने पति के लिये चिन्तित रहा करती है और कोई बात नहीं है ।'

आने वाले संकट के विस्तार को छोटा समझे जाने के कारण कुञ्जरसिंह अधिक आग्रह के स्वर में बोला—'मैंने दलीपनगर के सिंहासन की

रक्षा में प्राणों के अतिरिक्त लगभग सभी कुछ त्यागा है। आशीर्वाद दिया जाय कि इन चरणों की रक्षा में उनका भी उत्सर्ग कर दूं।'

किसी अन्य को दूसरे समय दिये गये एक वरदान का स्मरण करके कुमुद ने कहा—'आपको ऐसी कोई चिन्ता न करनी चाहिये।' कुमुद ने विश्वासपूर्ण स्वर में बात कही, परन्तु उसमें किसी तरह की अवहेलना न थी।

कुञ्जरसिंह ने हाथ जोड़कर कहा—'आशीर्वाद दीजिये कि इन चरणों के लिये ही जीवन धारण करूं।'

कुमुद के मुख पर लालिमा छा गई। नेत्रों में निस्संकोचता का वह भाव न रहा। एक ओर आँखें करके बोली—'आपकी बात मुझे विचित्र-सी जान पड़ती है। किसी तरह के कष्ट की कोई आशंका मुझे इस समय नही भास रही है। यदि कोई होगी, तो मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि रक्षा का उचित उपाय किया जायगा।'

'मेरी यह अभिलाषा है कि उस उपाय में मैं भी हाथ बटाऊं।'

'जब आवश्यकता होगी, आपसे कहने में निषेध न होगा।'

"मुझे मंत्र-दीक्षा दे दी जाय, तो मैं भी पूजार्चा में ही अपना संपूर्ण समय व्यतीत करूं।"

"आप क्षत्रिय हैं और मैं ब्राह्मण नहीं हूं।"

'परन्तु आप देवी हैं और मैं देवी का उपासक।'

'आपको और कुछ नहीं कहना है? पिताजी के पास जाती हूं।'

उत्तर की प्रतीक्षा बिना किये ही कुमुद वहाँ से चली गई। जब तक वह रसोई घर में नहीं पहुंच गई, कुञ्जरसिंह सोने को लजानेवाले उसके पैरों को देखता रहा। उसे ऐसा जान पड़ा जैसे उसकी नाड़ी में बिजली कौंध गई हो। जब वहाँ से चला, तब उसकी आँखों में तारे-से छिटक रहे थे। उस समय उसने यह नहीं देखा कि दालान में रामदयाल अपने स्थान पर न था।

[५६]

उसी दिन रामदयाल ने अपनी-गठरी-मुठरी बांधकर जाने की तैयारी की।

नरपति से कहा—'कुछ दिनों के लिये बिदा मांगता हूं।'

'परन्तु लौटकर जल्द आना, दुर्गा का स्मरण करना।' नरपति ने अनुरोध किया।

कुञ्जरसिंह ने अपनी कोठरी से रामदयाल की बात सुनकर ज़रा चैन की सांस ली।

रामदयाल ने जाने के पहले गोमती को अकेले में ले जाकर बातचीत की। बोला—'आप एक बार कुमुद के सामने कुञ्जरसिंह का तो नाम लीजियेगा?'

'क्यों? वह तो उसे पहचानती हैं न?' गोमती ने पूछा।

'जान-पहचान से भी कुछ अधिक गहरा रङ्ग है। मुझे भय है, शायद महाराज के खिलाफ़ वह भी कुञ्जरसिंह को कुछ मन्त्रणा दें।'

'महाराज के खिलाफ़। मैं इस बात से बहुत डरती हूं। उनके पास दुर्गा की शक्ति है। इसमें तो रामदयाल, महाराज का बड़ा अनिष्ट होगा।'

'ज़रा भी न होगा।' रामदयाल ढिलाई के साथ बोला—'मैंने आज कुञ्जरसिंह और कुमुद का सम्भाषण सुना है। दोनों पहले से एक दूसरे को जानते हैं। आप महाराज की हित-कामना और कुञ्जरसिंह के अहित-चिन्तन की बात कहें, तब आपको मालूम हो जायगा कि वास्तव में इन दोनों में क्या सम्बन्ध है और तब आपको विश्वास हो जायगा कि कुमुद देवी का अवतार-बवतार कुछ नहीं है।'

गोमती ने बात काटकर कहा—'ओह! अधिक कुछ मत कहो, इस विषय पर मैं जांच-पड़ताल में लग रही हूं।' फिर एक क्षण बाद बोली—'यह संभाषण किस समय हुआ था?'

उत्तर मिला—'आज जब आप रसोई बना रही थीं। ये हाथ और रसोई बनाने का वह कष्ट! हे भगवान्!'

गोमती ने कहा—'यह सब कुछ नहीं है रामदयाल। जब जैसा समय आवे, तब वैसा भुगत लेना चाहिए। तुम महाराज के पास जा रहे हो?'

'हां, अभी जा रहा हूं।'

'महाराज तो दलीपनगर में ही होंगे?'

'वहाँ पहुँचकर ठीक-ठीक मालूम होगा। उन्हें संसार-भर के तो झंझट घेरे रहते हैं।'

'उनकी सेना तो बड़ी अच्छी होगी? कालपी के नवाब का सामना अबकी वार भी खूब अच्छी तरह करेंगे।'

'इसमें सन्देह को कोई स्थान नहीं है।'

'महाराज का स्वभाव तो बहुत दयालु है?'

'अपने लोगों पर बड़ी दया करते हैं। बड़े वीर और दानी हैं।'

'तुम उनके पास सदा रहते हो?'

'जब कभी दलीपनगर में होता हूं, तब।'

'वह और किस-किस विषय में प्रीति रखते हैं? अर्थात् शास्त्र-चर्चा, विद्वानों का संग इत्यादि भी होता है?'

'मैं स्वयं इन बातों को कम समझता हूं, परन्तु महाराज हैं बड़े रसिक।'

'रसिक!' आश्चर्य के साथ गोमती ने कहा—'रसिक से तुम्हारा क्या प्रयोजन?'

रामदयाल ने चतुरता प्रकट न करते हुये उत्तर दिया—'जब कभी महीने-पखवारे में एकआध घड़ी का अवकाश मिल जाता है, कुछ गाना-वाना सुन लेते हैं और कुछ नहीं।'

गोमती बोली—"हां, राजा हैं।'

फिर एक क्षण बाद पूछा—'कुमुद और उस व्यक्ति में, जिसे तुमने बतलाया कि कुंजरसिंह है, कोई विशेष बातचीत हुई?"

उसने उत्तर दिया—'ऐसे किसी विशेष वाक्य को सम्पूर्ण प्रसंग से निकालकर बतलाने से तो मेरी बात की पूरी पुष्टि न होगी, परन्तु सारे वार्तालाप का प्रयोजन स्नेह या प्रेम को व्यक्त करने वाला अवश्य था।'

गोमती ने अवहेलना के साथ कहा—'उँह, मुझे क्या करना है? देखा जायगा। रामदयाल, तुम महाराज से यह मत कहना कि मैं अपनी रसोई हाथ से बनाती हूं।'

रामदयाल बोला—'आपने अच्छा किया, जो मना कर दिया, नहीं तो मैं अवश्य कह देता। महाराज को अबतक अवश्य कुछ खबर लेनी थी, परन्तु उन्हें मालूम न था कि आप यहाँ हैं।'

'अब भी।' गोमती ने कहा—'वह मेरी चिंता न करें। पहले अपने राज्य को संभाल लें। जब शांति स्थापित हो ले और वह बेखटके हो जायँ, तब इधर का ध्यान करें और कभी-कभी गाना-बजाना अवश्य सुन लिया करें।'

रामदयाल' बोला—'सो तो मैं उनके स्वभाव को खूब जानता हूं। वह अभी न आवेंगे।'

रामदयाल जाने को उद्यत हुआ। गोमती ने कहा—'रामदयाल, तुम भूल मत जाना। जल्दी-से-जल्दी यहाँ की खबर लेना। एक बात का स्मरण रखना कि महाराज यहाँ छिप-लुककर न आवें। शत्रु बहुत पास है। पता लगने पर भारी अनिष्ट होगा।'

रामदयाल जुहार करके चला गया।

[५७]

रानियों के विद्रोह का पता राजा देवीसिंह को शीघ्र लग गया। जनार्दन को बहुत खेद और क्षोभ हुआ। खोज लगाने पर उसे मालूम हो गया कि रानियाँ रामनगर की गढ़ी में पहुँच गई हैं। रामनगर का राव पतराखन दलीपनगर का जागीरदार न था और अपेक्षाकृत भांडेर के अधिक निकट होने के कारण उसके ऊपर कुछ जोर नहीं चल सकता था। एक निश्चय करके जनार्दन राजा के पास गया।

राजा ने कहा—'तुम्हारा कहना न माना, इसलिये यह एक नई समस्या और कष्ट देने को खड़ी हो गई है।' और मुस्कराये।

जनार्दन ने देखा—'शब्द जिस कष्ट को व्यक्त करने के लिये कहे गये थे, वह उसकी मुस्कराहट में न जाने कहाँ विलीन हो गया।

जनार्दन उसके स्वभाव से परिचित हो गया था। बोला—'अब जैसे बनेगा, वैसे इस समस्या को भी देखना है। एक उपाय सोचा है।'

'वह क्या ?' राजा ने सतर्क होकर पूछा।

मंत्री ने उत्तर दिया—'मैं एक विश्वस्त दूत दिल्ली को रवाना करता हूं। वह सैयदों की चिट्ठी कालपी के नवाब के नाम लायगा।'

राजा बोले--'उस चिट्ठी का असर एक वर्ष पीछे दिखलाई पड़ेगा। कौन पूछता है, उस अंधेरे गड्ढे में कि उस चिट्ठी का क्या होना चाहिए।

'वह ऐसी चिट्ठी न होगी।' जनार्दन ने कहा—'कालपी के नवाब की सेना के लिए उस चिट्ठी में काफी काम पाया जायगा, अर्थात् नवाब अलीमर्दान को दिल्ली से बुलावा आवेगा।'

'दूत कौन है आपका ?' राजा ने पूछा।

'हकीमजी।' मंत्री ने उत्तर दिया—'वह स्वयं सैयद हैं और राजनीति में भी निपुण हैं।'

'और वह हमारे राज्य से कुछ विरक्त-से भी रहते हैं।' राजा ने मुस्कराकर कहा।

'नहीं महाराज।' जनार्दन बोला—'आपके उदार और विश्वास-पूर्ण वर्ताव के कारण वह बहुत संतुष्ट हैं। मुझसे भी मित्रता का कुछ नाता मानते हैं। उनके बाल-बच्चे यहीं हैं और वह कृतज्ञ-हृदय पुरुष हैं। दलीपनगर दिल्ली के मुगल-सम्राटों का सहायक रहता चला आया है। हकीमजी की बात मानी जायगी और अलीमर्दान को अपना हठ छोड़ना पड़ेगा। इधर-उधर कहीं थोड़े दिन के लिये चला जाय फिर रानियों के विद्रोह का दमन बहुत सहज हो जायगा। अवस्था शीघ्र कुछ ऐसी आती जा रही है कि थोड़े दिनों बाद हमारा कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा।'

राजा ने कहा—'मुठभेड़ बच जाय, तो अच्छा है, नहीं तो हमें एक ज़ोर का हमला कालपी के नवाब पर भांडेर में ही शायद करना पड़ेगा। विलम्ब होने से रानियां बाहर के कुछ सरदारों को अपनी ओर कर लेंगी और हमारे यहां के भी कुछ मनमुटाव रखने वाले जागीरदार उभड़ खड़े होंगे।'

'उधर कुञ्जरसिंह भी अभी बने हुए हैं। जनार्दन बोला—'उनकी ओर से मुझे बहुत कम खटका है। किसी बात पर बहुत दिन जमे रहना उनके स्वभाव में नहीं है। आजकल वह विराटा की ओर हैं। यदि उन्होंने अलीमर्दान के साथ संधि कर ली, तब अवश्य अवस्था कुछ कष्ट-साध्य हो जायगी। उनका छोटी रानी के साथ मेल शायद हो जाय, परन्तु अलीमर्दान के साथ न होगा। मैंने उनकी गति की परख के लिये जासूस छोड़ रक्खे हैं। ठीक बात मालूम होने पर निवेदन करूंगा। तब तक मैं हकीमजी को दिल्ली भेजकर अलीमर्दान का प्रबन्ध करता हूं।'

जनार्दन ने इस निर्णय के अनुसार हकीम को दिल्ली भेजा।

[५८]

भांडेर का पुराना नाम लोग भद्रावती बतलाते हैं। पहूज नदी के पश्चिमीय किनारे पर बसा हुआ है। खंडहरों पर खंडहर हो गये हैं। किसी समय बड़ा भारी नगर रहा होगा। अब कुछ मसजिदों और सोन तलैया के मन्दिर के सिवा और खास इमारत नहीं बची है। पहूज के पूर्वीय किनारे पर जंगल से दबा और भरकों से कटा हुआ एक विशाल प्राचीन नगर है। नदी के दोनों ओर भरकों, मैदानों, टीलों और पहाड़ियों के विशृङ्खल क्रम हैं। पहूज छोटी-सी, परन्तु पानी वाली नदी है और बड़ी सुहावनी है। भांडेर से दो-ढाई कोस दक्षिण-पूर्व की ओर जहाँ से कुछ अन्तर पर लहराती हुई पहूज नदी उत्तर-पश्चिम की ओर आई है—सालोन भरौली की पहाड़ियाँ हैं। इनके बीच में पत्थर का एक विशाल तथा बहुत प्राचीन मन्दिर है। मन्दिर में महादेव जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है। यहाँ से विराटा पश्चिम की ओर करीब छः कोस है। यहीं अलीमर्दान अपनी सेना लिये पड़ा था।

एक दिन रामदयाल अन्धेरे में अलीमर्दान की छावनी में आया। जरा दिक्कत के बाद अलीमर्दान के डेरे पर पहुँचा। कालेखाँ उसके पास मौजूद था।

रामदयाल को अलीमर्दान ने पहचान लिया। पूछा—'तुम यहाँ कैसे आ गये? सुना था, क़ैद में हो।'

'क़ैद में अवश्य था, परन्तु छूट कर आ गया हूँ। महारानी भी क़ैद कर ली गई थीं, परन्तु वह भी स्वतंत्र हो गई हैं।'

'अब वह कहाँ हैं।'

'रामनगर में राव पतराखन की गढ़ी में।'

अलीमर्दान ने आश्चर्य प्रगट किया—'उन जैसी वीर स्त्री शायद ही कहीं हो। कैसी जवाँमर्द और दिलेर हैं! मुझे उनके राखीबन्द भाई होने का अभिमान है।'

रामदयाल बोला—'प्रण के निभाने का ठीक समय अब आ गया है। दलीपनगर पर चढ़ाई करने के लिये प्रार्थना करने को यहाँ भेजा गया हूं।'

अलीमर्दान ने कहा—'मैं दिल्ली के समाचारों के लिये ठहरा हुआ हूं। इस लड़ाई में उलझ जाने के बाद यदि दिल्ली का ऐसा समाचार मिला, जिससे किसी दूसरी जगह जाने का निश्चय करना पड़ा, तो बुरा होगा।'

'परन्तु।' रामदयाल ने बिनती की—'आप हम लोगों को मझधार में नहीं छोड़ सकते। महारानी आपके भरोसे कैद से स्वतन्त्र हुई हैं। बड़ी रानी ने भी अबकी बार उनका साथ दिया है।'

'तब तो राज्य के कुछ अधिक सरदार उनके साथ होंगे।' अलीमर्दान ने सम्मति प्रकट की—'सरदार महारानी के साथ हैं या उन्होंने साथ देने का वचन दिया है ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'वचन दिया है। अवसर आते ही रणस्थल पहुँच जायँगे।'

'कुञ्जरसिंह कहाँ है ?'

'उनके विषय में भी निवेदन करने के लिये आया हूं।'

यह कहकर रामदयाल ने ऊपर की ओर एक क्षण के लिये देखकर सिर नीचा कर लिया। कालेखाँ के प्रति इस संकेत को समझकर अलीमर्दान ने कहा—'तुम्हें जो कुछ कहना हो, बेधड़क होकर कहो।'

एक बार कालेखाँ और फिर अलीमर्दान की ओर देखकर रामदयाल बोला—'मैं आपको अच्छी तरह जानता हूं। आप कुंजरसिंह से भलीभांति परिचित हैं। वह इस समय बिराटा की गढ़ी में है। राजा देवीसिंह से शायद अकेले ही लड़ने की चिंता कर रहे हैं।'

अलीमर्दान ने कहा—'बिराटा का सबदलसिंह क्या कुञ्जरसिंह का तरफ़दार है ?'

'नहीं सरकार, उन्होंने कोई वचन नहीं दिया है।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'सच्ची बात कहूँगा। विराटा के राजा को अभी पता भी नहीं है कि कुञ्जरसिंह गढ़ी में है।'

'यह कैसे।' अलीमर्दान ने अचम्भा किया।

रामदयाल बोला—'गढ़ी में देवी का मन्दिर है। पालर की वही पुजारिन लड़की उस मन्दिर में छिपी हुई है और वहीं पर कुञ्जरसिंह है।'

'ऐं!' कालेखाँ ने कहा।

'हैं!' अलीमर्दान को ताज्जुब हुआ।

'हाँ सरकार।' रामदयाल बोला—'मैं अपनी आँखों से देख आया हूं।'

अलीमर्दान ने कुछ सोचकर कहा—'मैं कुछ दिनों से पता लगा रहा था, परन्तु मुझे सफलता नहीं मिली।'

कालेखाँ बोला—'अब तो हुजूर को पक्का पता लग गया। कोई शक नहीं रहा।

'यह सब ठीक है।' अलीमर्दान ने कहा—'परन्तु मैं मन्दिर या मन्दिर की पुजारिन किसी के साथ कोई ज्यादती नहीं करना चाहता।'

कालेखाँ ने आग्रह किया—'मन्दिर या मूर्ति के साथ ज्यादती करने का हुजूर ने कभी इरादा जाहिर नहीं किया, परन्तु मेरी विनती है कि वह पुजारिन तो देवी या मन्दिर तो है नहीं।'

'नहीं कालेखाँ।' अलीमर्दान ने दृढ़ता के साथ कहा—'हिन्दू लोग उस पर विश्वास करते हैं। वह अवतार हो या न हो मैं हिन्दुओं के जी दुखाने वाले किसी काम को न करूँगा।'

रामदयाल हाथ जोड़कर बोला—'दीनबन्धु, वह न तो अवतार है और न कुछ और। मैं अपनी आँखों से सब बातें अच्छी तरह देख आया हूँ। उसका बाप हद दर्जे का लालची है और वह स्वयं कुञ्जरसिंह के पंजे में शीघ्र आने वाली है।'

'क्या?' अलीमर्दान ने आश्चर्य-सूचक प्रश्न किया।

'हाँ सरकार।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'मैंने अपने कानों कुञ्जरसिंह की बातचीत सुनी है। अभी वह उनके हाथों नहीं चढ़ी है, परन्तु औरत है, उसका कुछ ठीक नहीं, कब कुञ्जरसिंह के साथ कहाँ भाग जाय।'

'हुज़ूर को रामदयाल की साख का यकीन करना पड़ेगा।' कालेखाँ ने कहा।

अलीमर्दान थोड़ी देर तक चुप रहा। सन्नाटा छाया रहा।

रामदयाल ने स्तब्धता भङ्ग की। बोला—'सरकार मेरे साथ वेश बदलकर चलें, तो अपनी आँखों सब देख लें।'

अलीमर्दान ने कालेखाँ की ओर गुप्त रीति से देखा। एक क्षण बाद बोला—'मुझे महारानी साहब से बातचीत करने के लिये एक दिन जाना है। वेश बदलकर विराटा भी हो आऊँगा। परन्तु मैं यह चाहता हूं कि रामदयाल महारानी के पास का जाना अभी किसी को मालूम न हो। मैं कालेखाँ को भी साथ ले चलूँगा।'

[५६]

कुञ्जरसिंह को दलीपनगर का मुकुट प्राप्त करने की पूरी आशा थी, परन्तु वह सोचता था कि देवीसिंह बिना अधिकार के सत्ता धारण किये हुये है, इसलिये जी में कड़ी ठेस-सी लगी रहती थी। इसके सिवा सिंहगढ़ पराजय का जब वह कारण ढूंढ़ता था, तब उसका मन यही उत्तर देता था कि यदि रानी ने गड़बड़ न की होती तो पराजय न होती। परन्तु दलीपनगर का राज्य हाथ में आ जाता ? अपनी आशाओं या दुराग्रहों के अनुकूल ही कुञ्जरसिंह ने अपने तर्क और युक्ति के सूत काते।

कुञ्जरसिंह के पास न सेना थी, न सरदार थे और न था उसके पास धन, परन्तु उसके पास निराशाओं की आशा थी। देवीसिंह और जनार्दन के प्रति हृदय में थी कुढ़न और रक्त में शूरता, जो असम्भव की प्राप्ति के लिये भी उद्योग करने की कभी कभी प्रेरणा कर देती थी।

उसने बिराटा का पड़ोस स्वच्छन्द गढ़पतियों को एकत्र करने के लिये ढूंढ़ा था। पूर्व उदाहरण से उसे उत्साह मिला था। परन्तु बिराटा में आने पर उसने अपने मन को टटोला, तो देखा कि वहाँ अब अपने प्रयोजन पर आरूढ़ करने वाली वह निरन्तर लगन नहीं हैं, जो पहले कभी थी। रामदयाल के चले जाने पर उसे कुमुद से फिर एक बार बातचीत करने की अभिलाषा हुई। कोई विशेष विषय न था, कोई अर्थमूलक प्रश्न भी न था, परन्तु बातचीत करने की लालसा प्रबल थी। कुमुद नहीं मिली। प्रयत्न करने पर भी वह उससे न मिल पाया।

तब कुञ्जर अपने दूसरे ध्येय की प्राप्ति या खोज में बिराटा से निकल पड़ा। मुसावली से अपना घोड़ा लेकर और शीघ्र लौटने का वचन देकर वह अपने मित्रों की टोह में चल दिया।

उधर रामदयाल अलीमर्दान और कालेखां को छद्म-वेष में बिराटा लिवा लाया। वहां से उसे शीघ्र जाना पड़ा। जीवन में पहले कभी उसने हिन्दुओं के रीति-रिवाज का अभ्यास न किया था, इसलिये बदली हुई

वेश-भूषा का निर्वाह करना उसे लगभग असंभव प्रतीत हुआ । कालेखाँ को अपने बदले हुये वेश से घृणा थी और वह उसके निर्वाह करने का उपाय बहुत लापरवाही और उद्वेपन से कर रहा था । अलीमर्दान इसलिये इच्छा न होते हुये भी शीघ्र लौटा और रामदयाल के साथ रामनगर चला गया । अभ्यास न होने के कारण उन दोनों को नया वेश भारी आफ़त मालूम हो रहा था, इसलिये पूर्व-निश्चय के प्रतिकूल उन दोनों ने रामनगर पहुंचते-पहुंचते वह वेश करीब-करीब आधा त्याग दिया ।

राव पतराखन ने गढ़ी में प्रवेश के पश्चात उन दोनों के विषय में रामदयाल से पूछा, उसने उत्तर दिया—'महारानी के सरदार हैं । वेश बदले हुये हैं । कुछ सलाह करके अभी भांडेर की ओर कालपी के नवाब से बात करने के लिये लौट जायँगे । मैं नवाब साहब के पास हो आया हूं । सहायता का वचन पक्का हो गया है ।'

इससे पतराखन को बहुत शांति नहीं मिली । बोला—'सलाह-सम्मति यदि शीघ्र स्थिर हो जाय, तो बड़ा सुभीता रहे । लड़ने-भिड़ने का काम पड़े, तब मेरे सिर को आगे देखना, परन्तु अपरिचित आदमियों को इस तरह बेखटके अपने घर में देखकर मुझे परेशानी होती है ।'

रामदयाल ने कहा—'घबराइये नहीं, अब और कोई अपरिचित यहां न आयेगा । बिराटा के राजा ने सहायता का वचन नहीं दिया है; इसलिये शीघ्र वहाँ से धावा होगा और हम लोग उस गढ़ी में चले जायंगे । तब तक तो आपको हमारे आतिथ्य का कष्ट सहन करना ही पड़ेगा ।'

राव पतराखन तुरन्त नरम पड़ गया । बोला—'नही, मेरा यह मतलब न था । आप लोगों का घर है । जब तक जी चाहे, रहें । मैंने केवल अपरिचित लोगों के विषय में कहा था । समय बुरा है, नहीं तो कोई बात न थी । आवश्यकता पड़ने पर बिराटा के ऊपर चढ़ाई आप यहीं से बैठे-बैठे कर सकते हैं ।'

रामदयाल रानियों के पास चला गया। वह अलीमर्दान औ कालेखाँ को पहले ही एक ओर बिठला आया था।

राव पतराखन उस दिन विराटा के ध्वस्त होने की कल्पना प अपने मन को भुलाता रहा।

कभी-कभी जी में सन्देह उठता था—'क्या कालपी का फौजदार सचमुच रानियों की सहायता करेगा?'

[४१]

रामदयाल राव पतराखन से बातचीत करने के उपरान्त रानियों के पास गया।

छोटी रानी से बोला—'नवाब साहब आये हैं।'

उन्होंने पूछा—'सेना लेकर या अकेले ही?'

रामदयाल ने जवाब दिया—'अपने सेनापति के साथ अकेले आये हैं। आपका आशीर्वाद लेकर इसी समय भांडेर चले जायेंगे!'

'अभी क्या सीधे भाण्डेर से आ रहे हैं?' बड़ी रानी ने प्रश्न किया।

'नहीं महाराज।' उसने बिना कुछ सोचे-समझे उत्तर दिया—'विराटा होकर आये हैं।'

छोटी रानी बोलीं—'विराटा के राजा से कोई बातचीत हो आई है?'

रामदयाल ने कहा—'वहाँ वह देवी का दर्शन करने गये थे।'

यह बात कहने के बाद रामदयाल मन में पछताया।

बड़ी रानी बोली—'दर्शन करने गये थे! वहाँ मन्दिर के भीतर कैसे जाने पाये होंगे?'

रामदयाल ने बात बनाई—'उन्होंने दर्शन करने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की, तो मैं उन्हें वेश बदलवाकर लिवा गया, चढ़ौती चढ़ाकर वह तुरन्त वहाँ से चले आये।'

बड़ी रानी ने कहा—'विराटा की वह देव-कन्या वहाँ है?'

रामदयाल झूठ न बोल सका—'हाँ महाराज, वह वहीं है।' फिर तुरन्त एक क्षण बाद उसने कहा—'परन्तु जैसा कुंजरसिंह राजा और देवीसिंह राजा ने झूठमूठ उड़ा रक्खा है, नवाब वैसा आदमी नहीं हैं। वह हमारे लोगों की तरह ही देवी-देवताओं को मानता है।'

बड़ी रानी चुप हो गईं।

छोटी रानी ने कहा—'विराटा के राजा से कोई बातचीत हुई या नहीं?'

'अवसर नहीं मिला महाराज।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'उन्हें भांडेर लौटने की जल्दी पड़ी रही है। यदि बिराटा का राजा हमारा साथ देने से नाहीं भी करेगा, तो इसमें हमारी कुछ हानि नहीं हो सकती। अपना बल बहुत अधिक है। मैं नवाब की पूरी सेना देखकर चकित हो गया हूं।'

छोटी रानी ने कहा—'नवाब को बुला ला। जल्दी बातचीत करके लौट जायें और तुरन्त कार्य-क्रम का निर्णय करके दलीपनगर से उस डाकू को भगा दें।

रामदयाल पर्दे का प्रबन्ध करके अलीमर्दान और कालेखां को लिवा लाया वे दोनों अपने उसी अधूरे वेश में थे। दोनों रानियों ने ओट से उन दोनों को देखा। छोटी रानी को हँसी आई। बड़ी रानी के मन में संदेह जगा।

रामदयाल के मार्फत बातचीत होने लगी।

छोटी रानी—'अब क्या किया जाय? आप ही के भरोसे इतनी हिम्मत करके और कष्ट उठाकर दलीपनगर को छोड़ा।'

अलीमर्दान—'मैं तुरन्त हमला करने के लिये तैयार हूँ दिल्ली से एक संदेशा आनेवाला है। उसी की बाट देख रहा हूं। केवल आठ-दस दिन का विलंब है। तब तक आप अपने सरदार भी इकट्ठे कर लें।'

छोटी रानी—'यह हो रहा है। बिराटा का राजा किस ओर रहेगा।'

अलीमर्दान—'वह यदि आपके पक्ष में न होगा, तो मैंने उसे चकनाचूर करने की ठान ली है।'

छोटी रानी—'आप पहले दलीपनगर या सिंहगढ़ पर आक्रमण करेंगे?'

अलीमर्दान—'दोनों ठिकानों पर एक साथ धावा बोला जायगा। आप क्या बात पसन्द करती हैं?'

छोटी रानी—'ठीक है। मैं स्वयं दलीपनगर पर चढ़ाई करूंगी। आप हमारी सेना के साथ रहें। अपने सेनापति को सिंहगढ़ की ओर भेजें।'

अलीमर्दान—'यही मैंने सोचा है। यदि कार्य-विधि में कोई तब्दीली हुई, तो आपको मालूम हो जायगा।'

छोटी रानी—'अबकी बार तोपों की संख्या बढ़ा दी गई या नहीं।'

अलीमर्दान—'पहले से कहीं अधिक, कई गुनी।'

छोटी रानी—'और सैनिक ?'

अलीमर्दान—'सैनिक भी बढ़ा दिए गए हैं।'

बड़ी रानी ने धीरे से छोटी रानी के कान में कहा—'बदले में नवाब क्या लेंगे ?'

'कुछ नहीं।' छोटी रानी ने कान ही में उत्तर दिया—'वह मेरे राखीबंद भाई हैं।'

बड़ी रानी ने कहा—'पहले तय कर लेना चाहिये। पीछे पैर फैलावेंगे, तो बहुत गड़बड़ होगा।'

'क्या गड़बड़ होगा ?' छोटी रानी ने पूछा।

बड़ी रानी ने उत्तर दिया—'दलीपनगर को अपने अधिकार में कर लेंगे।'

'कर लें।' छोटी रानी ने तीव्रता के साथ, परन्तु बहुत धीरे से कहा—'देवीसिंह डाकू से तो दलीपनगर का छुटकारा हो जायगा। चाहे प्रलय हो जाय, परन्तु देवीसिंह को दलीपनगर से निकालना और जनार्दन को प्राणदण्ड देना है।'

छोटी रानी ने अलीमर्दान को कहला भेजा—'बड़ी महारानी आशीर्वाद देतीं हैं कि आपको विजय-लाभ हो।'

अलीमर्दान ने चरण छूना कहा।

इसके बाद थोड़ा-सा खा-पीकर वे दोनों वहां से चले गये।

[६१

रामनगर से लौटकर एक दिन कालेखां बिराटा में सबदलसिंह के पास आया। राजा ने उसका आगत-स्वागत किया। जितनी देर वह ठहरा, राजा देवीसिंह के विरुद्ध बातें कहता रहा, परन्तु जाते समय तक अपने आने का तात्पर्य नहीं बताया। सबदलसिंह ने सोचा, युद्धों का समय है, कुंजरसिंह की सहायता का वचन नहीं, तो भरोसा दे ही दिया है, नवाब भी शायद उसका पक्षपाती हो; न भी हो, तो शत्रु का शत्रु मित्र के समान होता है। यह कल्पना करके उसने निष्कर्ष निकाला कि देवीसिंह से जो आगामी युद्ध होने वाला है, उसमें नवाब की यथाशक्ति सहायता करने के लिये कहने को आया है। स्पष्ट न कहने पर भी भाव वही था। कालपी के साथ विराटा का क़रीब-क़रीब मातहती का सम्बन्ध था, इसलिये स्पष्ट कथन की ज़रूरत सबदलसिंह ने नहीं समझी। कालेखां से जाने के पहले वह बोला—'हमारे पास आदमी रामगनर के रावसाहब से तो अधिक नहीं हैं, परन्तु हृदय हमारा वैसा लोभी नहीं है। नवाब साहब के लिये हम लोग अपना सिर देने को तैयार हैं।'

'यह तो उम्मीद ही है।' कालेखाँ ने कहा—'जिस समय ज़रूरत पड़ेगी, आपसे देवीसिंह को ललकारने के लिये कहा जायगा।'

'आपने बड़ी कृपा की, जो हमारी कुटी पर आये।' राजा ने विनयपूर्वक कहा—'इतनी-सी बात के लिये कष्ट उठाने की ज़रूरत न थी।'

'पुराने रिश्तों को ताज़ा करने के लिये कभी-कभी मिलने की ज़रूरत पड़ती है।' कालेखां बोला—'एक और भी छोटा-सा काम था, परन्तु उसके बारे में अभी तक इसलिये अर्ज़ नहीं किया था कि और महत्व की बातों के कारण उसका खयाल ही न रहा था। अब याद आ गई।'

विनीत सबदलसिंह ने और भी नम्र होकर पूछा—'मेरे लायक़ और जो कुछ आज्ञा हो कहिये।'

कालेखां ने एक-एक शब्द को तौलकर कहा—'नहीं, ऐसी कोई बड़ी बात नहीं है। वह जो आपके यहां देवी जी के मन्दिर में पालर से एक लड़की भागकर आई है—'

कालेखां रुक गया। सबदलसिंह ने भयभीत होकर प्रश्न किया—'क्या उस बेचारी से कोई अपराध हो गया है ? देखने में तो बड़ी भोली भाली दीन कन्या है।'

'अपराध नहीं बना है।' कालेखां ने नम्रता का आवरण दूर फेंककर कहा—'उसके सौभाग्य में रानी बनना लिखा है, नवाब साहब को उसके सौन्दर्य के मारे खाना-पीना हराम है।'

सबदलसिंह का कलेजा धक् धक् करने लगा। कोई शब्द मुंह से न निकला।

कालेखां ने उसी स्वर में कहा—'आपके लिये कोई संकट की समस्या नहीं है। आपके धर्म पर कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा रहा है। नवाब साहब आप लोगों के मूर्ति-पूजन और लाखों देवी-देवतों के पूजन में कभी खलल नहीं डालते। वह लड़की आपके गांव की भी नही है। आपको कुछ करना नहीं होगा। हम सब ठीक-ठाक कर लेंगे। यह हम कुरान शरीफ़ की क़सम पर आपको यक़ीन दिलाते हैं कि आपके मन्दिर या देवता का किसी तरह का अपमान न किया जायगा और वह लड़की नवाब साहब के महल में रहते हुये भी शौक़ से अपनी पूजा-पत्री करती रह सकती है।'

सबदलसिंह बोला—'मैं इसमें अपने लिये बड़ी भारी आफ़त देख रहा हूं। उस लड़की को लोग देवी का अवतार मानते हैं और वह मेरी जाति की है। मैं क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता।'

कालेखां ने कहा—'आपको कुछ करने की ज़रूरत नहीं। आप चुपचाप अपने घर में बैठे रहिये। हम दोनों आदमी यानी मैं और नवाब साहब उसे एक दिन चुपके से आकर लिवा जायेंगे। वह हंसती-खेलती यहां से चली जायगी। ऐसा हो जाने देने में आपका फ़ायदा है। लड़ाई

में आपको आदमी या रुपया-पैसा न देना पड़ेगा और मौक़ा आने पर आपके पुराने दुश्मन रामनगर के राव को नष्ट करके वह गढ़ी भी आपको दिला दी जायगी।'

सबदलसिंह ने उस समय कोई और उपाय न सोचकर कहा—'हमें थोड़ा सा समय दीजिए। भाई-बन्धों से बात करके बहुत शीघ्र कहला भेजूंगा।'

'कहला भेजियेगा।' कालेखां रुखाई के साथ बोला—'आपके या आपकी जागीर के साथ कोई ज़ुल्म नहीं किया जा रहा है। यदि ज़रा-सी बात के लिये आपने नवाब साहब का अपमान किया, तो नाहक़ आप सब लोग तकलीफ़ पावेंगे।' फिर जाते-जाते उसने कहा—'यदि उस लड़की को आपने कहीं छिपा दिया या भाग जाने दिया, तो अन्त में जो कुछ होगा, उसका दोष मेरे मत्थे न दीजियेगा।'

कालेख़ां यह धमकी देकर चला गया। सबदलसिंह बहुत खिन्नमन होकर एक कोने में बैठे-बैठे सोच-विचार में डूबता-उतराता रहा। जब मन कुछ स्वस्थ हुआ, तब जो-जो बातें कालेख़ाँ के साथ हुई थीं, उनकी एक-एक करके, बारबार कल्पना करके कुढ़ने लगा।

वह नम्र-प्रकृति का मनुष्य था, परन्तु ऐसी प्रकृति के मनुष्यों की तरह जब उनकी नम्रता की अवलेहना होती है, या उनकी विनय को पद-दलित किया जाता है, तब संभव और असंभव प्रयत्नों को सोचने लगा।

उसने सबसे पहले अपने चुने हुए भाई-बन्दों को इस पीड़ा-पूर्ण रहस्य के प्रकट करने और उनसे सलाह करके आगे का कार्य-क्रम निर्णय करने का निश्चय किया।

उसने उसी दिन उन लोगों के साथ बातचीत की। नरपतिसिंह बहुत उत्तेजित और भयभीत था। आशा, विश्वास और सौगंधें दिलाकर उसे कुछ शान्त किया। परन्तु इन दांगियों के निश्चय का कुछ समय तक किसी को पता न लगा। केवल यह देखा गया कि गढ़ी की मरम्मत शीघ्रता के साथ हो रही है और तोपें मार्के के स्थानों पर लगाई जा रही हैं।

[६२]

'अभी दिल्ली दूर है।' एक पुरानी कहावत चली आती है। परन्तु जनार्दन के प्रयत्न से हकीम आग़ाहैदर को दिल्ली की दूरी बहुत कम अखरी। वह खुशी-खुशी जल्दी लौट भी आया और उसे अपनी आशातीत सफलता पर गर्व था। उसने जनार्दन को दिल्ली के प्रधान मन्त्री की चिट्ठी दी, जिसके तीन चौथाई से अधिक भाग में आदाव और अलकाबों की धूम थी और थोड़ी-सी जगह में लिखा था कि आप और कालपी का नवाव बादशाह दाम इक़बालहू की दो आँखें हैं, किसी को भी कष्ट होने से उन्हें दुःख होगा; अलबत्ता इस समय नवाब अलीमर्दान की दिल्ली में बहुत ज़रूरत है, इसलिये वह फ़ौरन दिल्ली बुलाये जाने वाले हैं।

जनार्दन ने बड़े हर्ष के साथ यह चिट्ठी राजा देवीसिंह को सुनवाई। उन्हें कोई हर्ष नहीं हुआ।

बोले—'यह सब अपार पाखण्ड मुझे धोखे में नहीं डाल सकता। पहले मारे सो ठाकुर, पीछे मारे सो फिसड्डी, मैं तो यह जानता हूं। बहुत होगा, तो दिल्लीवाले अपने नवाब की मदद कर देंगे, बस। परन्तु मैं बुन्देलखण्ड में वह आग सुलगाऊँगा, जो चंपत महाराज ने भी न सुलगाई होगी और फिर बहुत गिरती हालत में मराठों को तो बुलाया ही जा सकता है।'

'मैं नाहक़ युद्ध करने के पक्ष में नहीं हूँ।'

मुदित-हर्षित जनार्दन बोला—'मराठे सेंत-मेंत सहायता किसी की नहीं करते। उन्हें बुलाइयेगा, तो वे यहाँ से कुछ-न-कुछ लेकर ही जायेंगे।'

'पंडितजी।' देवीसिंह ने उत्तेजित होकर कहा—'मराठे अगर कुछ लेंगे, तो उन्हें मैं दे दूँगा, परन्तु जीते जी नवाबों और सूबेदारों को सिर नहीं झुकाऊँगा। क्या भूल गये कि अलीमर्दान बिराटा के मन्दिर को नष्ट करने वाला है?'

'नहीं महाराज, मैं नहीं भूला हूँ।' जनार्दन बोला—'परन्तु मेरा एक निवेदन है।'

'कहिये।' राजा ने कहा।

जनार्दन बोला—'थोड़े दिन युद्ध स्थगित रखिये। यदि नवाब दिल्ली चला गया, तो ठीक ही है और यदि न गया, तो रण-भेरी बजवा दीजिये।'

राजा बोले—'मैं ठहरा हूँ, युद्ध न करूँगा, परन्तु तैयारी में कोई कसर नहीं लगाऊँगा। मेरी इच्छा है कि वैरी के घर पर धावा करूँ। उसे यहाँ आने देना और पीछे सँभाल करना बुरी नीति होगी। मैं लोचनसिंह दाऊजू को सिंहगढ़ से बुलाकर ऐसे स्थान पर भेजना चाहता हूं, जहाँ से वह वैरी के घर में घुसकर छापा डाल सकें।'

जनार्दन ने विरोध की इच्छा रखते हुए भी प्रतिवाद नहीं किया। केवल यह कहा—'सिंहगढ़ बहुत महत्त्व-पूर्ण स्थान है, वहाँ किसे भेजियेगा?'

'और सरदार हैं, जो अपने जौहर दिखलाने की अकांक्षा रखते हैं।' राजा बोला—'अबकी बार आपकी भी रण-कुशलता की परीक्षा ली जायगी।'

जनार्दन ने सच्चे हर्ष के साथ कहा—'मैं दयावंत, लड़ना तो नहीं जानता, परन्तु लड़ाई से भागना भी नहीं जानता।'

राजा बोला—'आप दलीपनगर को अपने किसी विश्वासी सेवक या मित्र की निगरानी में छोड़ देना। अबकी बार हम सब लोग अपने समग्र बल से इस धर्म-द्रोही को ठीक कर दें।'

कृतज्ञता-सूचक स्वर में जनार्दन बोला—'मेरा शरीर यदि अन्नदाता की सेवा में नष्ट हो जाय, तो इससे बढ़कर और किसी बात में मुझे सुख नहीं होगा।'

फिर राजा से पूछा—'यदि आज्ञा हो, तो मैं स्वयं विराटा की ओर वास्तविक स्थिति की खोज कर आऊँ? बहुत शीघ्र लौटकर आ जाऊँगा। जासूस लोग बात का बिलकुल ठीक-ठीक पता नहीं लगा पा रहे है।'

'आपको यदि किसी ने पहचानकर पकड़ लिया।' राजा ने उत्तर दिया—'तो मैं यह समझूंगा की दलीपनगर की आधी से अधिक हार हो गई और मेरा दायाँ हाथ टूट गया।'

'और अन्नदाता।' जनार्दन बोला—'संसार में दलीपनगर के नरेश के लिये लोग यह भी कहेंगे कि न मालूम उनके पास अभी कितने और ऐसे स्वामिधर्मी आदमी होंगे।' इस प्रच्छन्न आत्म-श्लाघा पर जनार्दन ज़रा लज्जित हुआ।

परन्तु राजा ने उसे कुछ और बोलने देने के पूर्व ही कहा—'मैं तुम्हारी इच्छा का अवरोध न करूंगा।'

जनार्दन बोला—'महाराज, यदि मैं अपने इस नये काम में सफल हुआ तो भविष्य में मेरे जासूस बहुत अच्छा काम करेंगे।'

[६३]

जिस दिन से कालेखाँ बिराटा से गया, वहाँ के वातावरण में सन्नाटा सा छा गया। एक भ्रांति-सी फैली हुई थी, जिसके विषय में खुलकर चर्चा करने में भी लोगों का मन नहीं जमता था। आने वाले संकट का साफ़ रूप बहुत कम लोगों की समझ में आ रहा था, परन्तु यह स्पष्ट था कि बिराटा निरापद् स्थान नहीं है। खतरे के समय बिराटा-निवासियों का ग्राम त्यागकर उस पार जङ्गल और भरकों में महीनों छिपे रहना कोई असाधारण स्थिति न थी। परन्तु इस समय तक विपद् के ठीक-ठीक रूप की कल्पना को आभास न मिला था, इसलिये घबराहट थी।

नरपतिसिंह को उसका यथासम्भव यथावत् रूप बतलाया गया था। उसे देवी का भरोसा था, परन्तु वह बाहर के भी किसी आश्रय के लिये उद्योग करने की जी में ठान चुका था।

कुमुद से उसने ध्वनि में और अस्पष्टताओं के आवरण में ढककर बात कही। बोला—'दुर्गा ने ही पालर की रक्षा की थी। यहाँ पर भी वह रक्षा करेंगी। मैं एक दिन के लिये दलीपनगर जाऊँगा।' कुमुद से और कुछ न कहकर वह मूर्ति के सामने प्रार्थना करने लगा।

स्पष्ट तौर पर बतलाये बिना भी कुमुद ने बात समझ ली।

गोमती ने मन्दिर के अन्य आने-जाने वालों से जो बिराटा में रहते थे, पूछा। उन्हें ठीक-ठीक कुछ नहीं मालूम था।

एक बोला—'राजा देवीसिंह यहाँ आकर युद्ध करने वाले हैं, उधर अलीमर्दान की तोपें हमारी गढ़ी पर गोले बरसायेंगी।'

सबदलसिंह ने अपने चुने हुए भाई बन्दों को छोड़कर ठीक बात किसी को नहीं बतलाई थी। इस कारण गोलमाल फैला हुआ था। इस विषय को लेकर गोमती और कुमुद में बातचीत होने लगी। नरपतिसिंह ज़रा फ़ासले पर प्रार्थना कर रहा था।

कुमुद ने कहा—'विपद में धीरज रखना चाहिए। दुर्गाजी का भरोसा सबसे बड़ा बल है। दूसरे आश्रय छूँछे हैं।'

गोमती ने पूछा—"अलीमर्दान यहीं से क्यों युद्ध करेगा?"

'उसकी मति फिर गई है, वह बावला है। वह मन्दिर के ऊपर उत्पात किया चाहता है।'

'तभी दलीपनगर के महाराज यहीं आकर युद्ध करना चाहते हैं।'

'तुम्हें कैसे मालूम?'

'मैंने एक गांववाले से सुना है।'

'यह ग़लत है।'

गोमती ने हाथ जोड़कर कहा—'मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिये; ठीक बात क्या है, मैं जानना चाहती हूँ। जो कुछ मुझसे बनेगा, मैं भी करूंगी।'

कुमुद ने आकाश की ओर नेत्र करके उत्तर दिया—'एक बादल उठने वाला है। मन्दिर के ऊपर उपल वर्षा होगी। परन्तु उसका कुछ बिगड़ नहीं सकेगा। देवी का सार्वभौम राज्य है।'

'यह मैं क्या कह सकती हूं?' कुमुद ने उत्तर दिया। फिर एक क्षण ठहर कर बोली—'वह शीघ्र ही अपने ऊपर दुर्गा के क्रोध को बुलावेगा।'

'और महाराज यहाँ आकर युद्ध करेंगे? वह बड़े धर्म-परायण और दुर्गा के भक्त हैं।'

'करें, परन्तु मैं यह नहीं चाहती। इसमें अनर्थ होगा; अनिष्ट होगा।'

गोमती घबराकर बोली—'मां क्यों? धर्म की रक्षा करने में अनर्थ और अनिष्ट कैसा?'

कुमुद ने कहा—'मैं यहाँ खून-खराबी नहीं देखना चाहती। बेतवा का यह शुद्ध सलिल देखो, कैसी शुभ्र धारा है। दोनों ओर कैसा हराभरा जंगल है। चारों ओर कैसा आनन्दमय सुनसान है। कैसी एकांत शान्ति है। मनोहर एकान्तता की गोद में मुस्कराते हुए शिशु-जैसा यह मन्दिर है। उसके ऊपर रक्त-स्राव! कल्पना करने से कलेजा काँपता है।"

कष्ट की इस कल्पना से गोमती का एक रोयां भी न कांपा। अविचलित भाव से बोली—"दुर्गा अपने भक्तों के हृदय में बल और

उल्लास भरें। इस मनोहर स्थान की अवश्य रक्षा होगी। यदि महाराज आ गए, तो रक्त-पात कम होगा; यदि न आए, तो न जाने कितने लोग भेड़-बकरी की तरह यों ही काट डाले जायँगे।'

इतने में नरपतिसिंह प्रार्थना करके उन लड़कियों के पास आ पहुंचा। बोला—'इस समय देवी के भक्तों में सबसे अधिक प्रबल राजा देवीसिंह जान पड़ते हैं। उन्हें दुर्गा का आदेश सुनाने के लिए जा रहा हूँ। अब की बार उन्हें अपने सर्वस्व का बलिदान करके दुष्टों का दमन करना होगा।'

'यह आपसे किसने कहा कि आप राजा देवीसिंह के पास इस याचना के लिये जायँ?' कुमुद ने सिर ऊँचा करके प्रश्न किया।

नरपतिसिंह के उत्तर देने के पूर्व ही गोमती बोली—'न तो इसमें किसी के कहने सुनने की कोई बात है और न यह याचना है। यह दुर्गा की आज्ञा है।'

'नहीं है।' कुमुद ने गंभीर होकर कहा—'देवी की यह आज्ञा नहीं है। देवीसिंह इसके अधिकारी नहीं हैं। वह यदि रक्षा करने आयेगा, तो निश्चय जानो हानि होगी, लाभ न होगा।'

नरपतिसिंह सकपकाया।

गोमती दृढ़ता के साथ बोली—'इसमें देवी का अनिष्ट नहीं हो सकता। राजा का अमंगल हो, तो हो। परन्तु क्षत्रिय को अपने कर्त्तव्य पालन में मंगल-अमंगल का विचार नहीं करना पड़ता। उसे तो प्रयत्न करने-भर से सरोकार है। आप काकाजू राजा के पास अवश्य जायँ, उन्हें लिवा लाएँ और उनसे कहें कि—'

यहाँ गोमती अपने आवेश के द्रुतवेग के कारण स्वयं रुक गई, कुमुद की क्षणिक उत्तेजना शांत हो गई थी। बहुत मीठे स्वर में बोली—'गोमती, तुम्हें व्यर्थ ही कष्ट झेलना पड़ रहा है। मैं नवाब की आँखों में मार डालने योग्य भले ही समझी जाऊँ, क्योंकि दुर्गा की पूजा करती हूँ, परन्तु तुमने किसी का क्या बिगाड़ा है? तुम क्यों यहाँ वन के क्लेशों को नाहक भुगत रही हो? मेरी एक सम्मति है।'

'क्या आदेश है ?' गोमती ने भोलेपन के साथ, परन्तु काँपते हुये स्वर में पूछा।

'तुम दलीपनगर के राजा के पास चली जाओ।' कुमुद ने कहा।

'क्यों ?' नरपति ने पूछा।

'क्यों ?' क्षीण स्वर में गोमती ने प्रश्न किया।

कुमुद ने उत्तर दिया—'तुम रानी हो। वह राजा हैं। तुम्हारे हाथ में उस रात का कंकरण अब भी बँधा हुआ है। भाँवर पड़ना-भर रह गई थी। वह दलीपनगर में हो जायगा। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आगामी युद्ध जो राजा और नवाब के बीच यहाँ होने वाला है, कुशल-पूर्वक समाप्त न होगा। इसलिये मैं चाहती हूं कि गोमती, तुम दलीपनगर चली जाओ। देवी सर्वव्यापिनी है। हम लोग किसी जङ्गल में भजन करेंगे।'

नरपति तुरन्त बोला—'चाहे जो कुछ हो, अबकी बार नवाब के साथ उनका रण मचेगा। राजा सबदलसिंह ने भी निश्चय कर लिया है। मैं रणनिमंत्रण देने राजा देवीसिंह के पास जा रहा हूँ। मुझे यह कार्य सौंपा गया है। वहाँ से लौटकर हम लोग भले ही जङ्गल में चले जायँगे, परन्तु अभी हाल में उसके लिये कोई काफ़ी कारण नहीं समझ में आता। गोमती हमारे साथ चलना चाहे, तो हम बेखटके उसे महलों में पहुँचा देंगे। मैं अकेला नहीं जाऊँगा और भी कई लोग जायँगे।'

तिरस्कार-पूर्ण स्वर में गोमती ने कहा—'मैं स्वयं वहाँ जाऊँगी मेरी बोटी-बोटी चाहे कोई काट डाले, परन्तु मैं ऐसे तो कदापि नहीं जाऊँगी। मैं भी इनके साथ जङ्गल में भजन करने को तैयार हूं।'

कुमुद ने कहा —'तब आप यों ही बहुत-सी खून खराबी कराने के लिये क्यों दलीपनगर जाते हैं ? यदि नवाब इस बात को सुनेगा, तो और भी चिढ़ जायगा।'

'बात तो बिल्कुल ठीक है।' नरपति बोला—'परन्तु राजा सबदलसिंह ने निश्चय कर लिया है और मुझे अपने लोगों का अगुआ बनाया है।

यदि मैं न जाऊँगा, तो और लोग अवश्य जायँगे। न जाने से मेरी बड़ी निन्दा होगी। राजा देवीसिंह सबदलसिंह के अन्य भाई-बन्दों द्वारा न्योता भी पाकर लड़ाई के लिये आवेंगे, परन्तु मुझे इसलिये चुना गया है कि वह आने में किसी प्रकार का विलंव या संकोच न करेंगे।'

गोमती ने जोश के साथ कहा—'आपको अवश्य जाना चाहिये।'

ऊपर की ओर देखकर कुमुद बोली—'अच्छी बात है, जाइये। जो कुछ होना होगा, वह बिना हुये नहीं रुकेगा।'

नरपति बोला—'मैं वहाँ गोमती की बात अवश्य कहूंगा।'

'आवश्यकता नहीं है।' गोमती बोली।

नरपति ने कहा—'केवल इतना कि तुम यहाँ कुशल-पूर्वक हो।'

[६४]

कुमुद की इच्छा न थी कि नरपति दलीपनगर के राजा को आमन्त्रित करने जाय, परन्तु वह उसे दृढ़ता और स्पष्टता के साथ न रोक सकी। शायद कुमुद को स्पष्टता या दृढ़ता उस समय कुछ भी पसन्द नहीं आई। भीतरी इच्छा के इस तरह अवरुद्ध रह जाने के कारण उसका मन चंचल हो उठा, किसी से बातचीत करने की इच्छा न हुई। मन में आया कि इस स्थान को छोड़कर कहीं दूर चले जाँय यह असम्भव था। कुमुद उस स्थान को छोड़कर अपनी कोठरी में चली गई और भीतर से उसने किवाड़ बन्द कर लिये। गोमती ने समझ लिया कि उसके लिये भीतर जाने के विषय में निमन्त्रण नहीं है।

गोमती अकेली मन्दिर की ड्योढ़ी में बैठ गई। दलीपनगर और उसके राजा से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं की कल्पनाएँ मन में उठने लगीं। उन सब कल्पनाओं के ऊपर रह-रहकर उठने वाली अभिलाषा यह थी कि नरपति राजा से यह न कहे कि गोमती बिराटा के बीहड़ में अकेली पड़ी है, उसे लिवा लाओ। इसी समय रामदयाल मन्दिर में आया।

उसे देखकर गोमती को हर्ष हुआ। मुस्कराती हुई उसके पास उठ आई। आतुरता और उत्सुकता के साथ उसने कुशल-मङ्गल का प्रश्न किया।

इस स्वागत से रामदयाल के मन में भीतर ही भीतर एक स्फूर्ति-सी, एक उमङ्ग-सी उमड़ी।

उसने कहा—'मैं तो आपके दर्शन मात्र से सुखी हो जाता हूं। आज यहां कुछ सन्नाटा-सा जान पड़ता है।'

'नरपति काका महाराज के पास दलीपनगर अभी-अभी गये हैं।' गोमती बोली—'कालपी का नवाब इस नगर और मन्दिर को विध्वन्स करना चाहता है। उसके दमन के लिये रण-निमन्त्रण देने के लिये वह गये हैं। तुम्हें महाराज कब से नहीं मिले?'

'मुझे तो हाल हीं में दर्शन हुये थे।'

'कुछ कहते थे ?'

'बहुत कुछ। यहाँ कोई पास में नहीं है।'

'नहीं है। बाहर चट्टान पर चलो। वहां बिलकुल एकान्त है।'

दोनों मन्दिर के बाहर एक चट्टान पर चले गये। बड़े-बड़े ढोंके एक दूसरे से भिड़े हुये धारा की ओर ढले चले गये थे। वहां जाकर वे एक विशाल चट्टान से अटककर खँग गये थे। एक बड़े ढोंके पर गोमती बैठ गई। पेड़ की छाया थी। वहां रामदयाल खड़े-खड़े बातचीत करने लगा।

बोला—'रण की बड़ी भयङ्कर तैयारी हो रही है। नवाब और उसके मित्रों से वह लोहा बजेगा, जैसा बहुत दिनों से न बजा होगा। बिराटा बहुत शीघ्र बड़ी प्रचण्ड आंधी में पड़ने वाला है और कारण बड़ा साधारण-सा है।'

'साधारण-सा !' गोमती ने आश्चर्य प्रकट किया—'तुम्हारा क्या अभिप्राय है !'

रामदयाल आवाज़ को धीमा करके बोला—अलीमर्दान मन्दिर विध्वंस नहीं करना चाहता, कुंजरसिंह की सहायता करना चाहता है और महाराज यहीं आकर कुंजरसिंह को घर दबाना चाहते हैं।'

'कुंजरसिंह की सहायता ! यदि ऐसा है, तो मन्दिर को अपवित्र करने का संकल्प उसने क्यों किया है ?'

'मैंने दलीपनगर में बड़े विश्वस्त सूत्र से सुना है कि वह कुमुद के विषय में कुछ विशेष दुष्प्रवृत्ति रखता है और उसे कुछ प्रयोजन नहीं। यदि वह मन्दिर-भंजक होता, तो पालर का मन्दिर कदापि न छोड़ता।'

'यह क्या कम निन्दनीय है ? मैं तो कुमुद की रक्षा के लिये तलवार हाथ में लेकर अलीमर्दान से लड़ सकती हूं। क्या महाराजा इसे छोटा कारण समझते हैं ? क्या वह नहीं जानते कि कुमुद लोक-पूज्य है और देवी का अवतार है।'

रामदयाल ने अदम्य दृढ़ता के साथ कहा—'लोक-पूज्य तो वह जान पड़ती है। मैंने भी अपने स्वामी की हित-कामना से उस दिन श्रद्धांजलि

चढ़ा दी थी। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि महाराज उसे देवी का अवतार नहीं मानते। वह तो उसकी रक्षा एक हिन्दू स्त्री के नाते करना चाहते हैं और उनका अभिप्राय कुंजरसिंह को सदा के लिये ठीक कर देना है। वह यहां आया करते हैं, ठहरते हैं, आश्रय पाते हैं और न जाने क्या-क्या नहीं होता है? परन्तु आपको सब हाल मालूम नहीं है।'

गोमती इधर-उधर देखकर बोली—'और क्या हाल है रामदयाल?'

उसने उत्तर दिया—'वैसे आप कभी मेरा विश्वास न करेंगी, कोई बात कहूंगा तो आप रुष्ट हो जायेंगी, कदाचित् मुझे दण्ड देने का निश्चय करें। दो-एक दिन में आप स्वयं देख लेना। क्या आपने कभी कुंजरसिंह को कुमुद के साथ अकेले में वार्तालाप करते देखा है? मैं अधिक इस समय कुछ नहीं कहना चाहता।'

गोमती बेतवा की बहती हुई धार और उस पार के जङ्गल की नीलिमा की ओर देखने लगी। थोड़ी देर सोचने के बाद बोली—'मैंने बात करते तो देखा है, परन्तु विशेष लक्ष्य नहीं किया है। मुझे लक्ष्य करके करना ही क्या? कोई अवसर कभी अपने आप सामने आ जायगा, तो देखूंगी।'

'आपने क्या इस बात को नहीं परखा?'

रामदयाल ने प्रश्न किया—'कुमुद किसी न किसीं रूप में हर समय कुंजरसिंह का पक्ष किया करती है। यह बात बिना किसी कारण के है?'

गोमती उत्तर न देते हुए बोली—'आज जब नरपति काकाजू ने महाराज को यहाँ बुला लाने की बात कही, तो उन्होंने विरोध किया। कम-से-कम वह यह नहीं चाहती थीं कि महाराज यहां आवें।'

'मेरी एक प्रार्थना है।' रामदयाल ने हाथ जोड़कर बहुत अनुनय के साथ कहा।

गोमती उस अनुभव के ढंग से तुरन्त आकृष्ट होकर बोली—'क्या है रामदयाल? तुम इतने विह्वल क्यों हो रहे हो?'

रामदयाल ने कांपते हुये स्वर में उत्तर दिया—'सरकार अब यहां न रहें।'

'क्यों ?' गोमती ने पूछा।

रामदयाल ने कहा—'कुञ्जरसिंह यहां आकर अड्डा बनावेंगे। वह नवाब को न्योता देकर आग बरसावेंगे। महाराजा का आना अवश्य होगा। कुञ्जरसिंह और नवाब से उनकी लड़ाई होगी। आपका यहां क्या होगा ?'

'परन्तु मैं दलीपनगर नहीं जा सकती।'

'मैं दलीपनगर जाने के लिये नहीं कहता और भीं तो बहुत से आश्रय-स्थान हैं।'

'कहां ?'

'बहुत-से स्थान हैं। जब शांति स्थापित हो जाय, तब जहां इच्छा हो, वहां आपको पहुंचाया जा सकता है।'

'महाराज क्या कहेंगे ?'

'कुछ नहीं। वह या तो स्वयं आयेंगे या अपने सेनापति अथवा मन्त्री को सेवा में भेजेंगे और मैं भी तो उन्हीं का कृपा-पात्र हूँ।'

'कुमुद को छोड़कर चलना पड़ेगा ?'

'आपको उनके विषय में अपना विचार शीघ्र बदलना पड़ेगा। मैं इस समय कुछ नहीं कहूँगा, आप खुद देख लेना। केवल इतना बतलाये देता हूं कि जहां कुंजरसिंह जायेंगे, वहीं कुमुद जायेंगी।'

'गोमतीं ने त्योरी बदली। परन्तु बोली कोमल कंठ से—'ऐसी अभद्र और अनहोनी बात मत कहो।'

रामदयाल ने बड़ी शिष्टता के साथ कहा—'नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं कहता। कुछ भी नहीं कहा। कुछ नहीं कहूंगा।'

गोमती मुस्कराकर बोली—'नहीं-नहीं, यह नहीं चाहती कि तुम जिस बात को ठीक तरह से जानते हो और उसकी सत्यता में सन्देह करने के लिये कोई जगह न हो, उसे छिपा डालो। परन्तु तुम्हें यह

अच्छी तरह जान रखना चाहिए कि किसके विषय में क्या कह रहे हो।'

रामदयाल ने आंखें नीची करके कहा--'मुझे किसी के विषय में कुछ कहा-सुनी नहीं करनी है। मेरे तन-मन के स्वामी उधर महाराज हैं और इधर आप। मुझे और किसी से वास्ता ही क्या है। आप या महाराज इससे तो मुझे वर्जित नहीं कर सकते और न वंचित रख सकते हैं।'

जैसे कोई हवा में घूमते हुये बोले, उसी तरह गोमती ने कहा—"अभी तो यहां से कहीं दूसरे ठौर जाने की आवश्यकता नहीं मालूम होती रामदयाल, परन्तु स्थान का प्रबन्ध अवश्य किए रहो। अवसर आने पर चलेंगे।'

(६५)

नरपतिसिंह यथा समय दलीपनगर पहुंच गया। विराटा के राजा की चिट्ठी जनार्दन शर्मा के हाथ में रख दी गई। नवाब के पड़ोस में ही दलीपनगर के राजा की सहायता चाहने वाले व्यक्ति के पत्र पर उसे उत्साह मिला। उसने सोचा—'यदि सबदलसिंह साधारण सा ही सरदार है, तो भी अपना कुछ नहीं बिगड़ता, लाभ ही लाभ है।'

नरपतिसिंह से उसने पूछा—'आपकी बेटी आनन्द-पूर्वक हैं ?'

उत्तर मिला—'दुर्गा की दया से सब आनन्द-हीं-आनन्द है। यह जो विघ्न का बादल उठ रहा है, इसे टालकर आप विराटा को बिलकुल निरापद् कर दें।'

जनार्दन ने कहा—'सो तो होगा ही; परन्तु मैं कहता हूँ कि आप लोग पालर ही में क्यों नहीं आ जाते ? पालर ओरछा-राज्य में है और हमारे बाहु के पास है।'

'यह समय बड़ा संकटमय है।' नरपति-बोला—'केवल बीहड़ स्थान कुछ सुरक्षित समझा जा सकता है। जब युद्ध समाप्त हो जायगा, तब निस्संदेह हम लोग पालर लौटने के विषय में सोच सकते हैं।'

'परन्तु विराटा तो कदाचित् खून-खराबी का केन्द्र-स्थान हो जायगा। वह पालर से अधिक सुरक्षित तो नहीं है।'

'जो कुछ भी हो, हम लोग अभी उस स्थान को नहीं छोड़ना चाहते। वहाँ हमारे भाई-बन्द काफ़ी संख्या में हैं। जब वहाँ निर्वाह न दिखलाई पड़ेगा, तब या तो जहाँ आप बतलाते हैं, वहीं चले जायँगे या किसी और स्थान को ढूंढ़ लेंगे।'

जनार्दन ने पूछा—'कुञ्जरसिंह विराटा कब से नहीं आये ?'

'कुञ्जरसिंह ?' नरपति ने आश्चर्य प्रकट किया। 'कुञ्जरसिंह वहाँ आकर क्या करेंगे ? अन्य लोग आये-गये हैं, कुञ्जरसिंह को मैंने वहाँ कभी नहीं देखा।'

'और कौन लोग आये-गये हैं ?' जनार्दन ने प्रश्न किया।

उसने उत्तर दिया—'बहुत लोग आये-गये हैं, किस-किसका नाम गिनाऊँ।'

जनार्दन ने कहा—'उदाहरण के लिये कुञ्जरसिंह का सेनापति तथा रामदयाल इत्यादि।'

नरपति चौंका, बोला—'आपको कैसे मालूम ?'

जनार्दन ने अभिमान के साथ कहा—'यह मत पूछो। महाराज देवीसिंह आँखें मूँदकर राज्य नहीं करते।'

'यह ठीक है।' नरपति बोला—परन्तु देवी के मन्दिर में किसी के आने की रोक-टोक नहीं है। यदि किसी ने आपको कुछ और बनाकर बतलाया है तो वह झूठ है।'

जनार्दन ने कहा—'आपकी चिट्ठी महाराज की सेवा में थोड़ी देर में पेश कर दी जायगी। पालर की घटना के कारण ही हम लोग कालपी के नवाब के विरुद्ध हैं और वह बिराटा के मन्दिर को ध्वंस करने के लिये फिर कुछ प्रयत्न करने वाला है, परन्तु हमारे लक्ष्य कुञ्जरसिंह अधिक हैं, उन्होंने तमाम बखेड़ा खड़ा कर रक्खा है; रानियां भी तो उनका साथ देंगी ? आजकल रामनगर में हैं न ?'

नरपति को यह बात न मालूम थी। आश्चर्य के साथ बोला—'यह सब हम क्या जानें।'

जनार्दन ने एक क्षण विचार करके कहा—'हमारी सेना आप लोगों की सहायता के लिये आयेगी, आप अपने राजा को आश्वासन दे दें। हम महाराजा की मुहर-लगी चिट्ठी आपको देंगे। तब तक हमारी सेना आपके यहाँ पहुँचेगी, यह कुछ समय पश्चात् मालूम हो जायगा।'

नरपति ज़रा आतुरता के साथ बोला—'मैं महाराज से स्वयं मिलकर कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।'

'किस लिये ?' जनार्दन ने आंखें गड़ाकर पूछा।

नरपति ने उत्तर दिया—'वह उनके निज के सुख से सम्बन्ध रखने वाली बात है।'

[६६]

जनार्दन की इच्छा न थी नरपति उसे अपनी पूरी बात सुनाये बिना राजा से मिल ले। परन्तु नरपति के हठ के सामने जनार्दन की आना-कानी न चली। राजा से उसका साक्षात्कार हुआ। राजा को आश्चर्य था कि मेरे निज के सुख से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी कौन-सी कथा कहेगा।

अकेले में बातचीत हुई।

नरपति ने कहा—'उस दिन पालर में प्रलय हो गया होता, यदि महाराज ने रक्षा न की होती।'

'किस दिन ?' राजा ने विशेष रुचि प्रकट न करते हुये पूछा।

नरपति बोला—'उस दिन, जब पालर की लहरों पर देवी की मौज लहरा रही थी और मुसलमान लोग उन लहरों को छेड़ना चाहते थे।'

राजा जरा मुस्कराकर बोले—'मैं पालर के निकट कई लड़ाइयाँ लड़ चुका हूँ, इसलिये स्मरण नहीं आता कि आप किस विशेष युद्ध की बात कहते हैं।'

नरपति ने कहा—'पालर में देवी ने अवतार लिया है।'

'यह मैंने सुना है।'

'वह मेरे ही घर में हुआ है।'

'पं० जनार्दन शर्मा ने बतलाया था। मैं पहले से भी जानता हूँ।'

'जय हो महाराज की ! उसी की रक्षा में महाराज ने उस दिन अपना उत्सर्ग तक कर दिया था।'

राजा ने जरा अरुचि के साथ कहा—'आप जो बात कहना चाहते हों, स्पष्ट कहिये।'

नरपति ने हाथ बांधकर कहा—'उस दिन, जिस दिन पालर में बारात आई थी; उस दिन, जिस दिन स्वर्गवासी महाराज को देवी की रक्षा के लिये अपनी रोग-शय्या छोड़नी पड़ी थी; उस दिन, जब बड़ेगांव से आकर श्रीमान् ने हम सब लोगों को सनाथ किया था।'

राजा मुस्कराये । बोले—'मुझे याद है वह दिन । मैं आपकी बस्ती में घायल होकर मार्ग में अचेत गिर पड़ा था । बहुत समय पश्चात् होश आया था ।'

राजा यह कहकर नरपति के मन की बात जानने के लिये उसकी आंखों में अपनी दृष्टि गड़ाने लगे ।

नरपति उत्साहित होकर बोला—'यदि महाराज उस दिन घायल न हुये होते, तो उसी दिन एक क्षत्रिय के द्वार के बन्दनवारों पर केशर छिटक गई होती और वह क्षत्रिय-कन्या आज दलीपनगर की महारानी हुई होती ।'

राजा को याद आ गई । परन्तु आश्चर्य प्रकट कर के बोले—'वह तो एक ऐसी छोटी-सी घटना थी, कुछ ऐसी साधारण-सी बात रही होगी कि अच्छी तरह याद नहीं आती । बहुत दिन हो गये हैं । तुम्हारा प्रयोज़न इन सब बातों के कहने का क्या है, वह स्पष्ट प्रकार से कह क्यों नहीं डालते ?'

नरपति ने गोमती के पिता का नाम लेते हुये कहा—'उनके घर महाराज की बरात आई थी । उस कन्या के हाथ पीले होने में कोई विलम्ब नहीं दिखलाई पड़ता था । ठीक उस घर के सामने महाराज अचेत हो गये थे । हम लोग औषधोपचार की चिन्ता में थे और चाहते थे कि स्वस्थ हो जाने पर पाणि-ग्रहण हो जाय । परन्तु सवारी स्वर्गवासी महाराज के साथ दलीपनगर चली गई । उसके उपरान्त घटनाओं के संयोग से फिर इस चर्चा का समय ही न आया । वह क्षत्रिय-कन्या इस समय बिराटा में दुर्गा के मन्दिर में हम लोगों के साथ है । महाराज शीघ्र चलकर उसे महलों में लिवा लायें और विवाह की रीति भी पूरी करलें ।'

'आजकल ।' राजा ने ज़रा उत्तेजित होकर कहा—'मैं युद्ध और प्रजा की रक्षा के साधनों की चिन्ता में इतना अधिक उलझा रहता हूं कि ऐसी मामूली बातों का स्मरण रखना या स्मरण करना बड़ा कठिन है ।'

नरपति आग्रहपूर्वक बोला—'मैं अन्नदाता को स्मरण कराने आया हूँ।'

राजा ने धीमे स्वर में और ज़रा लज्जा के साथ पूछा—'आपको किसने भेजा है?'

'बिराटा के राजा ने।' नरपति ने नम्रता के भीतर छिपे हुये अभिमान के साथ कहा।

राजा ने पूछा—'यह बात जो तुम अभी-अभी कह रहे थे, क्या इसे भी बिराटा के राजा साहब ने कहलवाया है?'

नरपति बोला—'नहीं। यह तो मैं स्वयं कह रहा हूं महाराज, वाग्दत्ता क्षत्रिय-कन्या कितने दिनों इस तरह जङ्गलों-पहाड़ों में पड़ी रहेगी?'

'वाग्दान किसने किया था?' राजा ने पूछा।

नरपति विना संकोच के बोला—'यह तो महाराज जानें, परन्तु इतना मैं जानता हूँ कि वह महाराज की रानी हैं। केवल भांवर की कसर है। यदि उस दिन युद्ध न हुआ होता, तो विवाह को कोई रोक नहीं सकता था और आज वह महलों में होती। क्या महाराज को कुछ भी स्मरण नहीं है? शायद उस दिन के आघातों के कारण स्मृति पटल से वह बात हट गई है।'

राजा हिल-सा उठा, जैसे किसी ने कांटा चुभा दिया हो। सोचने लगा, एक क्षण बाद बोला—'मुझे इन बातों के सोचने का अवकाश ही नहीं रहा है। सिपाही आदमी हूं। सिवा रण और तलवार के और किसी बात का बहुत दिनों कोई ध्यान नहीं रह सकता है और जिस सम्बन्ध के विषय में तुम कह रहे हो, वह राजाओं का राजाओं के साथ होता है और लोगों के सम्बन्ध करने की भी मनाही नहीं। यदि कोई पवित्र चरित्र कन्या—जो शुद्ध कुल उत्पन्न हुई हो, माता-पिता दरिद्र क्यों न रहे हों—हमारे महलों में आना चाहे, तो [illegible] न डाली जायगी।

परन्तु इस बात का ख़याल रखना चाहिये कि ऐसी-वैसी औरतें हमारे यहां नहीं धँसने दी जातीं।'

नरपति कुछ कहना चाहता था, परन्तु सन्न-सा रह गया, जैसे किसी ने गला पकड़ लिया हो।

राजा ने कहा—'मुझे याद पड़ता है कि एक ठाकुर उस नाम के पालर में रहते थे। उनकी कन्या का सम्बन्ध मेरे साथ स्थिर हुआ था, परन्तु इसका क्या प्रमाण है कि यह वही कन्या है ?'

नरपति के सिर से एक बोझ-सा हट गया। प्रमाण प्रस्तुत करने के उत्साह और आग्रह से बोला—'मैं सौगंध के साथ कह सकता हूँ, मेरे सामने वह उत्पन्न हुई थी। अठारह वर्ष से उसे खाते-खेलते देखा है। ऐसी रूपवती कन्या बहुत कम देखी-सुनी गई है। महाराज ने भी तो विवाह-सम्बन्ध कुछ देख-समझकर किया होगा।'

राजा मानो लाज में डूब गया। परन्तु एक क्षण में संभलकर दृढ़ता के साथ बोला—'मैं भोग-विलास के पक्ष में नहीं हूँ। यह समय दलीपनगर के लिये बड़ा कठिन जान पड़ता है। इस समय निरन्तर युद्ध करने की इच्छा मन में है, उसी में हम सबका त्राण है। जब अवकाश का समय आवेगा, तब इन बातों की ओर ध्यान दूंगा।'

फिर बेफ़िक्री की सच्ची मुस्कराहट के साथ कहा—'अर्थात यदि लड़ते-लड़ते उसके पहले ही किसी समय प्राण समाप्त न हो गया, तो।'

इस मुस्कराहट के भीतर किसी भयंकर दृढ़ता की झलक थी। नरपति उससे सहम गया।

धीरे से बोला—'मेरी यह प्रार्थना नहीं है कि महाराज इसी समय चलकर लिवा लावें। मेरी विनती केवल यह है कि ज्योंही अवकाश मिले, महलों की शोभा बढ़ाई जाय।'

फिर किसी भाव से प्रेरित होकर कहने लगा—'इस समय बिराटा पर संकट है। न-मालूम कौन कहाँ भटकता फिरे, इसलिये अन्नदाता, मेरे इस कहने की ढिठाई को क्षमा करें कि स्वयं न जा सकें, तो अपने किसी

प्रधान कर्मचारी को कुछ सेना के साथ भेज दें। डोले का प्रबन्ध विराटा में कर दिया जायगा। यहां शीघ्र बुलवा लिया जाय।'

'क्या उस लड़की ने बहुत आग्रह के साथ यह बात कहलवाई है?' राजा ने कुतर्क के स्वर में पूछा।

नरपति का सारा शरीर उत्तेजित हो गया। रुँधे हुए गले से बोला—'न महाराज। उसने तो निषेध किया था। मैंने ही अपनी ओर से प्रार्थना की है। वह बड़ी अभिमानिनी क्षत्रिय-बालिका है।'

राजा ने सांत्वना-सी देते हुए कहा—'नहीं-नहीं। मैं कोई रोक-टोक नहीं करता हूं। यदि उसकी इच्छा हो, तो वह चली आवे, तुम भेज दो। परन्तु यह समय भांवर के लिये उपयुक्त नहीं है।'

नरपति ने सिर नीचा कर लिया।

राजा ने कहा—'अथवा अवकाश मिलने पर, अर्थात् जब युद्धों से निबट जाऊँगा और कहीं कोई विघ्न बाधा न रहेगी, तब मैं ही आकर देख लूंगा और जो कुछ उचित होगा, अवश्य करूंगा।"

इसके बाद बिराटा से सम्बन्ध रखने वाली राजनीतिक चर्चा पर बातचीत होने लगी। राजा ने अंत में नवाब के खिलाफ़ बिराटा को सहायता देने और सेना लेकर आने का वचन देकर नरपति को विदा किया।

[६७]

नरपति दलीपनगर से लौट आया। बिराटा के राजा को उसने यह संतोष-जनक समाचार सुनाया कि बहुत शीघ्र राजा देवीसिंह की सेना सहायता के लिये आवेगी—अर्थात् आवश्यकता पड़ते ही।

परन्तु जिस समय नरपति अपने घर—बिराटा के द्वीपवाले मंदिर में—आया, चेहरे पर उदासी थी।

रामदयाल उस समय वहां न था। कुमुद और गोमती थीं।

मन्दिर की दालान में बैठकर नरपति ने कुमुद से कहा—'मन्दिर की रक्षा तो हो जायगी।''

कुमुद ने लापरवाही के साथ कहा—'इसमें मुझे कभी सन्देह नहीं रहा है। दुर्गा रक्षा करेगी।"

'राजा देवीसिंह ने भी वचन दिया है।" प्रतिवाद न करते हुए नरपति बोला।

गोमती का मुख खिल उठा। गौरव के प्रकाश से आँखें चंचल हो उठीं।

गोमती ने कुमुद से धीरे से कहा—'तब यहाँ से कहीं और जाने की अटक न पड़ेगी।'

कुमुद निश्चिन्त से भाव से बोली—'अटक क्यों पड़ने लगी? और यदि पड़ी भी, तो यह नदी और अग्रवर्ती वन सब दुर्गा के हैं।'

गोमती को बुरा लगा। नरपति से सरलता के साथ पूछा—'दलीपनगर में तो बड़ी भारी सेना होगी काकाजू?'

'हाँ, है।' नरपति ने उत्तर दिया—'बड़ा नगर, बड़े लोग और बड़ी-बड़ी बातें।'

गोमती आँख के एक कोने से देखने लगी। कुमुद ने कहा—'राजा ने गोमती के विषय में पूछा था?'

गोमती सिकुड़कर कुमुद के पीछे बैठ गई। नरपति ने उत्तर दिया—'राजा ने नहीं

कुमुद ने कहा—'आपको ज्यादा कहना पड़ा था या उन्हें सब बातों का तुरन्त स्मरण हो आया था ?'

नरपति ने कुछ उत्तर नहीं दिया। कुछ सोचने लगा। गोमती का हृदय धड़कने लगा। कुमुद बोली—'राज्य के कार्यों में उलझे रहने के कारण कदाचित् कुछ देर में स्मरण हुआ होगा। राजा ने क्या कहलवा भेजा है ?'

नरपति राजदूत के कर्तव्यों और कैंड़ों से अपरिचित था। उत्तर दिया—'मुझे तो क्रोध आ गया था। पराई जगह होने के कारण संकोच-वश कुछ नहीं कह सका, परन्तु कलेजा राजा की बातों से धड़कने लगा था। वह सब जाने दो। इस समय तो हम लोगों को इतने पर ही सन्तोष कर लेना चाहिये कि राजा इस स्थान की रक्षा करने के लिये एक-न-एक दिन—और शीघ्र ही—अवश्य आवेंगे।'

परन्तु कुमुद ने पूरी बात को उखाड़ने का निश्चय कर लिया था, इसलिये बोली—'क्या राजा होते ही वह यह भूल गये कि उस दिन पालर में उनकी बरात गई थी, वंदनवार सजाये गये थे, स्त्रियों ने कलश रक्खे थे, मंडप बनाया गया था और गोमती के शरीर पर तेल चढ़ाया गया था ? आपने क्या उन्हें स्मरण नहीं दिलाया ?'

'मैंने इन सब बातों की याद दिलाई थी।' नरपति ने जवाब दिया—'परन्तु उन्होंने कोई ऐसी बात नहीं की, जिससे मन में उमंग उत्पन्न होती। वह तो सब कुछ भूल से गये हैं।'

गोमती पसीने में तर हो गई। सिर में चक्कर-सा आने लगा।

'उन्होंने क्या कहा था ?' कुमुद ने पूछा।

'बोले।' नरपति ने उत्तर दिया—'राज-काज की उलझनों में स्मरण नहीं रह सकता। यदि वह आना चाहे और वही हो जिसके साथ पालर में सम्बन्ध होने वाला था, तो कोई रोक-टोक न की जायगी। मैं स्वयं न आ सकूँगा। सेना लेकर जब बिराटा की रक्षा के लिये आऊँगा, तब जैसा कुछ उचित समझा जायगा करूँगा।'

नरपति के मन पर राजा की तत्सम्बन्धी वार्ता सुनकर जो भाव अंकित हुआ, उसे उसने अपने शब्दों में राजा की भाषा का रूप देकर प्रकट किया।

कुमुद बोली—'वह इतनी जल्दी भूल गये! राजपद और राजमद क्या मनुष्य को सब-कुछ भूल जाने के लिये विवश कर देते हैं! जैसे क्षत्रिय वह हैं, उनसे कम कुलीन क्या यह दीन क्षत्रिय-बालिका है?'

'वह तो कहते थे।' नरपति ने तुरन्त उत्तर दिया—'कि राजाओं का सम्बन्ध राजाओं में होता है।'

गोमती चीख उठी। चीख मारकर कुमुद से लिपट गई। नरपति ने देखा, पसीने में डूब-सी गई और शायद अचेत हो गई है। पंखा ढूँढ़ने के लिये अपनी कोठरी में चला गया।

कुमुद ने गोमती को धीरे से अपनी गोद की ओर खींचा। वह अचेत न थी, परन्तु उसके मन और शरीर को भारी कष्ट हो रहा था।

कुमुद का जी पिघल उठा। बोली—'गोमती, इतनी-सी बात से ऐसी घबरा गई! इतनी अधीर मत होओ। न मालूम महाराज ने क्या कहा है और काकाजू ने क्या समझा है। वह सेना लेकर थोड़े दिनों में यहाँ आ ही रहे हैं। यहाँ सब बात यथावत् प्रकट हो जायगी। मुझे आशा है, राजा तुम्हें अपनायेंगे।'

गोमती कुछ कहना चाहती थी, परन्तु उसका गला बिलकुल सूख गया था, इसलिये एक शब्द भी मुंह से न निकला।

इतने में नरपति पंखा लेकर आ गया। कुमुद ने कहा—'आप भोजन करें, मैं तब तक हवा करूंगी।'

'न, यह न होगा।' नरपति बोला—'देवी इस लड़की को पंखा झलेंगी! मैं झले देता हूं।'

कुमुद ने कहा—'अकेले में उससे कुछ कहना भी है।'

पंखा वहीं रखकर नरपति कोठरी में चला गया।

पंखा झलते हुए कुमुद बोली—'शांति और धैर्य के साथ उनके ससैन्य आने की बाट जोहनी ही पड़ेगी। वह मन्दिर में अवश्य आवेंगे। मैं यहां पर रहूं या कहीं चली जाऊँ, तुम बनी रहना। वह तुम्हें यहां अवश्य मिलेंगे। निराश मत होओ।'

पंखे की हवा से शरीर की भड़क शान्त हुई। कुमुद को पंखा झलते देखकर गोमती को बोलने का विशेष प्रयत्न करना पड़ा।

सिसकते हुए धीरे से बोली—'मुझे यहां छोड़कर कहीं न जा सकोगी। मेरे मन में अब और कोई विशेष इच्छा नहीं है। जब तक प्राण न जायें, तब तक चरणों में ही रखना।'

कुमुद की पूर्व रुलाई तो पहले ही चली गई थी, अब उसके मन में दया उमड़ आई। कहा—'जब तक राजा तुम्हें स्वयं लेने नही आते, तब तक तुम्हें वहां अपने आप जाने के लिये कोई न कहेगा। परन्तु तुम्हें यह न सोचना चाहिए कि उन्होंने किसी विशेष निठुराई के वश होकर इस तरह की बातें कही हैं।'

गोमती चुप रही।

कुमुद एक क्षण सोचकर बोली—'यदि हम लोगों को यहां से किसी दूसरे स्थान पर जाना पड़ा, तो अवश्य हमारे साथ रहना। हमें आशा है, राजा ससैन्य आएँगे, परन्तु यह आशा बिलकुल नहीं है कि उनके आने तक हम लोग यहां ठहरे रहेंगे। उनके आने की खबर मिलने के पहले नवाब अपनी सेना इस स्थान पर भेजने की चेष्टा करेगा। हम लोगों को शायद बहुत शीघ्र ही यह स्थान छोड़ना पड़ेगा।'

गोमती ने साथ ही रहने का दृढ़ निश्चय प्रकट किया।

[६८]

दलीपनगर का राज्य उन दिनों भँवर में फँसा हुआ-सा जान पड़ता था। राजा देवीसिंह का अधिकार अवश्य हो गया था, परन्तु उसकी सत्ता सबों ने नहीं मानी थी। कोई-कोई खुल्लम-खुल्ला विरोध कर देते थे और बहुतों के भीतर-भीतर प्रतिकूलता की लहरें उठ रही थीं। जनार्दन शर्मा, हकीमजी और लोचनसिंह-सदृश लोग नये राजा के दृढ़ पक्षपाती थे, परन्तु अनेक प्रमुख लोग विपरीत भाव का प्रदर्शन न करते हुए भी कोई ऐसा काम न कर रहे थे, जिससे स्पष्ट तौर पर यह विश्वास होता कि वे देवीसिंह के सहायक हैं। माल-विभाग और सेना को देवीसिंह बहुत ध्यान के साथ सुधार रहा था, परन्तु बरसों की बिगड़ी हुई संस्थाओं का ठिकाने लगाना कुछ विलम्ब का काम होता है।

उधर कुञ्जरसिंह बिगड़े-दिल सरदारों को अपनी ओर जुटाने में दत्तचित्त था। रानियों की ओर से भी परिश्रम जारी था। जो लोग देवीसिंह के विरुद्ध थे, वे यह जानते थे कि रानियों को कालपी के फ़ौजदार की सहायता मिल रही है। उन्हें यह भी मालूम था कि यह सहायता कुञ्जरसिंह के लिये अप्राप्य है, परन्तु वे लोग यह विश्वास करते थे कि नवाव कुञ्जरसिंह के साथ पुरुष होने के कारण मैत्री की सन्धि ज्यादा जल्दी करेगा। इसलिये उन्होंने सहायता का वचन तो रानियों को दे दिया, परन्तु मन के भीतर कुंजरसिंह के लिये फाटक बिलकुल बन्द नहीं किये। यह कहा कि नवाव को आपके साथ होते देखकर हम लोग आपके साथ हो जायेंगे। नहीं, नहीं की। वचन भी नहीं दिया।

कुञ्जरसिंह पर इसका बहुत कष्ट-दायक प्रभाव पड़ा। वह कुछ दिनों आशा और निराशा के बीच में भटकता हुआ अन्त में बहुत थोड़ी-सी आशा मन में लिये हुये बिराटा लौट आया। उस समय नरपति को दलीपनगर से लौटे हुये दो-एक दिन हो चुके थे।

संध्या के पूर्व ही कुंजरसिंह मंदिर में आ गया। उसे देखते ही गोमती अपनी कोठरी में चली गई। कुमुद ने देखा, कुञ्जर का चेहरा बहुत उतरा हुआ है।

धीरे-धीरे पास जाकर ज़रा गम्भीर भाव से कुमुद ने कहा—'आप थके मांदे मालूम होते हैं। क्या दूर से आ रहे हैं ?'

'हाँ, दूर से आ रहा हूं।' कुञ्जरसिंह ने थके हुये स्वर में जवाब दिया—'आशा नहीं कि अब की बार बिराटा छोड़ने पर फिर कभी लौटकर आऊँगा।'

दुःख का कोई प्रदर्शन न करके कुमुद ने सहज कोमल स्वर में कहा—'जब तक आप यहां हैं, इस दालान में डेरा डालें।'

दालान में अपना सामान रखकर कुञ्जरसिंह बोला—'सुनता हूं, कुछ दिनों में विराटा का यह गढ़ और मन्दिर दलीपनगर के राजा देवीसिंह के शिविर बन जायँगे।'

'उस दिन के लिये हम लोग कदाचित् यहां नहीं बने रहेंगे।' कुमुद ने धीरे से कहा।

कुञ्जर को नरपतिसिंह का ख्याल आया। पूछा—'काकाजू कहां हैं?'

'किसी काम से उस पार गांव गये हैं। आते ही होंगे। आपको नहीं मिले? आप तो गांव में ही होकर आये हैं?' कुमुद ने उत्तर दिया।

कुञ्जरसिंह ने ज़रा उत्तेजित स्वर में कहा—'अब यह गांव देवीसिंह को अपने यहां बुला रहा है। मैं और देवीसिंह एक स्थान पर नहीं रह सकते। इसलिये अलग होकर आया हूं। यदि गांव में ही किसी से बतबढ़ाव हो पड़ता, तो यहां तक दर्शनों के निमित्त न आ पाता।'

कुमुद ने पूछा—'राजा देवीसिंह कालपी के नवाब का दमन करने के लिये इस ओर आवेंगे, इसमें आपको क्या आक्षेप है।'

कुञ्जरसिंह ने उत्साह के साथ उत्तर दिया—'यह मेरे बड़े सौभाग्य की बात है कि कम-से-कम आपके हृदय में तो मेरे लिये थोड़ी सी सहानुभूति है। वैसे इस अपार संसार में मेरे कितने हितू हैं ?'

कुमुद ने द्वार की ओर देखकर कहा—'अब तक काकाजू नहीं आये। न-जाने कहां देर लगा दी है।'

कुञ्जर ने इस मंतव्य के विषय में कुछ न कहकर, अपनी ही चर्चा जारी रक्खी—'कालपी का नवाब मेरा शत्रु है, मैं उसके विरुद्ध सदा खड्ग उठाये रहने को तैयार हूँ। परन्तु मैं यह कैसे भूल सकता हूँ कि देवीसिंह अनधिकार चेष्टा से, अन्याय से, छल-कपट से मेरी गद्दी पर जा बैठा है? देवीसिंह का प्रतिकार मेरे लिये उतना ही आवश्यक है, जितना कालपी के नवाब का—'

बात काटकर कुमुद बोली—'मैं ज़रा बाहर से देखती हूं कि पिताजी आ रहे हैं या नहीं और उन्हें कितनी देर है। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ है। दूर तक का आदमी दिखलाई पड़ सकता है।'

कुमुद बारीकी से गोमती की कोठरी की ओर निगाह दौड़ाती हुई दरवाज़े के बाहर हो गई।

कुञ्जरसिंह भी पीछे-पीछे गया; परन्तु उसने यह न देख पाया कि गोमती भी अपनी कोठरी छोड़कर चुपचाप पीछे-पीछे हो ली है।

बाहर जाकर कुमुद ने देखा कि नरपति के लौट आने का कोई लक्षण नहीं। बाहर ही ठिठक गई। पूर्व की ओर के वन की रेखा को परखने लगी। इतने में कुञ्जरसिंह वहां आ गया।

हाथ जोड़कर बोला—'मैं देवीसिंह का विरोधी हूं, इसमें यदि आपको कोई बात खटकती हो, तो आज से सम्पूर्ण विरुद्ध भाव को हृदय के भीतर से धोकर बहा सकता हूं परन्तु यदि मैं आपको विश्वास करा दूं कि कपट और अन्याय से देवीसिंह मेरे राज्य का अधिकारी हुआ है, तब भी आप क्या उसका साथ देने की आज्ञा देंगी? यदि ऐसी अवस्था में भी अपना हक़ छोड़ देने का आदेश होगा, तो वह आज्ञा भी शिरोधार्य होगी।'

कुमुद ने आग्रह के साथ कहा—'हाथ मत जोड़िये? यह अच्छा नहीं मालूम होता। आप राजकुमार हैं।'

कुञ्जर अधिकतर आग्रह के साथ बोला—'राजकुमार नहीं हूं—कम से-कम आपके समक्ष में कुछ भी नहीं हूँ, केवल सेवक हूं, भक्त हूं।'

कुमुद ने कहा—'जब तक काकाजू नहीं आते, चलिये, उस चट्टान पर बैठकर आपसे लड़ाइयों की कुछ चर्चा सुनूँ। हम लोगों को यहां संसार का और कोई वृत्तांत सुनने को नहीं मिलता। काकाजू हाल में दलीपनगर गये थे।'

परन्तु अन्तिम बात के मुँह से निकलते ही कुमुद ने अपना होठ काट लिया, वह इस बात को कहना नहीं चाहती थी। न-मालूम कैसे निकल पड़ी ?

जिस चट्टान पर बैठने की कुमुद ने इच्छा प्रकट की थी, वह पास ही थी। कुंजर उसके नीचे की ओरवाली ढाल पर जा बैठा और कुमुद उसकी टेक पर। दोनों की पीठ मन्दिर के द्वार की ओर थी।

कुंजर ने पूछा—'काकाजू दलीपनगर किस लिये गये थे ?'

'आपको तो मालूम ही होगा।' कुमुद ने उत्तर दिया—'मेरी इच्छा न थी कि वह जाते, परन्तु यहां के राजा ने उन्हें हठ करके भेजा। इस समय विराटा को सहायता की बड़ी आवश्यकता है।'

इसमें हर्ज ही क्या हुआ ?' कुंजर ने कहा—'विराटा इस समय संकट में है। मुझ-सरीखे लोग यदि उसकी सहायता नहीं कर सकते, तो जो उसकी सहायता कर सकते हैं, उनके पास तो निमंत्रण जायगा ही; परन्तु यदि आपकी कृपा हुई, तो देवीसिंह के बिना मैं अकेला ही बहुत कुछ करके दिखलाऊँगा।'

कुमुद ने कोई उत्तर नहीं दिया।

कुंजर बोला—'आगामी युद्ध में, ऐसा जान पड़ता है, विराटा का राजा देवीसिंह का साथ देगा। ऐसी अवस्था में मेरा यहाँ आना अब असम्भव होगा। क्या विराटा का राजा किसी प्रकार मेरी ओर हो सकता है ?'

कुमुद के उत्तर देने के पहले तुरन्त कुंजर ने कहा—'यह असम्भव है। सबदलसिंह जानते हैं कि मैं कालपी की सेना का मुक़ाबला करने में उनकी अच्छी सहायता नहीं कर सकता हूं। वह क्यों मेरा साथ देने लगे ? और फिर उन्होंने स्वयं देवीसिंह को बुलाया है।'

निःश्वास परित्याग कर कुंजरसिंह बोला—'अब देवीसिंह के राज्य की अखण्डता में कोई सन्देह नहीं, अर्थात् यदि वह कालपी के नवाब को पराजित कर सका।'

फिर तुरन्त आतुरता के साथ उसने कुमुद के पैरों की ओर हाथ बढ़ाते हुये कहा—'यदि मैं इन चरणों की रक्षा में अपना सब कुछ विसर्जन कर सकूं, इसी सामने वाली धार में, इस भयंकर दह में यदि किसी दिन मुझे वह प्रयत्न करते हुये विलीन हो जाना पड़े, तो यही समझूंगा कि दलीपनगर का क्या, सारे संसार का राज्य मिल गया। क्या मुझे इतने की—केवल इतने-भर की—आज्ञा मिल जायगी ? दलीपनगर का कोई भी राज्य करे, संसार किसी के भी अधिकार में चला जाय, परन्तु यदि मुझे इन चरणों में रहने दिया जाय, तो मुझे सब कुछ मिल गया।'

कुमुद चुप थी। बेतवा के पूर्वीय किनारे को जल-राशि छूती हुई चली जा रही थी। अस्ताचलगामी सूर्य की कोमल सुवर्ण-रश्मियां बेतवा की धार पर उछल-उछलकर हँस-सी रही थीं। उस पार के वन-वृक्षों की चोटियों के सिरों ने दूरवर्ती पर्वत की उपत्यका तक श्यामलता की एक समरस्थली-सी बना दी थी। उस सुन्दर सुनसान में कुंजरसिंह के शब्द वज्र-से गये।

कुमुद ने कहा—'हम लोगों का कुछ ठीक नहीं, कब तक यहां रहें, कब यहां से चले जायँ और कहां जाकर रुकें।'

'इसमें मेरे लिये कोई बाधा नहीं।' कुंजरसिंह उमंग के साथ बोला—'आप यहां न रहें, यह मेरी पहली प्रार्थना है। दूसरी प्रार्थना यह है कि आप जहां भी जायँ, मुझे साथ रहने की अनुमति दें। बुरा समय आ रहा है। यदि साथ में एक सैनिक रहेगा, तो हानि न होगी।'

कुमुद ने बहती हुई धार की ओर देखते हुये कहा —"दुर्गा के सेवकों को कभी कष्ट नहीं हो सकता । जब कभी मनुष्य को दुःख होता है, अपने ही भ्रम के कारण होता है । यदि मन से भ्रम न रहे, तो उसे किसी का भय न रहे ।"

'धर्म का यह ऊँचा तत्त्व किसे मान्य न होगा ?' कुंजरसिंह ने कहा—'फिर भी एक दिन, परन्तु दृढ़, अत्यन्त दृढ़ भक्त की यह विनती तो स्वीकार करनी ही पड़ेगी ।'

कुमुद चुप रही ।

कुंजरसिंह किसी भाव के प्रवाह में बहता हुआ-सा बोला—'यदि आपने निषेध किया, तो मैं आज्ञा का उल्लंघन करूँगा; यदि आपने अनुमति न दी, तो मैं अपने हठ पर अटल रहूंगा—मैं छाया की तरह फिरूंगा । पक्षियों की तरह मड़राऊँगा । चट्टानों की तली में, पेड़ों के नीचे, खोहों में, पानी पर, किसी-न-किसी प्रकार बना रहूँगा । आपको भ्रकुटि-भंग का अवसर न दूंगा, परन्तु निकट बना रहूंगा । साथ रक्खूंगा केवल अपना खड्ग । समय आने पर दुर्गा के चरणों अपना मस्तक अर्पण कर दूंगा ।'

'राजकुमार!' कांपते हुये गले से कुमुद ने कहा ।

'आज्ञा ?' पुलकित होकर कुञ्जर बोला ।

कुमुद ने उसी स्वर में कहा—'आपको इतना बड़ा त्याग नहीं करना चाहिये ।'

'कितना बड़ा ? कौन-सा ?' कुँजर धारा-प्रवाह के साथ कहता चला गया—'नवाब से लड़ना धर्म है । धर्म की रक्षा करना कर्तव्य है । कर्तव्य पालन करना धर्म है । आपकी आज्ञा का पालन करना ही धर्म, कर्तव्य और सर्वस्व है । यदि इन चरणों की कृपा बनी रहे, तो मैं संसार-भर की एकत्र सामर्थ्य को तुच्छ तृण के समान समझूं, मुझे कुछ न मिले; संसार भर मुझे तिरस्कृत, बहिस्कृत कर दे, परन्तु यदि चरणों की कृपा बनी रहे, तो, मैं समझूँ कि देवीसिंह मेरा चाकर है, नवाब मेरा गुलाम है और संसार भर मेरी प्रजा है ।'

कुमुद ने मुस्कराकर, परन्तु दृढ़ता के साथ इस प्रवाह का निवारण करते हुये कहा —'धीरे से, धीरे से। इतने जोश की बात कहने की आवश्यकता नहीं।'

कुंजर धीरे से परन्तु उसी जोश के साथ बोला—'तब अनुमति दीजिये, आज वरदान देना होगा।'

कुमुद ने लम्बी साँस ली।

कुंजर ने कहा—'आपका शायद यह विचार है कि मैं नीच हूँ और नीच को वरदान नहीं दिया जा सकता। परन्तु मैं कहता हूं कि वसन्त छोटे और बड़े सब प्रकार के वृक्षों को हरियाली देता है, धराशायी घास के तिनकों में भी नन्हें-नन्हें सुन्दर फूल लगा देता है और पवन किसी स्थान को भी अपनी कृपा से वंचित नहीं रखता।'

कुमुद बोली—'आप यदि देवीसिंह से लड़ेंगे, तो कालपी के नवाब का पक्ष सबल हो जायगा।'

'मैं देवीसिंह से न लड़ूँगा।'

'क्यों ?'

'आपकी इच्छा नहीं जान पड़ती। मैं देवीसिंह से संधि कर लूंगा। अपना सारा हक़ त्याग दूँगा।'

'मैं यह नहीं चाहती, और न यह कहती ही हूं।'

इसके बाद कुछ पल तक सन्नाटा रहा। कुँजर ने कहा—'वास्तव में अब मेरे जी में कोई बड़ी महत्वाकांक्षा शेष नहीं है। यदि कोई परम अभिलाषा है, तो चरणों की सेवा कीं है।'

यह कहकर कुंजरसिंह ने कुमुद के पैरों को छू लिया। कुमुद ने पीछे पैर हटाने चाहे, परन्तु न हटा सकी। बोली—'आपने क्या किया ?'

उसने कहा—'आप मेरी पूज्य हैं। मेरी सम्पूर्ण श्रद्धा की केन्द्र हैं। मैंने कोई अनोखा कार्य नहीं किया।'

कुमुद काँपती हुई आवाज़ में बोली—'आप ऐसा फिर कभी न करना। मैं कोई अवतार नहीं हूं। साधारण स्त्री हूँ। हां, दुर्गा माता की सच्चे जी से पूजा किया करती हूँ। आप मुझे अवतार न समझें।'

'और आप मुझे।' कुंजर ने कहा—'नीच व्यक्ति न समझें।'

तुरन्त कुमुद बोली—'आप क्यों यह बार-बार कहते हैं? मैं सब बातें सुन-समझकर ही आपको राजकुमार कह कर सम्बोधित करती हूं और करती रहूंगी। अर्थात् जब कभी आप हम लोगों को मिल पाया करेंगे।'

बड़ी दृढ़ता के साथ कुँजर ने कहा—'मैंने आज से देवीसिंह का विरोध छोड़ा। चरणों में ही सदा रहने का निश्चय किया—'

'न-न।' कुमुद जल्दी से बोली—'इस तरह का प्रण मत करिये। आप देवीसिंह का सामना अवश्य करें। अपने हक़ के लिये लड़ें, परन्तु कालपी के नवाब से जब वह निबट लें।'

कुंजर ने कहा—'इसके सोचने के लिये अभी बहुत समय है, परन्तु यह बात तय है कि चरणों में से हटाया नहीं जाऊँगा।'

कुमुद बोली—'यह स्थान कैसा सुन्दर है। टापू के दोनों ओर से बेतवा की धार चली जा रही है। लम्बी, चौड़ी, ढालू और सम-स्थल चट्टानों और पठारियों से जब पानी टकराता है, तब किसी बाजे के बजने सा कोलाहल होता है। चतुर्दिक वन-बीहड़ में ऐसी निष्पंदता छाई हुई है कि विश्वास होता है कि पर्वत, वन और नदी-वष्टित इस टापू को दुर्गा ने विशेष रूप से चाहा है। मेरी इच्छा नहीं है कि यह स्थान छोड़ूं—परन्तु कदाचित् विवश होकर छोड़ना पड़े।'

'यहां बने रहने में कोई हानि नहीं।' कुंजर ने कहा—'देवीसिंह इस टापू में अपनी छावनी डालकर अपने को क़ैद नहीं करावेगा। उसकी छावनी मुसावली की तरफ़ कहीं पड़ेगी। यदि वह आसानी से यहां तक आ पाया, तो मैं यहां किसी चट्टान की छाया में खड्ग सँभाले हुये पड़ा रहूंगा।'

कुमुद बोली—'अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। कदाचित् अटक पड़ी, तो सामने वाले वन में चली जाऊँगी।'

कुंजरसिंह हाथ जोड़ कर कुछ कहना चाहता था कि कुमुद ने निवारण करके कहा—'फिर वही अत्याचार ! आप यदि हम लोगों के निकट रहना चाहें, तो यह सब कभी मत करना।'

कुंजरसिंह की नसों में बिजली-सी दौड़ गई। उसने प्रमत्त नेत्रों से कुमुद की ओर देखा। आंख मिलते ही कुमुद का चेहरा लाल हो गया। परन्तु दृष्टि नचाकर बोली—'काकाजू आ ही रहे होंगे। सन्ध्या हो रही है। दिया-बत्ती और आरती का प्रबन्ध करना है। मैं जाती हूं।'

कुमुद चट्टान की टेक पर खड़ी हो गई। ऐसा जान पड़ा, मानो कमलों का समूह उपस्थित हो गया हो—जैसे प्रकाश-पुंज खड़ा कर दिया गया हो। पैरों के पैंजनों पर सूर्य की स्वर्ण-रेखायें फिसल रही थीं। पीली धोती मन्द पवन के धीमे झकोरे से दुर्गा की पताका की तरह धीरे-धीरे लहरा रही थी। उन्नत भाल मोतियों की तरह भासमान था। बड़े-बड़े काले नेत्रों की बरौनियां भौंहों के पास पहुँच गई थीं। आंखों से झरती हुई प्रभा ललाट पर से चढ़ती हुई उस निर्जन स्थान को आलोकित-सा करने लगी। आधे खुले हुये सिर पर से स्वर्ण को लजाने वाली बालों की एक लट गर्दन के पास जरा चञ्चल हो रही थी। उस विस्तृत विशाल जङ्गल और नदी की उस ऊँची चट्टान के सिरे पर खड़ी हुई कुमुद को देखकर कुञ्जर का रोम-रोम कुछ कहने के लिये उत्सुक हुआ।

वे चट्टान और पठारियां, वह दुर्गम और नीली धार वाली बेतवा, वह शांत भयावना सुनसान, वह हृदय को चञ्चल कर देने वाली एकांतता और चट्टान की टेक पर खड़ी हुई अतुल सौंदर्य की वह सरल मूर्ति !

कुञ्जर ने मन में कहा—'अवश्य देवी है। विश्व को सुन्दर और प्रेममय बनाने वाली दुर्गा है।'

कुंजर को अपनी ओर आँख गड़ाकर ताकते हुये देखकर कुमुद के चेहरे पर और गहरी लाली छा गई। उस समय सूर्य की कुछ किरणें ही बाक़ी रह गई थीं। वे उस लालिमा को और भी उद्दीप्त कर गईं।

कुंजर को ऐसा आभास हुआ, मानो सम्पूर्ण विश्व के पुष्पों ने अपनी ताज़गी उस लालिमा को दे दी हो। हृदय उमड़ पड़ा। विश्व भर को अपने में भर लेने के लिये लालायित हो उठा और किसी अपरिचित, किसी निस्सीम, किसी अनिश्चित बलिदान के लिये दृढ़ता अनुभव करने लगा।

कुमुद ने धीरे से कहा—'नाव में बैठे हुये काकाजू भी आ रहे हैं। मैंने कहा था न कि वह आते ही होंगे।' परन्तु कुमुद ने कुंजर की ओर देखा नहीं।

कुंजर उन्मत्त-सा होकर बोला—'एक बार, केवल एक बार चरणों को अपने मस्तक से छुआ लेने दीजिये और हृदय से—'

कुमुद के मुख-मण्डल पर फिर गहरी लाली दौड़ आई। भृकुटि भङ्ग करने की उसने चेष्टा की, परन्तु विफल हुई। मुस्कराहट ने होठों को बरबस पकड़ लिया। बोली—'यदि आपने यह प्रयास किया, तो मैं इसी ओर से कूद पड़ूँगी, फिर चाहे चोट भले ही लग जाय।'

'नहीं, मैंने इस संकल्प का त्याग कर दिया। आप इसी ओर से उतर आवें।'

कुमुद बिना कोई शब्द किये धीरे से उतर आई। नीचे आते ही उसने देखा, गोमती चट्टान के पास तेजी से भागती हुई मन्दिर में घुस गई। कुंजर ने नहीं देखा।

दरवाजे की ओर जाती हुई कुमुद से धीरे से बोला—'मैं अपने मन्दिर में अपनी देवी की आरती करूँगा।'

कुमुद चली गई।

[६९]

दिया-बत्ती और आरती हो चुकने के बाद गोमती को ऐसा जान पड़ा, जैसे कुमुद उससे कुछ बातचीत करना चाहती हो। वह भी अनुत्सुक नहीं जान पड़ती थी।

उस दिन कोठरी में कुछ गरमी मालूम होती थी, इसलिये वे दोनों मन्दिर की छत पर चली गईं। कोठरियों, देवालय और दालान सब पर छतें थीं। बहुत से आदमी आराम के साथ उन पर लेट सकते थे।

रात्रि अन्धकारमय थी। बेतवा के प्रवाह की चहल-पहल स्पष्ट सुनाई पड़ती थी। जब कभी कोई बड़ी मछली उछलकर एक स्थान से दूसरे स्थान को दौड़ती थी, तब साफ़ सुनाई पड़ता था। बीच-बीच में किसी भ्रम से, किसी भय से टिटिहरी चिल्ला पड़ती थी, वैसे सुनसान था। आकाश में बिखरे हुये तारे और कहीं-कहीं उनकी झुरमुटें प्रकाश के एकमात्र साधन थे। केवल पानी पर कुछ टिमटिमाहट दिखलाई पड़ती थी।

वे दोनों लड़कियां उस तिमिरावृत छत पर बैठ गईं। गोमती का कलेजा धक्-धक् कर रहा था।

कुमुद बोली—'तुमने कुछ उपाय सोचा?'

'कौन-सा?' गोमती ने पूछा।

कुमुद ने कहा—'यहीं ठहरकर घटनाओं के चक्र और उनसे छुटक पड़ने वाले किसी अवसर की प्रतीक्षा में इसी स्थान पर बने रहना चाहिये अथवा उस पार उस गहन वन में, जिसकी एक रेखा भी इस समय लक्ष नहीं हो सकती, चल देना चाहिये।'

'आपसे बढ़कर इस विषय पर सम्मति स्थिर करने वाला और कौन है? जहां चलोगी, वहीं मैं पैर बढ़ा दूंगी।'

'मैं समझती हूं, हम लोग अभी यहीं बने रहें।'

'ठीक है।'

'दलीपनगर के महाराज के आने की बाट तो देखनी ही पड़ेगी।'

गोमती ने कुछ नहीं कहा।

कुमुद बोली—'काकाजू ने जो कुछ उस दिन कहा था, उससे अपने मन को इतना दुखी मत बनाओ। मैं तुमसे पहले भी कह चुकी हूं। राजा काकाजू को पहले से जानते थे। उनके उस प्रस्ताव पर सहसा कैसे स्वीकृति दे देते?'

गोमती ने कहा—'क्या बतलाऊँ, आजकल ऐसी-ऐसी अनहोनी बातें हो रही हैं कि मेरा चित्त बिलकुल ठिकाने नहीं है। जी चाहता है, इसी दह में देह त्याग कर दूं। न-मालूम किस भ्रम और किस आशा के वश इस समय जीवन धारण किये हूँ।'

कुमुद बोली—'राजा तुम्हें किसी-न-किसी दिन अवश्य मिलेंगे, परन्तु तुम्हें इतना मान नहीं करना चाहिये। यदि वह न आ सकें, तो तुम्हें उनके पास स्वयं पहुँच जाने में संकोच न करना चाहिये।'

'ऐसा कहीं संभव है? कोई ऐसा करता है?' गोमती ने पूछा।

कुमुद ने उत्तर दिया—'क्यों नहीं? जहाँ पुरुष आगे पैर बढ़ाता है, वहाँ स्त्री नहीं बढ़ाती, परन्तु जहाँ पुरुष आगे नहीं बढ़ता, वहाँ स्त्री को अग्रसर होने में क्यों संकोच होना चाहिये?'

गोमती ने हँसकर कहा—'ढिठाई क्षमा हो। यह तो बतलाइये कि इस पंथ की बातों को कहाँ से सीखा?'

कुमुद ने बुरा नहीं माना। बोली—'इन बातों को बिना सिखलाये ही जान लेना स्त्रियों का जन्म-सिद्ध अधिकार है। मैं जानती हूं, तुम्हें राज्य का लोभ नहीं है। शायद तुमने राजा को अच्छी तरह देखा भी नहीं है, फिर क्यों इतना अपनापन प्रकट करती हो?'

गोमती भी स्पष्ट बातचीत करने के लिये उस रात तैयार थी। कुमुद का मन भी स्पष्टता की ओर बढ़ रहा था।

गोमती ने कहा—'इसका उत्तर मैं क्या दे सकती हूं? कुछ कहती, परन्तु कहते डर लगता है। आपमें देवी का अंश है।'

'रहने दो ।' कुमुद ज़रा उत्तेजित होकर बोली—'हममें, तुममें वह अंश वर्तमान है । जब मनुष्य की देह धारण की है, तब उसके गुण-दोष से हम लोग नहीं बच सकते । कहो, क्या कहना है ?'

गोमती ने धीरे से प्रश्न किया—'आपके हृदय में विश्व प्रेम के सिवा और किसी वस्तु के लिये भी स्थान है या नहीं ?'

कुमुद ने हँसकर उत्तर दिया—'विश्व में सब आ गये और उसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि विश्व को प्यार करती हूं ।'

गोमती कुछ सोचने लगी । देर तक सोचती रही । कुमुद उस सुनसान अँधेरे में दृष्टि गड़ाने लगी । अन्त में आँगन में कुछ खटका सुनकर बोली--'सभी लोग सोये नहीं हैं ।' फिर आँगन की ओर देखकर कहा--'काकाजू तो सो गये हैं ।'

गोमती बोली—'वह जो आज संध्या के पहले कहीं से आये थे, आँगन में टहल रहे हैं ।'

'हाँ, वही ।' कुमुद ने धीरे से कहा । फिर एक क्षण बाद सहसा पूछा--'रामदयाल कई दिन से नहीं दिखाई पड़े ?'

'आपने नाम कैसे जाना ?' आश्चर्य के साथ गोमती ने पूछा । फिर धीरे से बोली—'आजकल सब कोई सब किसी के नाम जानते हैं ।'

'सो बात नहीं है ।' कुमुद ने मीठे स्वर में कहा—'तुम्हीं ने तो एक बार कहा था कि वह महाराज का भृत्य है ।'

गोमती ने स्वीकार किया ।

कुमुद बोली—'काकाजू से न मालूम क्या राजा ने कहा था और क्या उन्होंने सुना था । इसके सिवा इस तरह की बातों से काकाजू को प्रयोजन नहीं रहता है । मेरी सम्मति है, तुम रामदयाल के द्वारा सब बातें अच्छी तरह समझ-बूझ लो । व्यर्थ ही राजा को दोषी मत ठहराओ ।

कुमुद के शब्दों और कंठ के लोच से सहानुभूति का प्रवाह-सा उमड़ रहा था । गोमती ने उसकी सच्चाई को अनुभव किया ।

जिस बात को गोमती बड़ी देर से भीतर ही रोके हुये थी, उसे उसने अब कहा—'जीजी, एक बात पूछूं ?'

'अवश्य ।'

'आप कभी विवाह करोगी ?'

कुमुद हँसने लगी । गोमती उत्साहित हुई । बोली—'यदि आज इस प्रश्न का उत्तर न दें, तो फिर कभी दीजियेगा, मैं जानना चाहती हूं। बहुत दिनों से यह बात मन में उठ रही है ।'

'क्यों ? कब से ?' कुमुद ने पूछा ।

'इसका कारण नहीं बतला सकती ।' गोमती ने उत्तर दिया ।

कुमुद हँसकर बोली—'तुम्हारे इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर इसलिये नहीं दिया जा सकता कि इस तरह के प्रसंग की कभी कल्पना ही नहीं की ।'

[७०]

उस दिन नरपति के मुँह से राजा देवीसिंह की कही हुई बात को सुनकर गोमती को बड़ा विषाद हुआ था, परन्तु आशा ने धीरे-धीरे मन को फिर चेतन किया। शायद महाराज ने यह न कहा हो। कुछ कहा और नरपति काकाजू ने सुना कुछ और हो, अथवा यही कुछ कहा हो कि राज्य के काम-धंधों के मारे कैसे इतनी जल्दी स्मरण हो आता ? परन्तु उन्होंने यह क्यों कहा कि वही है या कोई और ? परन्तु वह सहसा मान भी कैसे लेते कि वही हूं ? मान लो, वह यहाँ तक दौड़े आते, तो किसी विश्वास पर या यों ही ? राजा हैं; संसार-भर के बखेड़ों को देखना-भालना पड़ता है। सतर्क रहने का अभ्यास पड़ गया है, उसी अभ्यास वश यदि वे सब बातें कही हों, तो क्या आश्चर्य ? परन्तु सेना, राज्य और प्रजा की ओर इतना सघन आकर्षण है कि वह मुझे भूल जायें ?—अभी बहुत दिन भी तो नहीं हुये हैं, मैंने कंकण को अभी तक खोला भी नहीं है। इतने दिनों में क्या किसी समय एकान्त का एक क्षण भी न मिला होगा ? क्या सो जाने के पहले शय्या पर एक करवट भी कभी न बदली होगी ? क्या एक पल के लिये भी उस समय पालर की कोई कल्पना-रेखा न खिंचती होगी ?

बहुत कष्ट के बाद भी एक समय अवश्य ऐसा आता है कि मन कुछ स्थिरता प्राप्त कर लेता है। उस दिन के कष्ट के उपरान्त गोमती का मन भी कुछ हलका हुआ। उस दिन कुंजरसिंह जब अकेले में कुमुद के साथ सम्भाषण कर रहा था, गोमती का मन बहुत व्यथा में न था। उसके मन को किसी नवीन समस्या की, किसी ताज़ी उलझन की, किसी नई घटना की उपेक्षा थी। उस वार्तालाप को अकेले में छिपाकर सुनने की इच्छा इसीलिये उत्पन्न हुई। परन्तु चट्टान के पीछे से लौटकर मन्दिर में आ जाने पर उसे विशेष सन्तोष नहीं हुआ। उसे कुछ ऐसा आभास हुआ कि कुञ्जरसिंह का अनुरोध केवल भक्त की विनय न था, किन्तु उसमें

कुछ और भी गहराई थी। रामदयाल ने उसे इस सम्बन्ध में अपनी एक कल्पना बतलाई थी। उस पर गोमती को विश्वास हुआ; परन्तु ऐसा कोई स्पष्ट वाक्य गोमती ने नहीं सुना था, जिससे वह इस निष्कर्ष को निकालती कि यह निस्सन्देह प्रेम-वार्ता है। केवल झंकार उसके हृदय में रह-रहकर उठती थी—चरणों को सिर से, हृदय से लगा लूँ!

गोमती से ऐसी बात किसी ने कभी न कही थी। इसीलिये मन की आंशिक स्थिरता में उसे ख्याल हुआ कि महाराज एकान्त समय में कभी कुछ स्मरण करते होंगे या नहीं?

करते होंगे, तब हृदय को और चाहिये ही क्या? अभी नहीं मिलते? न मिलें। कभी तो मिलेंगे। तब पूछ लिया जायगा कि क्या-क्या बात अकेले में सोचा करते थे? किस-किस बात को लेकर रात-की-रात बेनींद चली जाती थी? उस कल्पना को लेकर क्यों इतना छटपटाया करते थे? और यदि स्मरण न करते होंगे तो?

यही बड़ा भारी अनिष्ट था। जैसे-जैसे किसी कष्ट के प्रथम आक्रमण के पश्चात् समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे उसकी पीड़ा कम होती जाती है और उसके साथ नई-नई और कदाचित् असम्भव आशाओं का उदय भी होता चला जाता है।

गोमती ने आशा की कि किसी दिन मेरी भी पूजा की जावेगी। यदि न हुई, तो बिना पूजा के कदापि समर्पण न किया जायगा। राजा देवीसिंह भूले नहीं हैं, भुलाने का बहाना-मात्र किया है। किसी दिन वह हँसते या रोते हुये इस बात को स्वीकार करेंगे। यदि ऐसी घड़ी न आई, तो देवीसिंह तो क्या, संसार-भर की भी विभूति यदि मनुष्य का अवतार धारण करके समर्पण की प्राप्ति की अभ्यर्थना करती हुई सामने आवेगी, तो ठुकरा दी जायगी!

इसलिये गोमती ने निश्चय किया कि मन को सँभालना चाहिये और हो सके, तो दृढ़ रखना चाहिये। देखें, इस संसार में कौन क्या करता है दूसरों को बिना देखे अपनी अवस्था के परिचय का सुख-दुःख पूरी तरह प्राप्त

होगा। गोमती के हृदय से पहले एक हूक जब-जब उठ बैठती थी, अब अधिक उठने लगी। पालर के उस दिन के बन्दनवार बार-बार स्मरण आते थे। सन्ध्या का समय था। पालकी में महाराज नायकसिंह लौटे जा रहे थे। वंदनवारों के सामने ही पालकी जा खड़ी हुई थी। किसी ने पालकी के काठ को आकर छुआ। कुछ कहा। फिर धड़ाम से गिर पड़ा। क्या कहा था ? यही न कि ये बन्दनवार मेरे ही लिये सजाये गये हैं। इन्हीं बन्दनवारों के पीछे किवाड़ की ओट से देखा था। कंकण बँधी हुई कलाई किवाड़ के एक भाग को पकड़े हुये थी। क्या जान-बूझकर भूल जायँगे ?

और यदि भूल गये हों, तो ? राजा प्रायः भूलें किया करते हैं। देखने पर शायद याद आ जाय। तो क्या मैं केवल विलास की सामग्री हूं। क्या आकृति देखकर ही याद आवेगी ? पहले कभी साक्षात्कार न हुआ था। सौन्दर्य और लावण्य क्या पूर्व-परिचय की त्रुटि और विस्मृति की पूर्ति करेगा ?

तब भी बहुत कुछ आशा है। आदर हो। भक्ति हो। श्रद्धा हो। आराधना भी क्यों न हो ? उन्हें करनी पड़ेगी।

गोमती आशा, निराशा, मान और अभिमान में गोते खाने लगी।

[७१]

एक दिन रामदयाल सवेरे ही आया। कुञ्जरसिंह बिराटा के टापू में था। उस समय मन्दिर में केवल नरपति मिला और कोई वहाँ न था। रामदयाल को नरपति देवीसिंह का आदमी समझता था इसलिये उसने उसके आने पर हर्ष प्रकट किया।

बोला—'कहो भाई, क्या समाचार है ?'

'समाचार साधारण है।' उत्तर मिला—'दलीपनगर में जोरों के साथ तैयारियां हो रही हैं।'

'यह समाचार साधारण नहीं, बहुत आशा-पूर्ण है।'

'यहां टापू में आज सन्नाटा कैसा छाया हुआ है ?'

'स्नान ध्यान हो रहे हैं।'

'और लोग भी तो होंगे ?'

'रहने दो। तुम्हें उनसे क्या ? मन्दिर में तो सभी प्रकार के लोग आया-जाया करते हैं।'

रामदयाल ने बात बदलकर कहा—'आप इस बीच में दलीपनगर भी हो आये और मुझे कुछ न मालूम पड़ा। यदि पहले से मालूम होता, तो कदाचित् मैं किसी सेवा में पड़ जाता।'

नरपति प्रसन्न होकर बोला—'जल्दी में गया और जल्दी में ही आया। दलीपनगर में ज्यादा देर ठहरने की नौबत ही नहीं आई, कार्य बन गया। मैं लौट पड़ा।'

'हमारे राजा।' रामदयाल ने कहा—'टाला-टूली नहीं करते। जिसके लिये जो कुछ करना होता है, शीघ्र कर देते हैं। आपको तो पक्का वचन दे दिया है।'

'वह बड़े ज़ोर से अपनी सेना की तैयारी इसीलिये तो कर रहे हैं। बड़े पुरुषार्थी हैं, बड़े ब्रह्मचारी हैं। सूरमाओं की धुन के सिवा और कोई

ध्यान ही नहीं वह लड़की, जिसे आपने यहां देखा होगा, उनकी रानी होने की अधिकारिणी है। केवल भाँवर नहीं पड़ पाई है।' नरपति ने मन्तव्य प्रकट किया। उस सिलसिले में दिमाग़ दूसरी तरफ़ घूमा। नरपति कहता गया—'उस दिन जब पालर में लड़ाई हुई थी, जरा-सी ही देर हो गई, नहीं तो दांपत्य सम्बन्ध पक्का हो जाता। रह गया, सो रह गया। अब तो उस लड़की को वह पहचानते ही नहीं। कहते थे, कौन? कहां की! इत्यादि-इत्यादि।'

रामदयाल चौंका।

उसने पूछा—'इसका भी जिक्र आया था?'

नरपति ने उत्तर दिया—'खूब, मैंने कहा था। गोमती ने तो मना कर दिया था, परन्तु मेरा जी नहीं माना।'

रामदयाल ने अपने आश्चर्य को दबा दिया।

बोला—'इसका कारण है। मैं जानता हूं। परन्तु मुझे आपसे कहने की जरूरत नहीं है।'

[७२]

रामदयाल को गोमती के ढूँढ़ने में और गोमती को रामदयाल के ढूँढ़ने में कष्ट या विलम्ब नहीं हुआ। 'वार्तालाप के लिये उपयुक्त समय और स्थान के लिये भी विशेष प्रयास नहीं करना पड़ा।

गोमती की आकृति गम्भीर थी। रामदयाल के मुख पर किसी भय या चिंता की छाप लग रही थी।

कुशल-मङ्गल के बाद दोनों कुछ क्षण चुपचाप रहे।

अन्त में गोमती ने बारीक, पैंने और कुछ काटते हुये से स्वर में पूछा—'तुम्हारे महाराज तो आज कल सैन्य-संग्रह और चढ़ाई की तैयारी के सिवा और सोचते ही क्या होंगे?'

रामदयाल ने नीचा सिर किये हुये घायल आदमी की तरह उत्तर दिया—'उस धुन के सिवा और कोई धुन ही नहीं है। आजकल तो और किसी बात के लिये ज़रा भी अवकाश नहीं मिलता। परन्तु—'

'परन्तु क्या रामदयाल?' गोमती ने धड़कते हुये कलेजे से, परन्तु उपेक्षा की मुद्रा धारण कर के कहा—'तुमने तो नहीं मेरी ओर से कुछ कहा था?'

'आपकी ओर से तो नहीं।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'अपनी ही ओर से कहा था। बोले, इस समय राजनीति और रण-नीति के अतिरिक्त और कोई चर्चा न करो।'

ज़रा चिढ़कर गोमती बोली—'तुमने नाहक़ मेरी बात छेड़ी रामदयाल!'

'क्या करूँ, मन नहीं माना।' गद्‌गद्-सा होकर रामदयाल ने कहा—'आपको दुखी देखकर छाती फटती है। आपको सुखी देखकर यदि तुरन्त मर जाऊँ, तो मेरे बराबर पुण्य वाला किसी को न समझा जाय।'

गोमती को उस गद्‌गद् कण्ठ ने तुरन्त आकृष्ट किया। स्त्री की सहज साधारण सावधानी को गोमती दूर रखकर बोली—'मैं राजपाट की

भिखारिन नहीं हूं, महाराज आनन्द के साथ संसार में रहें, मेरे लिये इतना ही बहुत है।'

रामदयाल ने उत्तेजित होकर कहा——'परन्तु मेरे संतोष के लिये इतना कम से कम आवश्यक है कि आप आनन्द-पूर्वक रहें। मैं साधारण मनुष्य हूं, परन्तु मेरे हृदय को यह कहने का अधिकार है।'

गोमती ने उत्सुकता की अधीरता के वश होकर कहा——'यह निश्चय जानो रामदयाल, मैं स्वयं दलीपनगर नहीं जाऊँगी। निरादर के सिंहासन से इस जङ्गल का जीवन सहस्र गुना अच्छा। यहाँ मेरे लिये सब कुछ है।'

रामदयाल बोला——'यह ठीक है, परन्तु आपको यहाँ बहुत दिनों नहीं रहना चाहिये। कुछ दिनों बाद यहाँ लोहे और अग्नि की वर्षा होगी। यद्यपि आप निर्भय हैं, तो भी व्यर्थ ही विपद् को सिर पर बुलाना ठीक नहीं मालूम पड़ता। यहीं, किसी जङ्गल के किसी सुरक्षित स्थान में, आप रह जायें, सेवा के लिये मुझ-सदृश भृत्यों की कमी न रहेगी।'

'मैं किसी भी संकटमय स्थान में जा सकती हूं। कुमुद भी देर-सबेर यहाँ से जायँगी। उन्हीं के सङ्ग रह जाऊँगी।' फिर तुरन्त हँसकर बोली—'अर्थात् यदि उन्होंने निभा लिया, तो।'

रामदयाल ने नीचे से ही एक आँख को ऊँचा करके पूछा——'मुझे विश्वास है, कुञ्जरसिंह उनका पीछा न छोड़ेंगे। ऐसी दशा में आपका उनके सङ्ग रहना कैसे संभव होगा?'

कुछ सोचकर गोमती बोली——'यह एक समस्या अवश्य है।' फिर कुछ क्षण चुप रहकर उसने पूछा—'अब तो तुम महाराज के साथ ही रहोगे?'

'कुछ आवश्यक नहीं है।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'मैं चरणों की सेवा में ही रहूंगा।'

इससे कुछ मिलती-जुलती बातचीत गोमती ने किसी चट्टान के पीछे छिपकर हाल ही में सुनी थी। उसके स्मरण में देर नहीं लग सकती थी शायद मन में पहले से मौजूद थी। गोमती का अनमना मन यकायक कहीं

चला गया। हँसकर बोली—'परसों मैंने जो बातचीत सुनी है, उससे तुम्हारी उस दिन की बात पर विश्वास करने को जी चाहता है।'

'यहां कुञ्जरसिंह आये हुये हैं?'

'हाँ।'

'तब मैं सम्पूर्ण बात सुनने का अधिकारी हूँ। अवश्य सुनाइये। पूरा हाल सुनने के लिये जी चंचल हो रहा है।'

गोमती ने उत्तर दिया—'किसी एक वाक्य को सम्पूर्ण सम्भाषण में से खींच निकालकर यह नहीं बतलाया जा सकता कि तुम्हारे सन्देह की पुष्टि में यह प्रमाण है; परन्तु कुछ कुछ भान मुझे भी होने लगा है।'

हँसते हुये बड़े अनुरोध, बड़े आग्रह और बहुत मचलते हुये रामदयाल ने कहा—'मैं तो पूरी बात सुनूँगा। सारा भाव जानकर रहूँगा।'

कुछ संकोच के साथ गोमती बोली—'जितना याद होगा, बतला दूँगी।'

'मैं पूछता जाऊँगा, आप बतलाती जाना।' रामदयाल ने पूर्ववत भाव के साथ प्रस्ताव किया।

गोमती बोली—'मैं कोठरी में थी। कुञ्ज़रसिंह से उन्होंने कुछ बात करने की इच्छा प्रकट की।'

फिर एक क्षण सोचकर कहा—'परन्तु रामदयाल, हो सकता है, कुञ्जरसिंह किसी वरदान की याचना ही के लिये वैसे भक्ति-पूर्ण वचनों से सम्बोधन कर रहे हों।'

जोश के साथ रामदयाल बोला—'महारानी का यह भ्रम है। वरदान की याचना हो सकती है, परन्तु दूसरे तरह के वरदान की। मुझे कुछ बातें सुनाई जायँ, तो मैं निश्चय के साथ बतला दूँगा। मैं छुटपन से राजाओं और रानियों के बीच में रहा हूँ। मुझसे किसी ने किसी भांति की आड़-मर्याद नहीं मानी है। संसार का पूरा अनुभव मुझे है। आप भ्रम में न पड़ें, कहें।'

'कुमुद बातचीत करने के लिये बड़ी सतर्कता के साथ बाहर गई और बड़ी बारीकी के साथ इधर-उधर दृष्टि डालती रहीं। हो सकता है, नरपति काकाजू के आगमन की प्रतीक्षा करती हों।' गोमती ने मुस्कराकर कहा।

रामदयाल बोला—'मेरा अनुभव मुझे बतलाता है कि जब दो व्यक्ति मिलना चाहते हैं, तब सहसा इसी तरह चौकन्ना होना पड़ता है।'

गोमती ने कहा—'फिर एक चट्टान पर वह जा बैठी। इधर-उधर देखती रहीं। देर तक बातचीत करने के बाद भीतर चली गईं परन्तु उनके वहां से चल देने के पहले ही मैं वहां से चली आई थी।'

'आप जहाँ थीं, वहाँ से देख सुन तो सब सकती थी ?' रामदयाल ने प्रश्न किया।

गोमती ने कहा—'हाँ।'

'क्या ऐसा नहीं होता था कि कभी-कभी उठान तो बात का उत्साह और जोर के साथ होता हो, परन्तु अन्त बहुत ही साधारण ?'

'इसी तरह तो प्रायः सम्पूर्ण वार्तालाप हुआ था।'

'कुमुद की बोली में रुखाई थी ?'

'बिलकुल नहीं।'

'कुञ्जर ने अधिक जोर किस बात पर दिया था ?'

'इस पर कि मैं अब तो सदा आपके निकट ही रहूंगा।'

'वह स्वीकार नहीं कर रही होंगी ?'

'स्पष्ट अस्वीकृति तो नहीं की।'

'यही ढंग तो असल में होता है।'

गोमती कुछ सोचने लगी।

रामदयाल ने कहा—'मैं विश्वास दिलाता हूँ, कुमुद के हृदय पर कुञ्जर का प्रभाव हो गया है। उसने कोई घनिष्ठता-सूचक बात नहीं की थी ?'

'स्मरण नहीं है।'

रामदयाल ने नीचे आँखें किये हुये पूछा—'कुमुद कुञ्जर से आँखें जोड़कर बात कर पाती थीं या नहीं ?'

गोमती ने उत्तर दिया—'मैंने स्पष्ट लक्ष्य नहीं किया।'

रामदयाल बोला—'कनखियों देखती थीं ?'

'हाँ, कुछ ऐसी ही।'

रामदयाल ने बेतवा की धारा की ओर देखते हुये कहा—'अच्छा, यह तो निश्चय-पूर्वक आपको याद होगा कि जब कुञ्जरसिंह खूब अच्छी तरह कुमुद की ओर देखना चाहते होंगे, तभी उनका मुँह दूसरी ओर फिर जाता होगा ?'

गोमती ने पूछा—'रामदयाल, तुम्हें ये सब बातें किसने बतलाईं ?'

उसने जवाब दिया—'सरकार, हम लोग सदा महलों में ही रहते हैं कम-से-कम मेरा समय रानियों की ही सेवा में जाता है। अधिकांश समय प्रेम-चर्चा में बीतता है। अपनी-अपनी बीती लोग सुनाया करते हैं। मेरी आयु जरूर थोड़ी है, परन्तु संसार के अनुभव बूढ़ों से अधिक हैं। महाराज नायकसिंह मुझे दिन-रात में किसी समय अपने पास से अलग नहीं करते थे। जब आज्ञा होगी, उनके मनोरंजक किस्से सुनाऊँगा। परन्तु पहले मैं भी तो पूरी-पूरी बात सुन लूँ।'

किसी उत्सुकता, किसी दूरवर्ती घटना-चक्र के कौतूहल ने गोमती को हिला-सा दिया।

धीरे से बोली—'बतलाती जाती हूं।'

रामदयाल वार्तालाप में अग्रसर होता चला जा रहा था। पूछा—'एक-आध बार बातचीत करने में कुञ्जर का गला काँपा था ?'

'इसका भी ठीक-ठीक ध्यान नहीं है।'

रामदयाल ने कहा—'जब भीतर से हृदय उमड़ता है, भाव की बाढ़ आती है और बात पूरी कह पाने का अवसर नहीं मिलता, तब यही दशा होती है। रामदयाल ने इसके बाद अपना गला साफ़ किया।'

गोमती हँसकर बोली—'रामदयाल, तुम्हारा गला क्यों कांप रहा है ?'

उसने मुस्कराकर कहा—'आप केवल मेरे प्रश्नों का उत्तर देती जायें। अभी आपको प्रश्न करने का अधिकार नहीं है ?'

फिर बोला—'बात करते-करते कभी कुञ्जर यकायक रुक जाता होगा। देर तक कुछ सोचता रहता होगा। फिर यकायक कोई असंगत बात कह देता होगा। यही दशा कुमुद की रही होगी।'

'हां, परन्तु ऐसा क्यों हुआ होगा ?' गोमती ने सकोच के साथ प्रश्न किया।

रामदयाल बोला—'जब एक हृदय का दूसरे हृदय की ओर संवाद जाने को होता है, तब सबसे पहले आंखें कुछ कहती हैं। दिखलाई पड़ता है, परन्तु आंख मिलाकर देखते ही नहीं बनता। हजारों निरर्थक-सी बातें होती हैं। रुक-रुककर। बिना प्रवाह के। जैसे कोई गला दबाये देता हो। मालूम होता है, जो बात कहनी है; उस पर खूब विचार किया जा रहा है, परन्तु वास्तव में विचार होता किसी विषय पर भी नहीं है।'

'शायद।' एक ओर देखते हुये गोमती ने कहा।

रामदयाल बोला—'एक हृदय की दूसरे हृदय के साथ जब मुठभेड़ होती है, तब कुछ इसी तरह का भूचाल-सा आता है।'

गोमती ने इस पर कोई मन्तव्य प्रकट नहीं किया।

रामदयाल ने कहा—'इस दशा में एक बड़ी अनोखी बात होती है।'

गोमती ने बड़ी उपेक्षा दिखाते हुये पूछा—'क्या ?'

रामदयाल ने उस उपेक्षा की तली में देखा, काफी कौतूहल वर्तमान है।

उसने बतलाया—'एक पक्ष तो यह समझता है कि मैं प्यार करते-करते खपा जा रहा हूँ और दूसरा मेरी बात भी नहीं पूछता, उधर दूसरा पक्ष—'

रामदयाल रुक गया। गोमती ने उपेक्षा के भाव को त्यागकर कहा—'दूसरा पक्ष क्या ?'

वह बोला—'उधर दूसरा पक्ष कदाचित् यह सोचता है कि मैं करूं, तो क्या करूं ? हृदय का दान देने को जो यह उतारू है, सो वास्तव में ऐसा ही है या नहीं ? यदि ऐसा ही है, तो मैं अपने हृदय का दान किस भांति करूं। अन्त में कदाचित् यह निश्चय होता है कि हृदय का गुप्त दान करूं—कोई न जाने, यहाँ तक कि लेने वाले से भी यह दान छिपा रहे।'

गोमती हँसने लगी।

रामदयाल हाथ जोड़कर सर्राटे के साथ बोला—'आप हँसती हैं, क्योंकि इस तरह की समस्याएँ आपके देव-तुल्य मन के सामने आकर खड़ी नहीं हुईं। परन्तु सच मानिये, जहाँ एक बार हृदय को किसी ने हिलाया कि इस कथन का तथ्य सच्चा जँचने लगता है। प्यार के सामने कोई विघ्न-बाधा और संकट नहीं टिकने पाते। ऊँच-नीच का भेद-भाव मिट जाता है। व्यथा के बाँध और रोड़े ढोंके बह-बहाकर तिरोहित हो जाते हैं। बड़ा आदमी छोटे को और छोटा बड़े को प्यार करने से नहीं रुक सकता। उसे कोई वस्तु ऐसा करने से नहीं रोक पाती। प्रेम के सामने छोटे-बड़े और ऊँच-नीच का अन्तर नष्ट हो जाता है। महलों में जो मैं सदा देखा करता हूं, उससे मैं इस निश्चय पर पहुंचा हूँ कि छोटा व्यक्ति बड़े को अधिक सच्चाई और अधिक गहराई के साथ चाह सकता है। बड़ा जब थोड़ा-बहुत छोटे को प्यार करता है, तब यह समझता है है कि मैं एहसान कर रहा हूँ।'

गोमती ने इतना वाचाल रामदयाल को पहले कभी न देखा था। ज़रा आश्चर्य किया।

बोली—'तुम्हारा क्या अभिप्राय है रामदयाल ?'

बिना किसी सकपकाहट या संकोच के उसने उत्तर दिया—'मुझे इस समय यकायक ताव आ गया था। मैं स्वाभाविक सेवक हूँ। महाराज के सुख-दुख में बराबर साथ रहता हूं, परन्तु मेरी सहानुभूति उनके साथ नहीं है।'

'क्यों ?'

इसलिये कि बार-बार कहने पर भी उन्हें स्मरण नहीं आता। आमोद प्रमोद के समय किसी भी स्मृति की हूक उनके कलेजे में नहीं उठती। मुझे तो कभी-कभी उन पर क्रोध भी आ जाता है।'

गोमती अपने को न रोक सकी। पूछने लगी—'तुम्हारे सामने कभी बात पड़ी मेरी ?'

तुरन्त उसने उत्तर दिया—'मैंने तो कई बार कहा, परन्तु न मालूम क्या धुन समाई है। मनुष्य का बड़े पद पर पहुंच जाना दूसरों, विशेषकर आश्रितों के लिये बड़ा कष्ट-पूर्ण होता है।'

गोमती का चेहरा पीला पड़ गया।

बहुत पास जाकर रामदयाल बोला—'अरे वाह ! मेरी रानी, यह क्या ? तुम्हें ऐसा दुःख न करना चाहिये। राजप्रासाद के सुखों की कल्पना में अपने को इतना नहीं डुबोना चाहिये कि स्वल्प-सी निराशा के उदय होते ही मन का यह हाल हो जाय। मुझे विश्वास है, महाराज इस समय भूले हुये हैं, तो किसी समय स्मरण भी करेंगे।'

रामदयाल की आंखों में आंसू आ गये।

गोमती भी उन आँसुओं को देखकर थोड़ी देर रोई।

रामदयाल ने कहा—'यह कम-से-कम मेरे लिये असंह्य है। आप यदि और रोईं, तो मेरा कलेजा टूक-टूक हो जायगा।'

गोमती दृढ़ता के साथ बोली—'अब नहीं रोऊँगी रामदयाल।' फिर स्थिर होकर एक क्षण बाद उसने कहा—'तुम्हें यह कैसे विश्वास हो गया कि मैं महलों के सुखों की लालसा में लिप्त हूं ? मैं ऐसे महलों को पैरों से ठुकराती हूँ, जहाँ सम्मान के साथ प्रवेश न हो।'

रामदयाल ने कहा—'मैं यह नहीं कहता। वहाँ पहुँचने पर सम्मान तो अवश्य होगा; परन्तु उसमें हमारे महाराज का कोई एहसान नहीं। ऐश्वर्य, रूप और महत्त्व अपना जो आदर बरबस करा लेता है, वही आपका भी होगा उस महल में क्या, कहीं भी। परन्तु चन्द्रमा का प्रकाश नगरों में उतना अच्छा नहीं मालूम होता, जितना जंगलों में।'

फिर एक क्षण ठहरकर रामदयाल बोला—'मैं आपको यहां अकेला नहीं रहने दूंगा और न मैं महाराज की सेवा में अब जाऊंगा। जङ्गलों में आपके पास मर जाना अच्छा। महलों में रहना अब असह्य है।'

गोमती ने देखा, बात करते-करते रामदयाल का गला भर भर आता है। बोली—'बहुत संभव है, कुञ्जरसिंह भी साथ रहे, क्योंकि मैं कुमुद का साथ नहीं छोडना चाहती और वह कुमुद के निकट रहेगा। ऐसी हालत में तुम्हारी कैसे निभेगी ?'

बड़ी लम्बी सांस लेकर रामदयाल ने उत्तर दिया—'यदि आपके मन से हो, तो मैं बाबा का वेश धारण कर के बना रहूँगा, कोई न पहिचान पावेगा और यदि आपके मन में न होगा, तो मेरा संसार में और कोई नहीं है; इसी दह में अपनी देह डुबो दूँगा।'

गोमती बोली—'मुझे कोई आपत्ति नहीं है। बने रहना। तुम्हारा बहुत सहारा रहेगा।'

रामदयाल गोमती के घुटने छूकर बोला—'जन्म भर दूर न कर सकोगी। सदा पास रहूँगा। यदि अनन्तकाल तक भी बाबा वेश धारण करना पड़ा, तो किये रहूंगा। मैं आपके कृपा कटाक्ष के लिये संसार भर की विपत्तियां झेलने की सामर्थ्य रखता हूँ।'

गोमती के पीले चेहरे पर मुस्कराहट आई। बोली—'रामदयाल कुछ इसी तरह की बात कुमुद से कुंजरसिंह भी कह रहे थे।'

रामदयाल झेंप गया, परन्तु नीची आंखें किये हुये ही बोला—'मालूम नहीं, कुंजरसिंह के असली भाव को कुमुद ने समझ पाया या नहीं।'

'उसका असली भाव क्या रहा होगा ?' गोमती ने अलसाते स्वर में कुछ लापरवाही के साथ पूछा।

रामदयाल ने जवाब दिया—'असली भाव, यदि कुञ्जर सच बोल रहे थे, तो यही रहा होगा कि लो या न लो, कुचल दो या ठुकरा दो, परन्तु मेरा हृदय तुम्हारे लिये मेरी हथेली पर है।'

गोमती खड़ी हो गई। बोली—'बहुत थकावट मालूम होती है। जाड़ा-सा लग रहा है। अब चलो।'

[७३]

राजा देवीसिंह ने तीन ओर से अलीमर्दान के ऊपर आक्रमण करने का निश्चय किया। सिंहगढ़ से लोचनसिंह दलीपनगर से पालर होते हुये स्वयं और बड़े गांव से जनार्दन शर्मा दस्ते ले चलें, इस योजना पर कार्य करना निर्धारित हुआ। यह निश्चय किया गया था कि लोचनसिंह नवाब को भांडेर में कुछ समय तक अटकाये रक्खे, तब तक राजा पालर से आकर रानियों को परास्त कर देंगे और भांडेर पहुंचकर लोचनसिंह की सहायता करके नवाब का अड्डा समाप्त कर देंगे तथा जनार्दन का दस्ता ज़रूरत पड़ने पर कुमुक पहुंचाने के लिये बड़ेगांव से भांडेर की ओर राजा के पीछे पीछे बढ़ेगा।

रामनगर में रानियों को पालर वाली सेना के आने की सूचना मिली। उनके पास भी कुछ सरदार और सैनिक इकट्ठे हो गये थे। रामनगर गढ़ हाथ में था, परन्तु पड़ोस में बिराटा का कटक भी था। रामनगर के राव पतराखन को बिराटा के सबदलसिंह के प्रति सुहृद भाव बनाये रखने के लिये विशेष कारण न था। इस समय यह काफ़ी तौर पर प्रकट हो गया था कि सबदलसिंह ने नवाब के मुक़ाबिले के लिये राजा देवीसिंह को निमन्त्रित किया है। पतराखन को मालूम था कि रानियों के पक्ष में नवाब है, परन्तु नवाब ने बिराटा पर चढ़ाई करने का अभी तक कोई लक्षण नहीं दिखलाया था। रामनगर में रानियों और पतराखन की स्थिति तभी तक सुरक्षित समझी जा सकती थी, जब तक बिराटा और पालर की ओर से आई हुई सेनाओं का सहयोग हुआ था। पतराखन को अपनी गढ़ी पर इतना मोह न था, जितना उसमें रक्खी हुई संचित सम्पत्ति और गाढ़े समय में काम आने वाले अपने थोड़े से, परन्तु निर्भीक योद्धाओं का। समस्या ज़रा कराल रूप में सामने खड़ी देखकर उसने रामदयाल को बुलाया। वह उसी दिन बिराटा से लौटकर आया था। उसने रानियों से सलाह करने के लिये मिलने की इच्छा प्रकट की। रामदयाल उसे रनिवास में ले गया। पर्दे में होकर रानियों

से प्रत्यक्ष बातचीत होने लगी। किसी बीच वाले की ज़रूरत नहीं पड़ी।

छोटी रानी ने कहा—'पर्दे से काम नहीं चल सकता रावसाहब। अटक पड़ने पर तो मुझे तलवार हाथ में लेकर रण-क्षेत्र में जाना पड़ेगा।'

पतराखन के जी में लड़ने के लिये बहुत उत्साह न था, तो भी तेजी दिखलाते हुये उसने कहा—'ठीक है महाराज और वह दिन शीघ्र आने वाला है। देवीसिंह अपनी सेना लेकर आ रहे हैं। बहुत सम्भव है कल तक हम लोग यहीं घिर जायँ या बिराटा की गढ़ी से तोप हमारे ऊपर गोले उगलने लगें।'

छोटी रानी ने कहा—'तब हमें तुरन्त अपनी सेना पहले से ही भेजकर कहीं पालर के पास ही लड़ाई करनी चाहिये और जैसे बने, बिराटा की गढ़ी अपने हाथ में कर लेनी चाहिये।'

पतराखन बोला—'मुझे दोनों प्रस्ताव पसन्द हैं, परन्तु आदमी मेरे पास इतने नहीं कि इन प्रस्तावों में से एक को भी सफलता पूर्वक कार्य में परिणत कर सकूँ। बिना नवाब की सहायता के कुछ न होगा। मालूम नहीं, उन्होंने अभी तक बिराटा को क्यों अपने अधिकार में नहीं लिया।'

बड़ी रानी ने कहा—'बिराटा को हमें स्वयं अपने अधिकार में कर लेना चाहिये, नहीं तो नवाब कदाचित् वहां के मन्दिर को तुड़वा डालेगा।'

छोटी रानी बोली—'यह असम्भव है।'

पतराखन ने कहा—'असम्भव तो कुछ भी नहीं है, परन्तु वह ऐसा करेगा नहीं। सबदल ने उनके साथ जैसा बर्ताव किया है, उससे यह प्रकट होता है कि नवाब मन्दिर को छोड़कर गांव-भर को तो अवश्य ही तहस-नहस कर देगा।'

रामदयाल बोला—'गांव को खाक करने से क्या मतलब? नवाब तो उस दांगी की छोकरी का डोला चाहते हैं, जिसे मूर्खों ने अवतार मान रक्खा है।'

बड़ी रानी ने पूछा—'कौन को ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'मैं स्वयं उसे देख आया हूं। वह नित्य देवी से कुञ्जरसिंह की सफलता के लिये प्रार्थना किया करती है और कुञ्जरसिंह नित्य यह सोचा करते हैं कि अन्नदाता और देवीसिंह को परास्त करके दलीपनगर के राजसिंहासन पर बैठ जाऊं और कुमुद को अपनी रानी बना लूं। महाराज, अपनी आंखों सब हाल देख आया हूं। मैंने अपने को वहां राजा देवीसिंह का नौकर प्रसिद्ध कर रक्खा है।'

'राजा देवीसिंह !' छोटी रानी ने अत्यन्त घृणा के साथ कहा—'चाहे कुछ हो जाय, देवीसिंह राजा न रहने पावेगा।'

पतराखन अधैर्य के साथ बोला—'जो कुछ करना हो, जल्दी करिये। मेरी राय है कि रामदयाल को नवाब के जताने के लिये तुरन्त भेजिये, अपने सरदारों और सैनिकों को दो भागों में बांटकर एक को देवीसिंह से लड़ने के लिये पहुंचाइये और दूसरे को विराटा के ऊपर धावा करने के लिये भेजिये। एक ओर से आपकी टुकड़ी विराटा पर धावा करे और दूसरी ओर से मेरी टुकड़ी। मैं उस पार जाकर उधर से धावा करूंगा और विराटा वालों को निकल भागने का अवसर न दूंगा।'

रामनगर की गढ़ी से विराटा की गढ़ी स्पष्ट दिखलाई पड़ रही थी—करीब एक कोस की दूरी पर पानी में खड़े हुये एक स्तम्भ-सदृश प्रतीत होती थी।

बड़ी रानी ने कहा—'विराटा की उस कन्या का क्या होगा ? क्या उसे मुसलमानों द्वारा मर्दित होते हुये देखा जायगा ?'

रामदयाल ने तुरन्त उत्तर दिया—'उसी लोभ के वश असल में नवाब हमारा साथ देने को यहां आवेगा। दलीपनगर का एक चौथाई राज्य भी उसे चाहिये, परन्तु उस लड़की के बिना वह तीन चौथाई हिस्से पर भी लड़ने को इन दिनों राजी न होगा। फिर भी मैं विश्वास दिलाता हूं कि मैंने ऐसा प्रबन्ध किया है कि उस लोभ से नवाब हमारी सहायता के लिये आवे और यथासम्भव उसे पावे नहीं।'

बड़ी रानी ने पूछा—'यह कैसे होगा ?'

उसने उत्तर दिया—'यह ऐसे कि विराटा में कुञ्जरसिंह विद्यमान हैं। वह उस लड़की को बिना अपनी रानी बनाये दम नहीं लेंगे, चाहे दलीपनगर का या दलीपनगर की एक हाथ भूमि का भी राज्य मिले या न मिले। विराटा के अधिकृत होने के पहले ही मुझे पूर्ण आशा है वह लड़की कुञ्जरसिंह के साथ किसी सुरक्षित स्थान में भाग जायगी। मैं पानी के मार्ग से नाव में होकर विराटा आया-जाया करूँगा और सब समाचार दिया करूँगा अर्थात् जब तक विराटा अपने अधिकार में नहीं आया।'

बड़ी रानी इस बेतुके उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुईं। कुछ पूछना चाहती थीं कि छोटी रानी बीच में पड़ गईं। बोलीं—'ऐसी छोटी-छोटी बातों पर इस समय ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। रामदयाल जो कह रहा है, वह ठीक है। तुरन्त नवाब को ससैन्य बुलाना चाहिये। रामदयाल, तुम इसी समय घोड़े पर सवार होकर सरपट जाओ। मैं चाहती हूँ कि सवेरा होने के पहले ही हमारी और नवाब की सेनायें देवीसिंह को कुचलने और विराटा को ढाह देने के काम में नियुक्त हो जायें।'

रामदयाल ने स्वीकार किया।

पतराखन ने कहा—'मैं उस पार जाकर अपनी योजना को काम में लाता हूँ।'

रामदयाल भांडेर की ओर गया और पतराखन गढ़ी को अपने सिपाहियों और सम्पत्ति से खाली करके उस पार सुरक्षित जंगल में चला गया। परन्तु तोप वहीं छोड़ गया।

[७४]

रामदयाल बहुत तेजी के साथ भांडेर गया और दिन-ही-दिन में नवाब के सामने जा पहुंचा। दिल्ली से एक बहुत जरूरी फ़रमान आया था कि तुरन्त सम्पूर्ण सेना लेकर दिल्ली आ जाओ। इस फ़रमान को आये हुये कई दिन हो गये थे। अलीमर्दान को राजा देवीसिंह की तैयारियों की ख़बर लग चुकी थी; इसलिये और शायद किसी और कारणवश भी अलीमर्दान स्वयं तो दिल्ली की ओर रवाना नहीं हुआ; परन्तु उसने अपनी सेना के एक काफ़ी भाग के साथ कालेखां को दिल्ली की ओर भेज दिया। वह भांडेर में ही बना रहा। राजा देवीसिंह को कुछ समय तक रोके रहने के लिये उसने एक चाल चली; दलीपनगर को संधि का प्रस्ताव भेजा। कहलवाया कि दो निकटवर्ती राज्यों में मेल रहना चाहिये। लड़ाई की तैयारी बन्द कर दो, नहीं तो अनिवार्य-संकट में पड़ जाओगे। राजा इसका उत्तर नहीं देना चाहता था, परन्तु जनार्दन नहीं माना। उसने एक बड़ी मीठी चिट्ठी लिखवाई, जिसके लम्बे वाक्यों का सार यह था कि यहां भी तुरन्त लड़ डालने की किसी की अभिलाषा नहीं है। इस संधि-प्रस्ताव और उसकी अर्द्ध-स्वीकृति पर दोनों को संदेह था।

देवीसिंह रानियों से लड़ने जा रहा था। जानता था कि अलीमर्दान उत्तर से सहायता के लिये आयेगा, तब इस संधि की रद्दी के टुकड़े से भी बढ़कर प्रतिष्ठा न होगी। अलीमर्दान का विश्वास था दलीपनगर मेरे चकमे में आ गया है।

रामदयाल को ऐसी हड़बड़ी में आता देखकर अलीमर्दान को आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि वह समय ऐसा था कि अचेती और अनजानी उलझनें अकस्मात् उपस्थित हो जाया करती थीं।

एकान्त पाने पर रामदयाल ने कहा—'हजूर, मामला बहुत टेढ़ा है। राजा देवीसिंह की सेना रामनगर पर बढ़ी चली आ रही है।'

'कब ?' अलीमर्दान ने पूछा।

'आज पालर के करीब थीं।' उसने उत्तर दिया—'कल संध्या तक रामनगर और बिराटा पर दखल हो जाने का भय है।'

'मेरी आधी सेना तो कालेखाँ के साथ दिल्ली चली गई है।'

'परन्तु जो कुछ सरकार के पास है, वह सरकार के शत्रुओं के दांत खट्टे करने के लिये बहुत है।'

'तुम लोगों के पास कितनी सेना है।'

रामदयाल ने अपनी सेना का कूता अलीमर्दान को बतलाया।

अलीमर्दान ने कहा—'तब तक इतनी सेना से लड़ो। काफ़ी है। कुछ समय बाद हमारी कुमुक पहुँच जायगी।'

रामदयाल घबराकर बोला—'तब तक हम लोग शायद बिलकुल पिस-कुट जायें। बिराटा से सबदल और कुञ्जरसिंह हम लोगों को संतप्त करेंगे, उधर से देवीसिंह हमें भून डालेंगे, रामनगर के रावसाहब अपनी सेना लेकर उस पार जंगलों में चले गये हैं। यदि उन्होंने बिराटा पर आक्रमण न किया, तो हम लोग ऐसे गये, जैसे पिंजड़े में बन्द चिड़िया को बिल्ली मरोड़ देती है।'

'बेतवा-किनारे के किलेदारों को।' अलीमर्दान ने कहा—'मैं खूब जानता हूँ। ऐसे बदमाश और दग़ाबाज़ हैं कि कुछ टिकाना नहीं। कई बार सोचा, मगर मौक़ा नहीं मिला। अबकी बार मौका मिलते ही पहले इन बन बिलावों को मटियामेट करूँगा।'

कुछ उत्साहित होकर रामदयाल बोला—'वह मौक़ा हुज़ूर न-जाने कब आने देंगे। सरकार सोचें, कैसी विकट समस्या हम सब लोगों के लिये है। हमें मिटाने के बाद निश्चय ही देवीसिंह आपको छेड़ेगा। फिर क्यों उसे इस समय छोड़ा जाय ?'

अलीमर्दान ने सोचकर कहा—'बिराटा में है कुञ्जरसिंह ?'

'हाँ, सरकार।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'और कमर कसकर

हुजूर से लड़ने के लिये तैयार है। सबदलसिंह बाग़ी हो गया है। लड़ेगा। उसने देवीसिंह को इस ओर आपसे और रानी साहब से लड़ने के लिये बुलाया है। उसी के साथ कुञ्जरसिंह हो गया है।'

स्वप्न-सा देखते हुये अलीमर्दान ने कहा—'बाग़ी तो कुल बेतवा का किनारा ही है, अकेला सबदल क्या। पर अबकी बार उसके क़िले को जमीन में मिला देना है।'

फिर मुस्कराकर बोला—'केवल तुम्हारे मन्दिर को छोड़ दूंगा। तुम जानते हो कि मन्दिरों से मुझे दुश्मनी नहीं है।'

जिस बात के कहने के लिये रामदयाल उकता-सा रहा था, अवसर मिलने पर प्रकट किया—'मन्दिरों को तो हुजूर ने कभी छुआ नहीं है। उसी मंदिर में पालरवाली वह दाँगी की जवान लड़की भी है। वह पद्मिनी जाति की स्त्री है।'

नवाब ने अधिक मुस्कराहट के साथ पूछा—'अभी तक वहाँ से भागी नहीं? मैं समझता था, चली गई होगी। बड़ी दिक़्क़त तो यह है कि बहुत-से हिंदू उसे देवी का अवतार मानते हैं।'

रामदयाल बोला—'तब हुजूर को पूरी बात का पता नहीं है। वह मंदिर में इस समय तो है, परन्तु कुछ ठीक नहीं, कब कुञ्जरसिंह के साथ भाग जाय।'

नवाब ज़रा चौंका। कहने लगा—'क्या यह बात है? रामदयाल, तुम सच कह रहे हो? यदि बात सच है, तो क्या हिन्दुओं का यह सिर्फ़ ढकोसला ही है?'

रामदयाल ने जवाब दिया—'बिलकुल। मैंने अपनी आँखों से उन लोगों को देखा है और कान से उनका प्रेम-संभाषण सुना है।'

अलीमर्दान थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा।

रामदयाल से पूछा—'कुञ्जरसिंह का देवीसिंह के साथ मेल हो गया है?'

उसने उत्तर दिया—'मेल तो मैंने नहीं सुना और न होने की कोई संभावना है। कुंजरसिंह को तब तक और बिराटा की गढ़ी में रहा समझिये, जब तक कुमुद उसके साथ नहीं भागी है। पीछे फिर चाहे देवीसिंह से या किसी से लड़े या न लड़े।'

थोड़ी देर के लिये अलीमर्दान फिर सोच-विचार में पड़ गया।

कुछ देर में बोला—'तुम्हारी यह इच्छा है कि मैं बिराटा की तरफ़ तुरन्त कूच करूँ।'

हाथ जोड़कर रामदयाल ने उत्तर दिया—'हुजूर मेरी क्या, आपकी राखीबंद बहन रानी साहब की भी यही प्रार्थना है।'

अलीमर्दान ने बड़ी चेतनता के साथ कहा—'अभी तैयारी होती है। तुम चलो। आता हूं। कुन्जरसिंह को भी सजा देनी है और उस अहमक़ सबदल को भी सबक़ सिखलाना है। दो-तीन दिन में ही यह सब काम निबट जायगा। मैं पहले बिराटा को देखूँगा।'

रामदयाल चलने लगा।

चलते-चलते उससे अलीमर्दान बोला—'मेरे आने तक इतना प्रबन्ध जरूर हो जाय जिसमें बिराटा का कोई भी व्यक्ति बाहर न निकल जाने पावे।'

रामदयाल ने चालाकी से, आँख का कोना बारीकी के साथ दबाकर कहा—'हो गया है। यदि कोई कसर होगी, तो मिटा दी जायगी। आप बिलकुल विश्वास रक्खें।'

अलीमर्दान हँसकर बोला—'इनाम पाओगे—ऐसा कि तुमने स्वप्न में भी कल्पना न की होगी।'

रामदयाल प्रणाम करके चलने लगा।

नवाब ने कहा—'पहले हम रामनगर नहीं आयँगे। जब तक हम न आ जायँ मुक़ाबला करते रहना।'

अलीमर्दान ने अपने सब सरदारों को इकट्ठा करके संपूर्ण सेना को जल्दी-से-जल्दी तैयार किया। भांडेर में थोड़ी-सी सेना छोड़कर बाकी

सेना लेकर वह पहर रात गये चल पड़ा। सालौन भरौली में, जो भांडेर के क़रीब ४-५ मील पर है, सेना को थोड़ा-सा विश्राम करने के लिये रोक लिया। प्रातःकाल होने के पहले बिराटा पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया गया था।

[७५]

जिस रात अलीमर्दान की सेना ने सालौन भरौली में डेरा डाला, उस रात बिराटा के राजा ने अपने भाई-बन्दों को इकट्ठा करके लड़ाई की तैयारी की। बाहर निकलकर नवाब की सेना से सफलता-पूर्वक लड़ना बिराटा की सेना के लिये बहुत कठिन था, परन्तु उसे अपने जंगलों, पहाड़ों और 'भाई बेतवा की धार का बड़ा भरोसा था और फिर यह कोई पहली ही चढ़ाई नहीं थी।

मुख्य-मुख्य लोगों की बैठक हुई। सबको विश्वास था कि देवीसिंह समय पर सहायता देंगे। सब जानते थे कि देवीसिंह पालर की ओर से आ रहे हैं, परन्तु सबकी शंका थी कि यदि नवाब की सेना बीच में आ पड़ी तो राजा की सेना का इस ओर आना बहुत कठिन हो जायगा और यदि नवाब ने एक दस्ता बिराटा को नष्ट करने के लिये भेज दिया और उसी समय रामनगर से आक्रमण हो गया, तो भयंकर समस्या उपस्थित हो जायगी।

इन सब बातों पर विचार हुआ। अधिकांश लोगों में लड़ाई का उत्साह था। सबदलसिंह संयत भाषा में बोल रहा था, परन्तु दृढ़ता-पूर्ण निश्चय से भरा हुआ था।

अन्त में कुमुद के विराटा में बने रहने के विषय में प्रश्न उपस्थित हुआ। अधिकांश लोगों की धारणा हुई कि कुमुद को किसी दूसरे स्थान पर भेज देना चाहिये। सबदलसिंह अपने निश्चय से न डिगा। उसने कहा—'मैं फिर यही कहूँगा कि उनके यहां बने रहने में ही हम लोगों की कुशल है। उन्हें यहाँ से हटाओ, तो मूर्ति को हटाओ, मन्दिर को हटाओ।'

अन्त में निश्चय हुआ, जैसा ऐसे अवसरों पर निश्चय हुआ करता है, अभी कुमुद यहीं बनी रहें, परन्तु कुअवसर आते ही तुरन्त उस पार किसी सुरक्षित स्थान में पहुंचा दी जायें।

कुञ्जरसिंह वहीं था—सभा में नहीं, सभा से दूर मन्दिर में। परन्तु उसका बिराटा में होना सबदलसिंह को मालूम हो गया था और लोगों ने इच्छा प्रकट की कि कुञ्जरसिंह को हटा दिया जाय।

नरपति बोला—'परन्तु वह कहते हैं कि हम दुर्गा की रक्षा करते-करते अपना प्राण देंगे, हमें किसी के राजपाट से कुछ सरोकार नहीं। उन्होंने शपथ-पूर्वक कहा है कि हम देवीसिंह के साथ नहीं लड़ेंगे।'

सबदल ने कहा—'यह तो ठीक है, परन्त जब देवीसिंह को मालूम होगा कि कुञ्जरसिंह हमारे यहाँ आश्रय पाये हुये हैं, तब हमारी बात पर से उनका विश्वास उठ जायगा और वह अपना हाथ हमसे खींच लेंगे।'

नरपति बोला—'तब जैसा आप चाहें, करें; परन्तु वह अपनी शरण में हैं और यह स्मरण रखना चाहिये कि राजकुमार हैं। किसी के भी सब दिन एक-से नहीं रहते। उन्होंने शपथ ली है कि हमें किसी के राजपाट से कोई सरोकार नहीं।'

सबदल ने अपनी सम्मति बदलते हुये कहा—'वह हमारे और देवीसिंह राजा दोनों के समान शत्रु से लड़ने में सहायक होंगे। सुना है, तोप अच्छी चलाते हैं। मन्दिर में बना रहने देंगे। वहाँ से वह तोप चलावेंगे। कोई हर्ज नहीं।'

लोगों में इस बात पर बहस हुई कि कहीं नवाब से मिल न जायें। नरपति बोला—'यह असम्भव है। मैं उन्हें बहुत दिन से जानता हूं। वह पालर में नवाब की सेना से लड़े थे। बड़े विकट योद्धा हैं।'

'परन्तु वह।' सबदल ने कहा—'नवाब के साथ मिलकर देवीसिंह के खिलाफ़ भी लड़ चुके हैं।' सबदल के मन में फिर सन्देह जाग्रत हुआ।

नरपति सोच में पड़ गया। वह सिंहगढ़ की सब बातें न जानता था। कुछ क्षण बाद बोला—'कुमुद देवी विश्वास दिलाती हैं कि कुञ्जरसिंह कभी दग़ा न करेंगे। छल उन्हें छू नहीं गया है। वह तोप चलाने का काम बहुत अच्छा जानते हैं।'

अन्त में यह तय हुआ कि कुञ्जरसिंह को गढ़ से न हटाया जाय, परन्तु कोई विशेष महत्त्व का कार्य उन्हें न दिया जाय।

[७६]

अलींमर्दान की सेना ने बिराटा को और दलीपनगर की सेना ने रामनगर को अपना लक्ष्य बनाया। लोचनसिंह भाँडेर पर धावा करना चाहता था, परन्तु देवीसिंह की स्पष्ट आज्ञा थी कि भांडेरपर आक्रमण करके कठिनाइयों को न बढ़ाया जाय। यह प्रपंच लोचनसिंह की समझ में अच्छी तरह न आता था कि भांडेर की सेना हमारे ऊपर तो आक्रमण करे और हम शत्रु के राज्य के बाहर से उसका विरोध करें, परन्तु उसके घर में घुसकर मार न करें। इसका समाधान लोचनसिंह को इस प्रकार मिला कि दिल्ली का बादशाह इस भाँति की लड़ाई को आत्म-रक्षा समझ कर तरह दे देगा, परन्तु शाही सूबे में घुसकर मार-काट करने को चुनौती का रूप दे डालेगा। इस कल्पना को वह आत्म-प्रवंचना कहता था, परन्तु राजा की आज्ञा होने के कारण वह उसका प्रतिकार न कर सकता था। निदान उसे भी अपना ध्यान बिराटा-रामनगर की ही ओर दौड़ाना पड़ा।

उधर अलीमर्दान ने सालौन भारौली से शीघ्र कूच कर दिया। तोपें वह बहुत कम साथ ला सका था। बिराटा में प्रवेश करने की उसने पूरी चेष्टा की, परन्तु मुसावली के पास दलीपनगर के कई दस्तों के साथ मुठभेड़ हो गई। सन्धि के पूर्व पत्र-व्यवहार की किसी पक्ष को चिन्ता न रही। इस मुठभेड़ में दोनों दलों को अनचाहे स्थानों पर मोर्चाबन्दी करनी पड़ी। अलीमर्दान की सेना धनुष के आकार में नदी किनारे-किनारे रामनगर के नीचे तक भरकों में फैल गई। दलीपनगर की सेना रामनगर और बिराटा को हस्तगत करने के प्रयत्न में इस मोर्चेबन्दी का प्रतिकार करने में प्रथम से ही विवश हुई। न तो अलीमर्दान रामनगर की टुकड़ी से मिल पाता था और न दलीपनगर की सेना बिराटा में पहुँच पाती थी। रामनगर के गढ़ से बिराटा और देवीसिंह के मोर्चों पर गोला-बारी की जा रही थी, परन्तु इतनी शिथिलता और अनजानपने के साथ कि वह बहुत कम हानि पहुँचा रही थी। उधर बिराटा की सेना को अपनी

भौगोलिक स्थिति के कारण अधिक सुभीता था, परन्तु अलीमर्दान की रोकथाम के सिवा वहाँ के भी गोलंदाज और अधिक कुछ नहीं कर पा रहे थे। परन्तु दलीपनगर की तोपें रामनगर की गढ़ी को ढीला कर देने में कोई कसर नहीं लगा रही थीं।

जब कभी एक दल दूसरे पर खुल्लमखुल्ला टूटकर इस या उस गढ़ को हथियाने की कोशिश करता था, तभी भीषण मार-काट हो पड़ती थी और आक्रमण करने वाले दल को पीछे हटना पड़ता था।

इस तरह लड़ते-लड़ते कई दिन हो गये। देवीसिंह को चिन्ता हुई। मंत्रणा के लिए एक दिन राजा, जनार्दन, लोचनसिंह और कुछ और सरदार बैठे।

जनार्दन ने कहा—'यदि अलीमर्दान के पास और कुमुक आ गई या बादशाह ने हम लोगों को बागी समझ कर दिल्ली से कोई बड़ा दस्ता भेज दिया, तो बड़ी कठिनाई होगी। युद्ध खिच गया है, कौन जाने क्या होगा।'

लोचनसिंह बोला—'होगा क्या, आप अपने घर में बैठ कर जप-तप करना, हम अपनी निवट लेंगे।'

'इन बातों से काम न चलेगा, लोचनसिंह' राजा ने कहा—'इस समय हम यह निश्चय कर रहे हैं कि शीघ्र क्या करना चाहिये।'

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'मेरी समझ में तो यह आता है कि इधर-उधर की हाथापाई छोड़ कर भांडेर पर जोर का हल्ला बोल दिया जाय, तो अलीमर्दान को लेने के देने पड़ जायेंगे।'

'यह तो नहीं हो सकता।' जनार्दन ने कहा।

'राजनीति इस समय ऐसा करने से रोकती।' देवीसिंह बोला।

'राजनीति अर्थात् शर्मा जी महाराज जब जैसा हम लोगों को वतलावें।' लोचनसिंह ने कहा।

राजा देवीसिंह ने नियन्त्रण करने के ढङ्ग पर कहा—'नहीं, मैं इसे ठीक समझता हूँ, चामुंडराय। भांडेर हमारे दृष्टिकोण से इस समय परे है।'

'तब या तो इसी तरह युद्ध को लस्टम-पस्टम चलने दीजिये या घर लौट चलिये।' लोचनसिंह बोला।

लोचनसिंह की इस गम्भीर सम्मति पर कुछ क्षण तक किसी ने कुछ न कहा।

लोचनसिंह तुरन्त बोला—'मुझे महाराज जो आज्ञा दें उसके लिये तैयार हूं, परन्तु केवल राजनीति-विशारदों से लड़ाई के दांव-पेंच सीखने का उत्साह मेरे भीतर नहीं है। उस सेना का भार, जिसका संचालन शर्माजी कर रहे हैं किसी और को दीजिये, तब —'

राजा ने कहा—'तुम्हें आपे से बाहर हो जाने की बहुत आदत पड़ गई है।'

'अब बोलूं, तो जीभ काट लीजियेगा। कहिये, तो यहां से अपने डेरे पर चला जाऊं।' लोचनसिंह ने बिना क्रोध के कहा।

कुछदेर के लिये सन्नाटा छा गया। ऐसा जान पड़ा, मानो लोचनसिंह के अलक्ष्य आतंक को आस-पास के वायु-मण्डल ने भी सीख लिया हो।

राजा देवीसिंह ने स्नेह और दृढ़ता के ढङ्ग से कहा—'चामुंडराय, कल तुम्हारी शूरता और विलक्षण स्फूर्ति की फिर परीक्षा है।'

लोचनसिंह बोला—'क्या आज्ञा है?'

'कल रामनगर की गढ़ी में हम लोग प्रवेश कर लें।' राजा ने कहा। शब्दों की झंकार सब लोगों के कानों में समा गई।

लोचनसिंह की आंखों से चिनगारी-सी छूटी, बोला—'आज्ञा का पालन होगा, परन्तु दो शर्तें हैं।'

राजा ने कहा—'तुमने चामुंडराय, कभी आज तक वीरता-प्रदर्शन में शर्त नहीं लगाई। आज नई बात कैसी? परन्तु खैर, मैं वचन देता हूं, रामनगर की गढ़ी और आस-पास का इलाका तुम्हारा होगा।'

लोचनसिंह हँसा, ऐसा कि पहले शायद ही कभी इस तरह हँसते देखा गया हो। फिर गम्भीर होकर अवहेलना के साथ बोला—'रामनगर की गढ़ी और मेरे पास जो कुछ है, वह सब मैं उसे दे दूँगा, जो अलीमर्दान की फौज को चीरकर बिराटा में कल पहुंच जाय। महाराज मेरी इस भांति की शर्त नहीं है।'

'फिर क्या है?' जनार्दन ने सकपकाकर और खुशामद की दृष्टि से पूछा।

'पहली तो यह' लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'कि सैन्य संचालन का काम आपके हाथ में न रहे और दूसरी यह कि मैं यदि मारा जाऊं, तो मेरी लाश की मिट्टी बिगड़ने न पावे, उसकी खोज करके शास्त्र के अनुसार दाह किया जाय। नदी में न फेंका जाय और न किसी गडढे में डाला जाय।'

'स्वीकृत है।' राजा ने प्रसन्न होकर कहा—'जनार्दन मेरे साथ रहेंगे। मैं अब इनके दस्ते का संचालन करूँगा। परन्तु जागीर देने की मेरी शर्त भी मान्य रहेगी।'

लोचनसिंह उत्तेजित होकर बोला—'तब मैंने जो कुछ कहा है, वह भी मान्य रहेगा, क्योंकि रामनगर के विजय करने के बाद यों भी मैं ही उसका स्वामी होऊँगा। केवल राजा न होने के कारण ही उसे आपके हाथों अर्पण करके फिर ले लेना कोई बड़े महत्व की बात न होगी।

राजा ने कुछ नहीं कहा। बात उड़ाने के लिये केवल हँस दिया।

जनार्दन के जी में कुछ खटक गया था। परन्तु वह भी बरबस मुस्कराने लगा। उस मुस्कराहट ने लोचनसिंह को किंचित् भी कुंठित नहीं किया। जनार्दन अपनी दुर्दशा छिपाने के लिये छटपटाने लगा।

उपयुक्त अवसर पाकर बोला—'मैं इनकी लाश को तलाश करके शास्त्रोक्त अन्त्येष्टि क्रिया करने का प्रण करता हूं। इन्हें वास्तव में और कुछ चाहिये भी नहीं।'

रामनगर पर करारा धावा करने की बात तय हुई।

[७७]

बिराटा की रक्षा दृढ़ता के साथ हो रही थी। दांगियों ने अपने स्थान को बचाने के लिये प्राणों की होड़ लगा रक्खी थी। गढ़ी के भीतर आदमी बहुत अधिक न थे। तोपें भी थोड़ी ही थीं। तोपों के चलाने वाले भी चतुर न थे। परन्तु उन लोगों में मर मिटने की लगन थी और विश्वास था कि देवी उनकी सहायता पर हैं।

नदी के पश्चिम तटवर्ती भरकों से अलीमर्दान की सेना बिराटा की गढ़ी पर आक्रमण करती थी, परन्तु बेतवा की धार उसे विफल-मनोरथ कर देती थी। असल में देवीसिंह की सेना की चपेट के कारण अलीमर्दान को बिराटा के पीस डालने का अवकाश न मिल पाता था, नहीं तो बिराटा के थोड़े से बहादुर दाँगी बहुत देर तक नहीं टिक सकते थे।

बिराटा-युद्ध में कुञ्जरसिंह को अब तक कोई स्थान न मिल सका था। सबदलसिंह की यह धारणा थी कि कुञ्जरसिंह को हरावल में या कहीं पर भी कोई मुख्य पद देने से देवीसिंह का विमुख हो जाना सम्भव है। ऐसी दशा में उसे मन्दिर की रक्षा के काम पर नियुक्त कर दिया। कुञ्जरसिंह को बिराटा से निकल भागना असम्भव था। सबदलसिंह को विश्वास था कि उसे वहां केवल बने रहने देने में देवीसिंह अप्रसन्न न होंगे।

कुंजरसिंह हथियार लिये हुये मन्दिर में बना रहता था। जब कभी पड़े-पड़े मन ऊब उठता था, तब मन्दिर की प्राचीर के पास से बेतवा की धारा कोटकटकी लगाकर देखने लगता था। कुमुद, गोमती और नरपति रात-दिन मन्दिर के उत्तर वाले खंड के निचले स्थान में नीचे की एक खोह में बने रहते थे। प्रातःकाल दुर्गा-पूजन के निमित्त थोड़ी देर के लिये मन्दिर में आते थे। कुमुद से बातचीत करने का और कोई अवसर न मिलता था अथवा कुंजर बात करने के लिये कोई उपयुक्त अवसर न ढूंढ़ पाता था।

एक दिन कुञ्जर ने रामदयाल को मन्दिर के पास अचानक देखा। चकित हो गया। खासा कड़ा पहरा होते हुये भी कैसे प्रवेश पा गया?

उसकी पहली इच्छा यही हुई कि तलवार के एक वार से समाप्त कर दें, परन्तु रामदयाल मुस्कराता हुआ उसी की ओर बढ़ा। कुञ्जरसिंह अपनी इच्छा पूरी करने में हिचक गया।

रामदयाल ने कहा—'राजा मुझे शायद अपना शत्रु समझते हैं। सम्भव है, राजा की कल्पना सही हो।'

कुञ्जरसिंह इस बेधड़क मन्तव्य पर क्षुब्ध हो गया और किंकर्तव्य-विमूढ़।

रामदयाल ने और पास आकर कहा—'परन्तु आप और मैं समान भाव से इस गढ़ी की रक्षा के आकांक्षी हैं। मैं अब महारानी की सेवा में नहीं हूँ। राजा देवीसिंह का सन्देश लाया हूं।'

'रानी को किस दलदल में फँसाकर चले आये हो?' कुञ्जर ने कठोरता के साथ प्रश्न किया।

'मैंने किसी को दलदल में नहीं फँसाया है।' रामदयाल ने ठंडक के साथ उत्तर दिया—'मैं खुद उनके पीछे बहुत बरबाद हुआ हूं बहुत मारा-मारा फिरा हूँ। उनका मुझ पर भी विश्वास नहीं रहा, तब निकाल दिया। मैं राजा देवीसिंह की शरण में गया। उन्होंने क्षमा-प्रदान करके अपना लिया है और यहां भेजा है। राजा देवीसिंह के नाते से आप भले ही मुझे अपना बैरी समझें, परन्तु मैं आपके बैर के योग्य नहीं हूं।'

कुञ्जरसिंह ने एक क्षण सोचा। रामदयाल की बात पर उसे ज़रा भी विश्वास न हुआ, परन्तु उसे मार डालने की इच्छा में अनेक विघ्न दिखलाई दिये।

पूछा—'क्या सन्देशा लाये हो?'

उत्तर मिला—'यदि क्षमा किया जाऊँ, तो मैं यह कहना चाहता हूं कि मेरा सन्देशा वहाँ के राजा सबदलसिंह के लिये ही है।'

कुञ्जरसिंह का जी जल गया। बोला—'तब चलो उनके पास। मैं साथ चलता हूँ।'

'किसी को भेजकर उन्हें यही बुलवा लीजिये। सबके सामने जाने से सन्देश के रहस्य के खुलकर फैल जाने का भय है।' रामदयाल ने कहा।

पास ही एक तोप लगी हुई थी। गोलंदाज़ और कई सैनिक वहीं नियुक्त थे। जरूरी काम के नाम से कुंजर ने एक सैनिक को बुलाकर कहा—'यह मनुष्य शत्रु या मित्र पक्ष का है। अभी निश्चय नहीं हो सकता कि किस श्रेणी में इसे समझा जाय। राजा से कुछ बात करना चाहता है। उन्हें तुरन्त यहां भेज दो। मैं इस पर तब तक पहरा लगाये हूं।'

रामदयाल गमनोद्यत सिपाही से बोला— राजा से कह देना कि मैं यहीं पर वध कर दिया जाऊँ, यदि शत्रु-पक्ष का निकलूं या यदि मेरी बात उपयोगी सिद्ध न हो।'

थोड़ी देर में वह सैनिक सबदलसिंह को लेकर आ गया। राजा ने उतावली में पूछा—'क्या बात है ?'

वह बोला—'क्या में राजा कुँजरसिंह के सामने कह सकता हूं ? राजा देवीसिंह का सन्देशा है।'

कुञ्जरसिंह ने झुँझलाकर बीच में ही कहा—'मैं अब बिराटा का शुभाकांक्षी हूं, तब जो बिराटा के मित्र हैं, वे मेरे मित्र हैं और जो उसके शत्रु हैं, वे मेरे शत्रु।'

सबदलसिंह बोला—'तुम अपना संवाद सुनाओ।'

रामदयाल ने कहा—'कल बड़े जोर का आक्रमण आपकी गढ़ी पर होगा—अलीमर्दान की सेना का। उसका ध्यान बटाने के लिये हमारे महाराज रामनगर पर बड़े जोर का हल्ला बोलेंगे। आप तोपों की बाढ़ का पक्का बन्दोबस्त रक्खें।'

'और ?' सबदलसिंह ने पूछा।

'और।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'और संवाद उन्होंने अपनी भविष्य रानी के लिये भेजा है।'

सबदलसिंह ने गोमती के साथ होने वाले देवीसिंह के सम्बन्ध की चर्चा सुन रक्खी था। फिर भी प्रश्न-सूचक दृष्टि से वह रामदयाल की ओर और फिर तुरन्त कुञ्जरसिंह की ओर देखने लगा।

रामदयाल ने असन्दिग्ध भाव से कहा—'यदि आज्ञा हो, तो उनसे ही कह दूँ और विश्वास न हो, तो आपको बतला दूँ।'

सबदलसिंह बोला—'नहीं, वह संवाद मेरे कानों के योग्य नहीं हो सकता। तुम अकेले में कह सकते हो। परन्तु दो दिन तक तुम इस स्थान को छोड़ न सकोगे।'

रामदयाल मुस्कराकर बोला—'मेरे लिये महाराज की आज्ञा भी यही है। अगले दो दिन बड़ी कठिन अवस्था के होंगे। मेरा उनके पास रहना ज़रूरी है।'

अकेले में ले जाकर सबदलसिंह से कुञ्जर ने कहा—'यह आदमी बड़ा नीच और भयंकर है। अपनी गढ़ी में इसका ऐसे समय आना मुझे बड़े अशुभ का द्योतक मालूम होता है।'

सबदलसिंह बोला—'आपको राजा देवीसिंह के किसी मनुष्य को कम-से-कम वर्तमान समय में बुराई नहीं करनी चाहिये। आप मेरे अतिथि हैं और मान्य हैं, परन्तु यह बात आपको ध्यान में रखनी पड़ेगी कि राजा देवीसिंह हम लोगों के परम सहायक हैं। मुझे इस बात की चिन्ता है कि मिलने पर कहीं आपके लिये मुझे उत्तर न देना पड़े। यदि मान लिया जाय कि यह मनुष्य देवीसिंह का नहीं है, तो मैंने इसे कुछ समय तक रुके रहने के लिये कह ही दिया है। आप भी सावधानी के साथ इस पर अपनी दृष्टि रक्खें।'

[७८]

बिराटा में मन्दिर की बग़ल में उत्तर-पश्चिम की ओर एक बड़ी टोर के नीचे एक खोह थी। उसी जगह कुमुद, गोमती और नरपति इन दिनों अपना अधिकांश समय बिताते थे। रामदयाल वहीं पहुँचा। गोमती रामदयाल को देखकर प्रसन्न हुई। दिन-रात सिवा कुमुद और नरपति के साथ के और कोई तीसरा व्यक्ति उपलब्ध न था। दिन-रात सिवा गोलाबारी, मार-काट, हाय-हाय़ कुमुद तथा नरपति की वही बँधी हुई बातों के और कुछ सुनने को कई दिन से नहीं मिला था।

देखते ही रामदयाल के पास आई। बोली—'कब आये ? कैसे आये ? क्या समाचार लाये हो ?'

रामदयाल ने कहा—'अभी आ रहा हूँ, बड़ी कठिनाइयों को पार करके एक बार तो ऐसा जान पड़ा कि अलीमर्दान की तोप मेरी छोटी-सी नाव को चकनाचूरं किये देती है। अँधेरे में एक किनारे से नाव लेकर चला था, परन्तु धीरे धीरे सूर्योदय तक यहां आ पाया हूँ।'

गोमती की आंखों में कृतज्ञता झलक आई। कहा—'क्यों प्राणों को इतने संकट में डाला ?'

रामदयाल गोमती को ज़रा दूर ले जाकर एक चट्टान के पास बातचीत करने लगा।

गोमती बोली—'तुम महाराज के बड़े आज्ञाकारी सैनिक हो।'

'नहीं हूँ।' उसने कहा—मैं आपका आज्ञाकारी सैनिक हूँ।'

'क्या समाचार है ?'

'कहा है, अभी मिलना न होगा। बिराटा पहुंचने पर इतना समय न मिल सकेगा कि बातचीत भी हो सके। जब लड़ाई समाप्त हो जायगी, दलीपनगर का राज्य निष्कटक हो जायगा, महाराज का कहीं कोई वैरी न रहेगा, तब आप रथ में या किसी और सवारी पर दलीपनगर चली आवें।'

'क्या महाराज ने यह सब कहा है ?'

'मैं झूठ बोलने के लिये इतनी आफतों में क्यों अपनी जान डालता ?'

गोमती ने दांत पीसे। कुछ क्षण बाद बोली—'इतनी बात कहने के लिये उन्होंने तुम्हें यहाँ तक पहुँचाया ? क्या वह रामनगर में आ गये हैं ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'अभी रामनगर अधिकार में नहीं आया है।'

रुद्ध स्वर में गोमती ने पूछा—'क्या मुझे चिढ़ाने और तुम्हारा प्राण लेने के लिये ही तुम्हें यहां भेजा है ?'

रामदयाल ने नीची निगाह किये हुये कहा—'एक रहस्य की बात है। इस गढ़ी में यदि किसी को मालूम हो जायगा, तो शायद मैं बकरे की तरह काट डाला जाऊँ।'

गोमती बोली—'तुम कहो रामदयाल। जो जी में आवे, सो कहो। मैं ठाकुर की बेटी हूं। कोई उस रहस्य को मुझसे न पा सकेगा।'

'मुझे महाराज ने निकाल दिया है। राजाओं का कभी किसी को विश्वास न करना चाहिये।'

'तुम्हें निकाल दिया है ! क्यों ?'

'क्योंकि मैंने हठ-पूर्वक कहा था कि बिराटा पर संकटों की बौछार हो रही है। भगवान् न करें, महारानी का कोई बाल बांका हो जाय, इसलिये मुझे अनुमति दीजिये कि बिराटा से दलीपनगर लिवा ले जाऊँ। बोले, मैं राजा हूं, वह मेरे योग्य नहीं है; किसी राजा की लड़की के साथ विवाह करूँगा।'

गोमती सिहर उठी।

बोली—'फिर तुम यहां किसलिये आये ?'

रामदयाल ज़रा सहमा—परन्तु उसकी प्रकृति ढिठाई ने उक्त भाव तुरन्त दबा दिया। कहने लगा—'मैं जिस लिये गोलों और आग की लपटों के इस तूफ़ान में होता हुआ यहाँ तक आया हूं, उसका कारण स्पष्ट है। महाराज ने निकाल दिया, मेरा सब और कोई कहीं भी संसार में नहीं

है। 'आगे नाथ, न पीछे पगहा।' अब तो मैंने निश्चय किया है कि अपना शेष जीवन धूनी रमाकर विताऊँ।'

गोमती ने दूसरी ओर देखते हुये कहा—'महाराज ने यह भी कहा था कि जब संपूर्ण राज्य निष्कण्टक हो जाय, तब मैं किसी का रथ मांगकर दलीपनगर में रहने के लिये दो हाथ ठौर की भीख मांगने जाऊँ।'

वह बोला—'इस तरह की बात तो उन्होंने तब कही थी, जब मैंने बहुत हठ पकड़ा था। उसी हठ में दुर्भाग्य-वश मैं आपे से बाहर हो गया। बहुत बक-झक की, तब महाराज ने मुझे अपने पास से हटाकर ही दम लिया। मैं उनके हुकुम से यहां नहीं आया हूं। अपनी ही प्रेरणा से उपस्थित हुआ हूं। यहां मुझ पर संदेह किया गया है। दो दिन तक एक तरह से यहीं नजर-कैद हूं। इस बीच में इस गढ़ीवालों को आशा है कि महाराज ससैन्य आ जायंगे और तब शायद या तो मुझे प्राण-दंड दिया जायगा, या कम-से-कम सदा के लिये देश-निकाला।'

गोमती तमककर बोली - 'ऐसा कभी न होगा रामदयाल। जब तक मेरी देह में प्राण है, तब तक तुम्हें हानि न पहुंच सकेगी। तुम हम लोगों के साथ इसी खोह में रहो। काफ़ी बड़ी है। बाहर कभी-कभी गोला-गोली पड़ जाती है।'

'परन्तु एक बात का ध्यान रहे।' रामदयाल ने आग्रह के साथ कहा—'किसी तरह भी किसी को यह बात न मालूम होने पावे कि महाराज ने मुझे निकाल दिया है। यहां मुझे लोग राजा का सेवक समझते हैं।'

[७६]

रात का समय था। काली रात। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। पवन ने पेड़ों को चूमकर सुला-सा दिया था। वेतवा अचेत पत्थरों से निरन्तर टकराकर अनन्त कलकल शब्द रच-रचकर रह-रह जाती थी।

कुञ्जरसिंह मन्दिर की दीवार के पास एक टोर की आड़ में, जहां से नदी की धार रामनगर की ओर से आई है, कन्धे से बन्दूक लगाये अकेला बैठा था। उत्साह था, हृदय में अपूर्व बल प्रतीत होता था—मन्दिर की रक्षा के लिये, मन्दिर की विभूति के लिये। दिन को गोलियां पास से निकल जाती थीं, गोले धम से आकर धूल और कंकड़ों को बखेर देते थे। एक छोटी-सी जगह उस युद्ध में सबदलसिंह ने दे रक्खी थी, उसी को उस राजकुमार ने बहुत समझा। मुस्तैदी से अपने स्थान पर डटा रहता था। केवल प्रातःकाल मन्दिर में दर्शन के लिये जाता था और एक-आध वार दिन में भी नरपति की कुशल-क्षेम पूछने को गुफा पर पहुँच जाता था। वह टोर, जहां एक कम्बल और लोटा लेकर कुञ्जर सशस्त्र डटा रहता था, उसके लिये तीर्थ-स्थान-सी हो उठी थी।

परन्तु उस रात मन बेचैन था। रामदयाल पिशाच है। उसकी पैशाचिकता को सबदलसिंह नहीं समझता गोमती उसे बिलकुल नहीं पहचानती। वह क्यों आया है ? अवश्य अलीमर्दान का भेदी है। निस्संदेह कुछ उत्पात खड़ा करेगा, शायद बिराटा को ध्वस्त करने की चिंता में हो। कुमुद इस युद्ध का लक्ष्य है। देवीसिंह बचाने के लिये आ रहा है। देवीसिंह ने जिसने मुफ्त में दलीपनगर के राज्य को खसोट लिया है, मेरे हक़ को पैरों तले कुचल डाला है ! यदि इस समय में दलीपनगर का राजा होता, तो देवीसिंह की अपेक्षा कहीं अधिक प्रबलता और चातुरता के साथ युद्ध करता। राजा नायकसिंह के वीर्य से उत्पन्न एक हाथ भूमि के लिये जङ्गलों में मारा-मारा भटके और देवीसिंह दलीपनगर की सेनाओं का सञ्चालन करे ! यथेष्ट हथियार चलाने के लिये एक सड़े से सरदार सबदलसिंह का मुंह ताकना पड़े !

रामदयाल क्यों आया ? वह रामदयाल जो राजा नायकसिंह की वासनाओं की तृप्ति के लिये खुल्लमखुल्ला साधन जुटाया करता था, वही जो देवीसिंह का शत्रु है और साथ ही बिराटा के सब लोगों का—और अवश्य ही बिराटा निवासिनी कुमुद का भी ।

कहीं कुमुद की गुफा के पास कोई जाल तो नहीं रचा जा रहा है ? रामदयाल वहीं ठहरा है । क्यों वहां ठहरने दिया गया ? वह यहां आया ही क्यों ? इस स्थान को रामदयाल से किसी प्रकार निस्तार मिले ?

वह कुञ्जर की शक्ति के बाहर की बात थी । 'परन्तु' उसने सोचा—'मैं इसके कुचक्रों का निवारण कर सकता हूँ । करूँगा ।' फिर अपनी तोपों की ओर ध्यान गया । जिस प्रयोजन से वे वहां स्थित थी और वह स्वयं उस स्थान पर जिस धारणा को लेकर गड़ा-सा था, उस ओर भी ध्यान गया ।

उस समय प्रतिकूल पक्ष की तोपें बिराटा की दिशा में विरक्त-सी थीं ।

कुञ्जरसिंह दबे पांव गुफा की ओर गया ।

गुफा में निविड़ अन्धकार था । पत्थर से सटकर कुञ्जर ने कान लगाया । उस तमोराशि में केवल कुछ सांसों का शब्द सुनाई पड़ता था ।

निद्रा ने षड्यन्त्रों पर भी अपना अधिकार कर लिया था ।

इसी गुफा में वह देवी थी । कल्याण और रूप, स्निग्धता और लावण्य, वरदान और प्रेरणा की वह निधि उस कठोर गुफा के भीतर ।

कुञ्जर और अधिक नहीं ठहरा । उसका कर्तव्य इस निधि की रक्षा के साथ सम्बद्ध था । लौट आया । मन में कहा—'क्या देवी को किसी का कोई स्वप्न भी कभी आता होगा ?'

[८०]

दलीपनगर और भांडेर की सेनायें एक दूसरे पर बिना बड़ा जन-संहार किये हुये तोपें और बन्दूकें दागती रहती थीं। इक्के-दुक्के सैनिक लड़ भिड़ जाते थे, कभी कभी छोटी छोटी टोलियों की मुठभेड़ भी हो जाती थी। परन्तु सौ-पचास हाथ भूमि इधर या उधर, इससे अधिक जय या पराजय किसी पक्ष को भी प्राप्त न हो पाती थी।

इधर-उधर के बड़े-बड़े नाले दोनों दलों की स्वाभाविक सीमा से बन गये थे, जब तब भरकों में मार-काट हो जाती थी। बीच के मैदानों से गोले और गोलियां भनभनाती निकल जाती थीं।

इस प्रकार के युद्ध से लोचनसिंह का जी ऊबने लगा। खुले मैदान में युद्ध ठानने का उसने कई बार मन्तव्य प्रकट किया, परन्तु राजा देवीसिंह की दूरदर्शिता के प्रतिवाद ने लोचनसिंह की न चलने दी।

आज अकस्मात् राजा, जनार्दन शर्मा, लोचनसिंह इत्यादि मुसावली-के निकटवर्ती नाले में इकट्ठे हो गये।

आगे क्या करना चाहिये, इस पर सलाह होने लगी।

लोचनसिंह ने कहा—'यहीं गड़े-गड़े मरना तो अब बिलकुल अच्छा नहीं लगता। हथियार बिना चलाये ही कदाचित् किसी दिन टें हो जाना पड़े।'

'तब क्या किया जाय?' जनार्दन ने धीरे से पूछा।

'अलीमर्दान की सेना पर तीर की तरह टूट पड़ना चाहिये।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया।

'और तीर की तरह छूट निकलकर कमान को खाली कर देना चाहिये।' राजा देवीसिंह ने व्यङ्ग किया।

'जैसी मर्ज़ी हो।' लोचनसिंह ने कुढ़कर कहा—'लड़ाई के बहाने भड़भड़ करते रहिये; जब अलीमर्दान की सेना दुगुनी-चौगुनी हो जाय, तब घर चले चलिये।'

देवीसिंह का थका हुआ चेहरा लाल हो गया। सोचने लगा।

एक पल बाद बोला—'आज रात तक रामनगर पर अपना झण्डा फहरा सकोगे?'

लोचनसिंह उत्तर देने में ज़रा-सा हिचका।

देवीसिंह—'मौत के बदले रामनगर मिलेगा, लोचनसिंह?'

'मैं तैयार हूँ।' लोचनसिंह ने दृढ़ता के साथ कहा।

जनार्दन जरा कसे स्वर में बोला—'और आपके सरदार?'

इस थपेड़ की परवा किये बिना ही लोचनसिंह ने कहा—'मेरे साथी सरदार कुछ करने या मरने के लिये बहुत उतावले हो रहे हैं परन्तु—'

जनार्दन—'परन्तु आज ही आपके मुँह से सुना।'

जनार्दन पर आँखें तानकर लोचनसिंह बोला—'आप रामनगर विजय करिये, महाराज से रामनगर की जागीर आपको मैं बरबस दिलवा दूँगा।'

जनार्दन भी उत्तेजित होकर कुछ कहना ही चाहता था कि देवीसिंह ने कहा—'मेरा एक मन्तव्य है।'

जनार्दन—'महाराज।'

लोचनसिंह—'क्या मर्ज़ी है?'

देवीसिंह—'रामनगर पर शीघ्र अधिकार कर लेने के लिये बढ़ना यमराज को न्योतने के बराबर है, परन्तु अलीमर्दान पर धावा बोलने की अपेक्षा यह भी कहीं ज्यादा अच्छा है। रामनगर का गढ़ और तोपें हाथ में कर लेने के उपरांत अलीमर्दान से खुली मुठभेड़ करना सरल हो जायगा।'

एक क्षण सोचकर राजा ने कहा—'लोचनसिंह, तुम्हें अन्त्येष्टि क्रिया की पवित्र आवश्यकता में बहुत विश्वास है?'

लोचनसिंह नहीं समझा। देवीसिंह बोला—'मरने जाओगे, तो कफ़न भी साथ लेते जाओगे या नहीं?'

लोचनसिंह मुस्कराया। उसके झुर्रीदार चेहरे पर सौन्दर्य की रेखाएँ छा गईं। बोला—'महाराज ने बहुत सूझ की बात कही। हम लोग जितने आदमी रामनगर की ओर आज बढ़ेंगे, सब अपने-अपने सिर पर कफ़न बांधेंगे। वाह! क्या वेश रहेगा! कोई देखे, तो कहेगा कि मौत से लड़ने के लिये यमदूत जा रहे हैं।'

राजा ने कहा—'जो आज रात को रामनगर विजय करेगा, वह उसे जागीर में पायेगा।'

इसके बाद इन लोगों ने अपनी योजना तैयार की।

[८१]

दूसरे दिन सन्ध्या के पूर्व नित्य-जैसी लड़ाई होती रही। लोचनसिंह जितने मनुष्यों को रामनगर पर आक्रमण करने के लिये चाहता था, उतने उसे मिल गये। उनके चेहरे पर उत्साह था या नहीं, यह अँधेरे में नहीं दिखलाई पड़ रहा था, परन्तु मन के रोकने पर भी कुछ बात कहने के लिये वे उतावले-से जान पड़ते थे—परस्पर कोई करारी दिल्लगी करने के लिये सन्नद्ध-से। बिलकुल पास से देखने वाला जान सकता था कि वे लोचनसिंह के साथ होने पर भी फुसफुसाहट में ठठोली कर रहे थे और मुस्कराते भी थे।

नदी के किनारे-किनारे बिना पहचान जाना असम्भव था। इसलिये अपने भरके की सीध से कभी तैरकर और कभी भूमि पर रामनगर तक चुपचाप जाना लोचनसिंह ने तय किया। रामनगर के नीचे पहुंचकर फिर आक्रमण करना था या मौत के मुँह में धंसना था।

लोचनसिंह ने नदी में उतरने के लिये कपड़े कसे। पैर डालने नहीं पाया था कि समीप खड़े हुये एक सिपाही ने स्वर दबाकर कहा—'दाऊजू और कपड़े चाहे भींग जायें, परन्तु सिर से बँधा हुआ कफ़न न भींगने पावें।'

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'भींगे हुये कफ़न से मुक्ति और भी जल्दी मिलेगी। पर अब फुसफुसाहट मत करो।'

लोचनसिंह पानी में जाने से पहले कुछ सोचने लगा। उसी स्वर में वह सैनिक बोला—'दाऊजू, देखते क्या हो, कूद पड़ो।'

लोचनसिंह ने कहा—'जो कुछ देखना है, वह रामनगर में देखूँगा। यहाँ देखने को रक्खा ही क्या है। नदी का तैरना शूरता का काम नहीं, केवल बल का काम है।'

सिपाही कुछ और कहना चाहता था, परन्तु लोचनसिंह पानी में सरक गया और सिपाही भी पीछे हो गये।

नदी के बहाव के अँधेरी रात को तैरना वीरता का भी काम था और ख़ास तौर से उस समय, जब किनारों पर शत्रु बन्दूकें भरे धाँय-धाँय कर रहे थे।

घोर परिश्रम के पश्चात् रामनगर से कुछ दूरी पर सब-के-सब पहुँच गये। वहां पानी चट्टानों में होकर आया है। धार तेज़ बहती है। विजय-प्राप्ति के लिये सुरक्षित स्थान में इकट्ठा होना आवश्यक था। परन्तु इस स्थान पर प्रकृति को पराजित करना सहज न था। यह टुकड़ी तितर-बितर होकर, इधर-उधर चट्टानों पर बैठकर दम लेने लगी।

थोड़े समय पश्चात् किसी पूर्व-निर्णय के अनुसार दलीपनगर की सेना की ओर से रामनगर के ऊपर असाधारण रीति से गोला-बारी शुरू हो गई। लोचनसिंह को अपने निकट एक ऊंची चट्टान दिखलाई दी, जो चढ़ाव खाती हुई रामनगर के क़िले की दीवार के नीचे तक चली गई थी। परन्तु बीच में तेज़ धार वाला पानी पड़ता था और साथी इधर-उधर बिखरे हुए थे।

लोचनसिंह ने आवाज़ दबाकर कहा—'पीछे-पीछे आओ।'

इस बात को किसी ने न सुन पाया।

तब और ज़ोर से बोला—'इस ओर आओ।'

इस पुकार को उसके साथियों ने सुन लिया और पास ही एक चट्टान से अटकी हुई डोंगी में चुपचाप पड़े हुए किसी व्यक्ति ने भी।

'धाँयें-धाँयें' की आवाजें आगे-पीछे जल्दी-जल्दी हुईं। तेज़ बहती हुई धार पर गोलियाँ छर्रं हो गईं। लोचनसिंह पानी में कूद पड़ा, परन्तु नाव के पास पहुंचने में धार बार-बार विघ्न उपस्थित करने लगी। डोंगी के भीतर से बन्दूकों के पुनः भरे जाने का शब्द आने लगा। लोचनसिंह को आभास हुआ कि अबकी बार बचना असंभव होगा। वह धार के खिलाफ बहुत बल लगाने लगा और धार भी उसे ज़ोर से झटके देने लगी। हांफता हुआ लोचनसिंह जोर से चिल्लाया—'क्या सब मर गये?'

पास की चट्टान से टकराते हुए पानी को चीरते हुये आकर एक व्यक्ति ने स्पष्ट कहा—'अभी तो सिर का कफ़न गीला भी नहीं हुआ है?'

'शाबाश ?' लोचनसिंह बोला—'कौन ?'

उत्तर मिला—'बुंदेला।'

इस उत्तर से लोचनसिंह को तृप्ति नहीं हुई।

वह सिपाही किसी दृढ़ता में इतराता हुआ-सा, उस धार को पार करके नाव के पास जा पहुँचा। लोचनसिंह ने भी दुगना बल लगा दिया। वह भी नाव के नीचे जा लगा। पीछे से और सिपाहियों के आने की भी आवाज मालूम हुई। जो सिपाही पहले आया था, उसने नाव पर चढ़ने की चेष्ठा की।

नाव के भीतर से किसी ने बन्दूक की नाल से उसे ढकेल दिया। वह नीचे गिर पड़ा और थोड़ा-सा बह गया। तब तक लोचनसिंह आ धमका। उसके साथ भी वही क्रिया की गई। क्रिया सफल हुई। लोचनसिंह भी नीचे घसक गया। इतने में वह सैनिक आ गया और नाव पर चढ़ गया। लोचनसिंह और उसके अन्य सिपाही भी कुछ ही समय पीछे नाव में जा घुसे। नाव में रामनगर के छः-सात सैनिक थे, परन्तु दो के सिवा और सब सो रहे थे। दूर की तोपों और पास की बन्दूकों से वे थके-थकाये जाग न सके थे परन्तु नवागन्तुकों के धँस पड़ने से रस्सों से बँधी हुई नाव डगमगा उठी, इसलिये नाव थर्रा उठी। किसी अज्ञात संकट में अपने को फँसा हुआ समझकर और असाधारण शब्दों से घबराकर भाग उठे। इधर-उधर उछल-उछलकर गिरने लगे। दो सिपाही जो बन्दूकें लिये तैयार थे, चला न पाये। लोचनसिंह ने उन्हें तलवार से असमर्थ कर दिया। लोचनसिंह और उसके सिपाहियों को नाव में जितनी बन्दूकें मिलीं, ले लीं और अपने पास की पिस्तोलें पोंछ-पांछकर भर लीं। बोड़े सुलगाकर और उन्हें भली भाँति छिपाकर क़िले की ओर आड़े लेती हुई यह टुकड़ी बढ़ी। ऊपर से तोपें आग उगलकर दलीपनगर की सेना को जवाब देने लगी थीं। कभी-कभी आग की चादर-सी तन जाती थी।

आगे चलकर उस बातूनी सैनिक ने लोचनसिंह से कहा—'अब क्या करोगे दाऊजू ?'

'फाटक पर गोलियों की बाढ़ दागो ।' लोचनसिंह ने आज्ञा के स्वर में उत्तर दिया ।

वह सैनिक बिना किसी झिझक के बोला—'फाटक पर बाढ़ दागने की अपेक्षा उस पर ज़ोर का हल्ला बोलना अच्छा होगा ।'

लोचनसिंह ने कड़वे कण्ठ से कहा—'यह गलत कार्रवाई होगी जो कहता हूँ, सो करो ।'

वह सैनिक बोला—'सो तो यों ही कफ़न सिर से बाँधकर चले हैं ।'

लोचनसिंह ने कलेजा कोंचनेवाली कोई बात कहनी चाही, परन्तु केवल इतना ही मुँह से निकला—'अच्छा, तो तुम अकेले फाटक पर जाके कुछ चिल्लाओ ।'

वह सैनिक बिना कुछ कहे सुने तुरन्त फाटक की ओर दीवार के किनारे-किनारे बढ़ गया ।

और सैनिकों ने कहा—'हमें भी वहीं जाकर मरने की आज्ञा हो ?'

लोचनसिंह ज़रा सहमा । मौत की छाती पर सवार सैनिकों की इस बात के भीतर किसी उलहने की छाया देखकर वह ज़रा-सा लज्जित भी हुआ । बोला—'हम सब वहीं चल रहे हैं ।'

इतने में वह वाचाल सैनिक फाटक के पास पहुँच गया । तोपों की उस धूमधाम में आवाज़ खूब ऊँचा करके वह चिल्लाया—'खोलो, हम आ गये ।'

फाटक पर रामनगर की सेना के योद्धा थे, वे घबराये । घबराकर इधर-उधर बन्दूकें दाग़ हड़बड़ाहट में पड़ गये । उसी समय लोचनसिंह और उसके साथियों ने फाटक के पास आकर ज़ोर का शोर-गुल किया । कुछ बन्दूकें भी दागीं ।'

भीतर के सिपाही फाटक छोड़कर भीतर की ओर हटे । लोचनसिंह और उसके साथी कमन्द की सीढ़ी लगाकर दीवार पर चढ़ गये ।

भीतर घमासान होने लगा। बन्दूक-तमंचे कड़कने और तलवारें खनकने लगीं। रामनगर वालों को अन्धेरे में यह न जान पड़ा कि दूसरी ओर के कितने सैनिक धँस आये हैं। फाटक खुल गया और रामनगर की सेना में भगदड़ मच गई। छोटी रानी लड़ती हुई फाटक से निकल गई।

दलीपनगर की सेना ने ज़ोर के साथ जय-जयकार किया।

रामनगर में बहुत कम लड़ाके भागने से बचे। जो नहीं भागे थे, उन्होंने हथियार डाल दिये। लोचनसिंह की सेना के भी कई आदमी मारे गये और अधिकांश घायल हो गये, परन्तु अपने अदम्य उत्साह और विजय हर्ष में घावों की पीड़ा बहुत कम को जान पड़ी। उक्त बातूनी सिपाही ने लोचनसिंह से कहा—'दाऊजू, फाटक बन्द कर लीजिये, अपनी सेना को जय-जयकार सुनाकर बुलाइये, नहीं तो यह विजय अकारथ जायगी।'

लोचनसिंह बिना रोष के बोला—'तुम्हारा नाम?'

उत्तर मिला—'कफ़नसिंह बुन्देला।'

लोचनसिंह ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। फाटक बन्द करवा कर देवीसिंह का जय-जयकार करता रहा। दलीपनगर की सेना का घेरा रामनगर की बाहर वाली सेना और अलीमर्दान वाले दस्ते ने छोड़ दिया और दोनों टुकड़ियां दूर हट गईं। दलीपनगर की सेना ने रामनगर के गढ़ पर अधिकार कर लिया। उस अँधेरी रात में यह किसी को न मालूम होने पाया कि देवीसिंह ने कब और कहां से गढ़ में प्रवेश किया।

देवीसिंह के आ जाने पर गढ़ की ढूँढ़ खोज की गई। छोटी रानी तो निकल गई थीं, पर बड़ी रानी मिल गईं। उन्हें क़ैद कर लिया गया।

[८२]

रामनगर के पतन के बाद पतराखन ने राजा देवीसिंह का अधिकार स्वीकृत कर लिया, परन्तु राजा ने उसे रामनगर में ससैन्य रहने का अवसर नहीं दिया। बेतवा के पूर्वीय किनारे पर ही पूर्ववत रहने को कहा, जिसमें आवश्यकता पड़ने पर उसकी सेना का उपयोग किया जा सके।

बड़ी रानी को अपनी मूर्खता पर बड़ा पछतावा था, परन्तु उनके पछतावे की मात्रा का कोई लिहाज़ किये बिना ही राजा ने क्षमा दे दी। दृष्टि ज़रूर उन पर काफ़ी रक्खी। रानी ने इस नजरबन्दी को ही बहुत ग़नीमत समझा।

विजय की रात्रि के बाद ही जो सवेरे रामनगर में राजा के सरदारों की बैठक हुई, उसमें सभी लोग राजा की इस उदारता पर मन में रुष्ट थे। छोटी रानी का ज़िक्र आने पर लोचनसिंह ने कहा—'महाराज यदि अपराधियों को दण्ड न देंगे, तो विजय पर विजय बेकार होती चली जायगी।'

जनार्दन अवसर पाकर मुस्कराया। बोला—'दाऊजू यह प्रश्न सेनापति के लिये नहीं है, इसे तो राजनीतिज्ञ ही सुलझा सकते हैं।'

लोचनसिंह को किसी बहस का स्मरण हो आया। बराबरी के घाव मारने और खाने वाले सिपाही ने रामनगर विजय के उल्लास में इस बात का बुरा न माना।

ज़रा-सा मुस्कराकर उसने कहा—'यह चोट! अच्छा, खैर, कभी देखा जायगा।'

फिर राजा से बोला—'रामनगर की जागीर कब और किसे दी जायगी? अब इस प्रश्न पर भी विचार कर लिया जाय।'

जनार्दन तुरन्त बोला—'चामुंडराय लोचनसिंह के सिवा उसे और कौन पायेगा? महाराज ने उसी समय तय कर दिया था। कुछ और निर्णय उसके विषय में नहीं करना है। मुझे तो चिन्ता छोटी रानी की है। उन्हें तुरन्त क़ैद करने की आवश्यकता है। उनके स्वतन्त्र रहने से बहुत-से सरदार चल-विचल हो जाते हैं और अलीमर्दान को उनकी ओट में अपना

काम बनाने का सुभीता रहता है।' फिर राजा के मुख की ओर निश्चयात्मक दृष्टि से देखने लगा।

राजा ने कहा—'छोटी रानी को जो कोई क़ैद कर लावेगा, उसे दो सहस्त्र मुहर इनाम दी जायेंगी। यह घोषणा विस्तार के साथ कर दी जाय।'

जनार्दन खुशी के मारे उछल पड़ा। बोला—'सौ मुहरें महाराज के दीन ब्राह्मण जनार्दन की ओर से भी दी जायेंगी।'

उस सूचना के साथ-साथ लोचनसिंह ने मुस्कराते हुये कडुवेपन के साथ पूछा—'यह भी ज़ाहिर किया जायगा या नहीं कि रानी चुपचाप गिरफ़्तार हो जायें, क्योंकि पकड़ने के बाद उन्हें छोड़ दिया जायगा?'

राजा हँस पड़ा।

एक क्षण बाद बोला—'रामनगर की जागीर का सिरोपाव चामुंडराय लोचनसिंह को इसी समय दे दिया जाय शर्माजी।'

लोचनसिंह ने बारीक आह लेकर कहा—'यदि मुझे मिल सकती होती, तो पहले ही कह चुका हूं कि मैं महाराज को लौटा देता, परन्तु वह मुझे नहीं मिलना चाहिये।'

'क्यों?' राजा ने ज़रा विस्मय के साथ पूछा।

उत्तर मिला—'इसलिये कि मैंने रामनगर नहीं जीता।'

'तब किसने जीता?' जनार्दन ने प्रश्न किया।

राजा से लोचनसिंह ने कहा—'उसका सम्पूर्ण श्रेय मेरे एक सैनिक को है। खेद है, रात के कारण उसका नाम नहीं पूछ पाया। वह जीवित अवश्य है, परन्तु अंधेरे में-नमालूम कहाँ चला गया। उसकी खोज करवाई जानी चाहिये; मर गया हो, तो उसके घर में जो कोई हो, उसे यह जागीर दे दी जाय।'

राजा ने सहज रीति से सम्मति प्रकट की—'यदि सबकी सम्मति हो, तो मैं यह चाहता हूँ कि रामनगर का कुछ भाग पतराखन के पास रहने दिया जाय। अब वह शरणागत हुआ है, इसलिये बिलकुल बेदखल न किया जाय।'

लोचनसिंह ने ज़रा निरपेक्ष भाव से कहा—'हमारे उस सैनिक का पता महाराज पहले लगवायें, तब रामनगर का कोई एक टुकड़ा पतराखन को या और किसी को दें।'

राजा बिना उत्तेजना के बोला—'लोचनसिंह, तुम्हें उस सिपाही ने कुछ तो अपना नाम बतलाया होगा ?'

'बतलाया था महाराज।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'परन्तु वह नाम बनावटी जान पड़ता है। कहता था, मेरा नाम कफ़नसिंह बुंदेला है ?'

'विचित्र नाम है।' राजा ने मुस्कराकर ज़रा आश्चर्य के साथ कहा—'तुम्हारी सेना में क्या सब योद्धा इसी तरह के बेतुके नाम रखते हैं।'

लोचनसिंह गंभीर होकर बोला—'यदि मेरी सेना में सब सैनिक उस कफ़नसिंह सरीखे हों, तो आपको घर-घर चामुंडाराई की उपाधि न बांटनी पड़े।'

राजा ने पूछा—'क्या तुम उसका स्वर पहचान सकते हो ?'

लोचनसिंह ने ज़रा लज्जित होकर उत्तर दिया—'शायद न पहचान पाऊंगा। ऐसी जल्दी में सब काम हुआ और बातचीत हुई कि याद रखना कठिन है।'

'वाह रे सेनापति !' राजा ने हँसकर चुटकी ली।

लोचनसिंह का मस्तक लाल हो गया। बोला—'सेनापति को सैनिकों के स्वर याद रखने की आवश्यकता नहीं ?'

राजा ने तुरन्त स्वर बदलकर कहा—'कफ़नसिंह बुंदेला।'

लोचनसिंह का क्रोध घोर विस्मय में परिवर्तित हो गया।

क्षीण स्वर में बोला—'यही स्वर सुना था।'

'महाराज का !' जनार्दन ने आश्चर्य के साथ कहा।

देवीसिंह खूब हँसकर बोला—'महाराज का नहीं, कफ़नसिंह बुंदेला का।'

लोचनसिंह सँभल गया। गम्भीर होकर बोला—'तब आप जागीर चाहे जिसे दे सकते हैं।'

'तीन चौथाई लोचनसिंह को और एक चौथाई पतराखन को यदि वह स्वामिभक्त बना रहा तो।'

[८३]

अपनी सेना के प्रधान भाग से राजा देवीसिंह का सम्बन्ध रामनगर में स्थापित हो गया था, परन्तु विराटा की इससे मुक्ति नहीं हुई। अलीमर्दान की सेना की कमान रामनगर के पास से खिंचकर विराटा की ओर और अधिक सिमट आई। अपनी ओर अलीमर्दान की सेना को और अधिक सिमटा हुआ देखकर राजा सबदलसिंह ने समझा, दलीपनगर की सेना पीछे हट गई है। सेना छोटी थी। मुट्ठी-भर दाँगी इतनी बड़ी फौज का सामना कर रहे थे—अपनी बान पर न्योछावर होने के लिये। तोपें थोड़ी थीं, साहस बहुत।

कुञ्जरसिंह तोप के काम में बहुत कुशल था। यद्यपि सबदलसिंह ने राजा देवीसिंह के भय के कारण कुंजरसिंह को छोटा-सा ही पद दे रक्खा था, तथापि अपनी दिलेरी और चतुरता के कारण बहुत थोड़े समय में उसे तोपची से सभी तोपों के नायक का पद मिल गया। तोपों के नायक को उसके बाद ही सेना की विश्वासपात्रता सहज ही प्राप्त हो गई। वह विराटा के काग़ज़ों में सेनापति नहीं था, परन्तु वास्तव में था और सैनिकों के हृदय में उसके शौर्य ने स्थान कर लिया था।

रामनगर-विजय के दूसरे दिन संध्या समय राजा देवीसिंह ने नाव द्वारा विराटा जाने का निश्चय किया। अलीमर्दान से आँख बचाने के लिये एक छोटी-सी नाव में थोड़े से आदमी ले लिये और लोचनसिंह, जनार्दन इत्यादि से जाते समय कह गये कि आधी रात के पहले लौट आयेंगे।

बेतवा का पूर्वीय तट पतराखन के शरणागत हो जाने के कारण निस्संकट हो गया था, इसलिये उसी ओर से अन्धेरे में देवीसिंह अपना नाव विराटा ले गया और जहाँ मन्दिर के पीछे पश्चिम से पूर्व की ओर पठारी धीरे-धीरे ढालू होते-होते जल में समा गई है, वहीं नाव लगा ली।

अपने सिपाहियों में से दो को साथ लेकर देवीसिंह अनुमान से मन्दिर की ओर बढ़ा।

वहीं एक तोप लगी हुई थी। कुन्जरसिंह पास खड़ा था, परन्तु राजा असाधारण मार्ग से होकर आया था। इसलिये जब तक बिलकुल पास न आ गया, कुन्जरसिंह को मालूम न हुआ।

जब देवीसिंह पास आ गया, कुन्जर ने ललकारा, और तलवार खींचकर दौड़ा।

देवीसिंह ने शान्त, परन्तु गम्भीर स्वर में कहा—'मैं हूँ दलीपनगर का राजा देवीसिंह।'

कुन्जरसिंह ने वार नहीं किया, परन्तु पास के सैनिकों को सावधान करके देवीसिंह के पास आगे बढ़ गया।

कम्पित स्वर में बोला—'इस अन्धेरे में आपके यहाँ आने की क्या ज़रूरत थी ?'

अबकी बार देवीसिंह के अकचकाने की बारी आई। बोला—'तुम कौन ?'

'मैं हूँ कुन्जरसिंह। महाराज नायकसिंह का कुमार।'

'आप । तुम यहाँ कैसे ?'

इस सम्बोधन की अवज्ञा कुन्जरसिंह के हृदय में चुभ गई। देवीसिंह से कहा—'क्षत्रिय अपनी तलवार की नोक से अपने लिये संसार में कहीं भी ठौर बना लेता है।'

'आपको बिराटा का शत्रु समझा जाय या मित्र ?'

'जैसी आपकी इच्छा हो।'

'सबदलसिंह कहां हैं ?'

'गढ़ी की रक्षा कर रहे हैं।'

'मैं उनसे मिलना चाहता हूँ ?'

'किसलिये ?'

'रामनगर हमारे हाथ में आ गया है। बिराटा के उद्धार के लिये सुभीता होते ही हम शीघ्र आते हैं, तब तक अलीमर्दान का निरोध दृढ़ता के साथ करते रहें, इस बात को बतलाने के लिये।'

'यह सन्देशा उनके पास यथावत् पहुँचा दिया जायगा ।'

देवीसिंह ने क्षुब्ध होकर कहा—'आप यदि इस गढ़ी में मित्र के रूप में न होते, तो आप जिस पद के वास्तव में अधिकारी हैं, वह आपको तुरन्त दे दिया जाता ।'

कुञ्जरसिंह ने अपनी तोप औरं सुलगाते हुये पहले बोड़े की ओर, फिर रामनगर की ओर देखा । एक बार मन में आया कि सैनिकों को आज्ञा देकर आगन्तुक को क़ैद कर लूँ और तोपों के मुँह से रामनगर पर गोले उगलवा दूँ, परन्तु कुछ सोचकर रह गया ।

बोला—'इसका ठीक उत्तर देना मेरे लिये असम्भव हो रहा है, परन्तु कभी उत्तर दूँगा अवश्य ।'

देवीसिंह ने कहा—'मुझे इस समय इस व्यर्थ विवाद के लिये अवकाश नहीं, यदि आप सबदलसिंह को स्वयं बुला सकते हों, तो बुला लाइए, नहीं तो इन सैनिकों में से कोई उनके पास चला जाय और कह दे कि दलीपनगर के महाराज बड़ी देर से खड़े बाट जोह रहे हैं ।'

कुञ्जरसिंह ने दाँत पीसे, परन्तु बड़े संयम के साथ अपने सैनिकों से कहा—'एक आदमी राजा के पास जाओ । जो कुछ इन्होंने कहा है, उन्हें सुना देना । इनसे मुलाक़ात मन्दिर में होगी । चार आदमी इन्हें लेकर मन्दिर में बिठलाओ ।'

'इस पर एक सैनिक सबदलसिंह के पास गया और चार देवीसिंह और उनके साथियों को मन्दिर में ले गये । उस समय कुञ्जरसिंह ने बड़े क्षोभ और क्रोध की दृष्टि से उन लोगों की ओर देखा ।

मन में बोला—'इस भुक्खड़ भिखारी के दिमाग में इतना घमण्ड ! दलीपनगर के महाराज़ ! महाराज नायकसिंह के दलीपनगर का अधिकारी यह चोर ! चाहे जो हो, यदि इसके टुकड़े-टुकड़े न किये, तो मनुष्य नहीं ।'

एक सैनिक ने कुञ्जरसिंह से अपनी अपार सावधानी जताने के लिये कहा—'यह शायद देवीसिंह न हों। नवाब के आदमी हों, वेश बदलकर आये हों।'

बिना मुँह खोले हुये कुञ्जरसिंह बोला—'हूं।'

सिपाही कहता गया—'मन्दिर को कहीं ये लोग अपवित्र न कर दें। देवी, देवी की पुजारिन—'

कुञ्जरसिंह ने जाग्रत-सा होकर कहा—'तुमने कैसे अनुमान किया?'

'मैं खूब जानता हूं।' वह बोला—'ये लोग मूर्तियां तोड़ डालते हैं, स्त्रियों को जबरदस्ती पकड़ ले जाते हैं। उसके साथ दो आदमी भी हैं। नाव में बैठकर आये होंगे। पठारी के नीचे नाव लगी होगी। उसमें और आदमी भी होंगे।'

तमककर कुञ्जरसिंह ने कहा—'और हमारे सिपाही क्या उन लोगों गुलाम हैं, जो उन्हें उत्पात करने देंगे?'

वह सैनिक जरा सहम गया। परन्तु ढिठाई के साथ बोला—'हम लोग तो अपने प्राणों की होड़ लगा ही रहे हैं, परन्तु कोई अनहोनी न हो जाय, इसीलिये कहा। शायद उसके पास और आदमी किसी दूसरी ओर से भी आ जायँ।'

कुंजरसिंह ने सोचा—'कहीं देवीसिंह नरपतिसिंह इत्यादि को रामनगर न लिवा ले जाय। शायद गोमती को लिवाने आया हो और उसके साथ उन लोगों से भी चलने के लिये कहे।

कुञ्जरसिंह ने और अधिक नहीं सोचा। सैनिक से कहा—'तुम तोप पर डटे खड़े रहो। मैं देखता हूँ, वहाँ क्या होता है। राजा सबदलसिंह मन्दिर में थोड़ी देर में आते होंगे। वहां मेरी उपस्थिति आवश्यक होगी।'

फिर मन में बोला—'देवीसिंह ने रामनगर को विजय कर लिया! मेरी तोपों के भाग्य में यह पराक्रम न लिखा था। अब देवीसिंह और अधिक शक्तिशाली हो गया। जनार्दन को प्रपंच रचने के लिये और भी

अधिक साधन सुलभ हो जायेंगे और मुझे किसी और भी अधिक सघन जंगल की राह लेनी पड़ेगी। कुमुद का क्या होगा? संसार की विपत्तियों से उसे कौन बचायेगा? नरपतिसिंह के बाहुओं में इतना बल नहीं है। सबदलसिंह का एक तरह आश्रित होकर रहेगा।' फिर निश्चय के साथ होठों को दबाकर उसने व्यक्त रूप से कहा—'देखूँगा।'

थोड़ी देर में वह मन्दिर के द्वार पर पहुंच गया। वहां पहरे पर सिपाही थे। जो आदमी कुञ्जरसिंह ने देवीसिंह के साथ किये थे, वे भी पहरेवाले सिपाहियों के साथ रह गये।

भीतर कुछ बातचीत हो रही थी। कुञ्जरसिंह ने सोचा. वहीं चलकर सुनूं। पहरे वाले सिपाही से पूछा, सबदलसिंह आ गये या नहीं। मालूम हुआ अभी नहीं आये हैं। कुंजरसिंह और आगे बढ़ा। अभी कुमुद इत्यादि मन्दिर को छोड़कर अपनी खोह में गई थीं, परन्तु आंगन में अन्धकार छाया हुआ था। केवल मूर्ति के पास घी का एक छोटा-सा दीपक टिमटिमा रहा था। उसी जगह बातचीत हो रही थी।

कुंजरसिंह पहले तो ठिठका, फिर सोचा, सबदलसिंह के आने तक बातचीत सुनने के लिये आगे न बढ़ूं। परन्तु उसने यह विचार शीघ्र बदल दिया। मन में कहा—'देवीसिंह सरीखा आदमी इन लोगों से क्या बातचीत करता है, उसे छिपकर सुनने में कोई दोष नहीं।'

उसके शूर हृदय ने इस तरह के दरिद्र प्रयत्न के करने से उसे एक-आध बार रोका भी, परन्तु अन्त में उसका पहला निश्चय ही ऊपर रहा।

जरा आगे बढ़कर एक कोने में छिपे-छिपे कुंजरसिंह वहाँ की बातचीत सुनने लगा।

[८४]

देवीसिंह अपने साथ भेजे गये चारों सिपाहियों को पहरे वालों के पास छोड़कर अपने दोनों सैनिकों को लिये हुये, मन्दिर में चला गया। मूर्ति के पास दीपक टिमटिमाता हुआ देखकर आगे बढ़ा। तब निकट पहुँच गया, सबसे पहले नरपतिसिंह मिला।

उसने अकचकाकर पूछा— आप लोग कौन हैं?'

देवीसिंह ने उत्तर दिया—'तुम लोगों के मित्र।'

देवीसिंह बैठने के लिये उपयुक्त स्थान देखने लगा।

नरपति एक क्षण चुप रहकर ज़रा ज़ोर से बोला—'आपका नाम?'

'थोड़ी देर में अपने आप प्रकट हो जायगा।' देवीसिंह ने ज़रा बेतकल्लुफ़ी के साथ कहा।

इतने में रामदयाल आ गया।

पहले उसे संदेह हुआ, फिर सोचा, असंभव है। विश्वास को दृढ़ करने के लिये ज़रा और आगे बढ़ा।

पहचानने में विलम्ब नहीं हुआ।

तुरन्त पीछे हटने की ठानी, परन्तु देवसिंह ने पहिचान लिया। बोले—'रामदयाल?'

'महाराज!' अनायास रामदयाल के मुँह से निकल पड़ा।

उन्होंने कहा—'बड़ा आश्चर्य है। तू यहां कैसे आया? और कौन तेरे साथ है?'

राजा ने बहुत संयत भाव से प्रश्न किया था, परन्तु आत्म गौरव से प्रेरित प्रश्न का स्वर काफ़ी ऊंचा होकर रहा।

कुमुद रामदयाल के पीछे आकर खड़ी हो गई।

देवीसिंह ने देख लिया, परन्तु पहिचाना नहीं। तो भी रामदयाल के पीछे एक स्त्री की उपस्थिति कई कारणों से असह्य-सी हुई। ज़रा प्रखर स्वर में पूछा—'जानता है रामदयाल यह मन्दिर है और मैं—'

'महाराज, महाराज मैं निरपराध हूं। मैंने क्या किया है?'

'तूने जो कुछ किया है, उसका भरपूर पुरस्कार मिलेगा। तेरे सरीखे नराधम की अपवित्र देह कम से कम इस देवालय में नहीं आनी चाहिये थी।' फिर देवीसिंह ने स्वर की कर्कशता को कम कर के पूछा—'मन्दिर की अधिष्ठात्री कहां हैं ?'

रामदयाल सँभलकर बोला—'जिस मन्दिर की रक्षा के लिये अन्य हिन्दू प्राण हथेली पर रक्खे फिर रहे हैं, उसी की रक्षा के लिये हम लोग भीं यहां जमा हैं।'

'हम लोग !' देवीसिंह आपे से बाहर होकर बोले—'बदमाश ! नीच ! यहाँ से हटना मत।'

'मैं स्वामिभक्त हूं।' भर्राये हुये गले से रामदयाल बोला - 'मैं स्वामिधर्मी हूं। मुझे केवल मन्दिर अधिष्ठात्री की ही रक्षा अभीष्ट नहीं है, किन्तु जिनके एक संकेत-मात्र से मैं अपना सिर घूरे पर काटकर फेंक सकता हूं उनकी भी रक्षा वांछनीय है और यही कुछ दिनों से मेरा अपराध आपकी दृष्टि में रहा है।'

इस समय एक और स्त्री कुमुद के पीछे आकर खड़ी हो गई थी।

रामदयाल ने कनखियों से देख लिया था।

राजा ने तलवार पर हाथ रखकर कहा—'इस मन्दिर में कदाचित् नर-बलि कभी नहीं हुई होगी। आज हो।'

कुमुद रामदयाल के पीछे से जरा आगे आई—मानो घोर तमिस्त्र से एकाएक पूर्ण चन्द्र का उदय हुआ हो।

बोली—'यह मन्दिर है। इसमें न कभी नर-बलि हुई है और न कभी होगी।'

तलवार पर से हाथ हटाकर देवीसिंह ने विस्मित होकर प्रश्न किया—'आप कौन हैं ?'

'और आप ?' बड़ी सरलता के साथ कुमुद ने पूछा। परन्तु प्रश्न की नोक देवीसिंह को अपने भीतर घसती-सी जान पड़ी।

प्रश्न का कोई उत्तर न देकर देवीसिंह ने दूसरा प्रश्न किया—'राजा सबदलसिंह का निवास-स्थान क्या यहां से बहुत दूर है ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'ज़रा दूर हैं। मैं बुला लाऊँ ? जाता हूं।'

'नहीं, कदापि नहीं।' देवीसिंह ने कड़ककर कहा—'यहीं खड़ा रह।'

रामदयाल हट नहीं पाया। आधे क्षण उपरांत देवीसिंह ने उसी वेग से फिर पूछा—'वह स्त्री कहां है।'

रामदयाल एक दीर्घ निःश्वास परित्याग कर बोला—'वह बेचारी आफत की मारी, पद वंचित और कहाँ होगी ?'

'क्या ? कहां छिपाया है ?'

'यहां। और जो कुछ मन में हो, सो कर डालिये। चूकिये नहीं।' गोमती ने पीछे से आकर कहा। अंचल के सामने के नीचे छोर पर दोनों हाथ बाँधे गोमती बेधड़क राजा के सामने आकर खड़ी हो गई। देवीसिंह ने गोमती को पहले कभी नहीं देखा था। घटना की आकस्मिकता से वह चकित हो गया। रामदयाल पर आँख अपने आप जा पड़ी। वह शायद पहले से तैयार था।

बोला—'महाराज ने शायद न पहचान पाया हो परन्तु मैं विश्वास दिलाता हूं कि बहुत दिन कष्ट में बीते हैं। महारानी ने कष्ट में जीवन बिताना अच्छा समझा, परन्तु स्वाभिमान-विरुद्ध अपने आप आपके पास जाना उचित नहीं समझा।'

गोमती क्रुद्ध होकर बोली—'रामदयाल तुम मेरे लिये कुछ भी मत कहो। वह धर्मशास्त्र को बहुत अच्छी तरह जानते हैं। सामन्त धर्म का वीरों की तरह निर्वाह करते हैं। जो कुछ शेष रह गया हो, उसे भी कर डालने दो। मेरे बीच में मत पड़ो—'

रामदयाल ने टोककर कहा—'मेरी लोथ के विषय में महाराज गिद्धों और कौओं को वचन दे ही चुके होंगे। इसलिये उस महा-प्रसंग के उपस्थित होने के पहले एक आध बात मन की कह डालने में कोई और अधिक संकट खड़ा नहीं हो सकता।'

फिर देवीसिंह से बोला—'महाराज को याद होगा कि उस दिन अभी बहुत समय नहीं हुआ, पालर में किसी के हाथ पीले करने के लिये बारात

सजाकर लाये थे। लड़ाई हो पड़ी, घायल हो गये, फिर वे हाथ पीले न हो पाये। अब तक वे ज्यों-के-त्यों हैं और ये हैं। केवल ऋतुओं ने उन्हें कुछ कृश-भर कर दिया है, परन्तु बदले नहीं हैं। खैर, अब मुझे मार डालिये।'

देवीसिंह का हाथ खड्ग पर नहीं गया। छाती पर हाथ बाँधे हुये बोला—'झूठी बात बनाने में इस धरती पर तेरी बराबरी का शायद और कोई न निकलेगा। सच-सच बतला, छोटी रानी को कहां छिपाया है ? मेरे सामने पहेलियों में बात मत करना, नहीं तो मैं इस स्थान की भी मर्यादा भूल जाऊँगा।'

फिर नरपति की ओर देखते हुये राजा ने कहा—'मैंने आपको अब पहचाना। कुछ समय हुआ, आप मेरे पास गये थे।'

नरपति कुछ देर से कुछ कहने के लिये उकताया-सा हो रहा था। बोला—'बहुत दिन से आपकी इस थाती को हम लोग टिकाये हुये थे। अब आप स्वयं गोमती को लिवाने आ गये हैं, लेते जाइये। सयानी लड़की को अपने घर ही पर रहना अच्छा होता है। इस समय जो कुछ थोड़ी-सी कडुआहट पैदा हो गई है, उसे बिसार दीजियेगा।'

'किसे लिवा लेता जाऊँ ?' देवीसिंह ने कहा।

'किसे लिवा ले जायेंगे ?' गोमती ने तमककर पूछा। बोली—'क्या मैं कोई ढोर-गाय हूं ?'

देवीसिंह ने नरपति से कहा—'मैंने इन्हें आज के पहले कभी नहीं देखा। सम्भव है, वह पालर की रहने वाली हों। आपने मुझसे दलीपनगर में कहा था। परन्तु मैं इस समय इन्हें कहीं भी लिवा ले जाने में असमर्थ हूं लड़ाई हो रही है। तोपें गोले उगल रही हैं। मार-काट मची हुई है। जब शान्ति स्थापित हो जाय, तब इस प्रश्न पर विचार हो सकता है। मैं इस समय यह जानना चाहता हूं कि छोटी रानी कहाँ हैं ? यहाँ हैं या नहीं ?'

कुमुद बोली—'इस नाम की यहाँ कोई नहीं है। मैं दूसरा ही प्रश्न करना चाहती हूँ। क्या आप समझते हैं कि स्त्रियों में निजत्व की कोई लाज नहीं होती ?'

देवीसिंह ने नरम स्वर में उत्तर दिया—'आप सब लोग मेरे साथ रक्षा के स्थान में चलना चाहें, तो अभी ले चलने को तैयार हूँ, परन्तु दूसरे प्रसंग वर्तमान अवस्था के अनुकूल नहीं हैं।'

'मैं नहीं जाऊँगी।' बहुत क्षीण स्वर में गोमती ने कहा। फिर क्षीणतर स्वर में बोली—'दुर्गा मेरी रक्षा करेंगी।' और तुरन्त धड़ाम से पृथ्वी पर गिरकर अचेत हो गई। कुमुद उसे सँभालने के लिये उससे लिपट-सी गई।

राजा देवीसिंह यथार्थ दशा समझने के लिये उसकी ओर झुके। जरा दूर से ही कुञ्जरसिंह सब सुन रहा था परन्तु इस समय दीपक के टिमटिमाते प्रकाश में उसे वास्तविक वस्तु-परिचय न हुआ। इतना जरूर भान हुआ कि देवीसिंह किसी भीषण दुर्घटना के ज़िम्मेदार हो रहे हैं।

इतने में रामदयाल चिल्लाया—'सर्वनाश होता है।'

कुंजरसिंह ने तलवार खींच ली। ज़ोर से बोला—'न होने पायेगा।' और लपककर देवीसिंह के पास जा पहुँचा।

देवीसिंह ने भी तलवार खींच ली। उनके साथियों के भी खड्ग बाहर निकल आये।

पहरेवालों ने भी समझा कि कुछ गोलमाल है वे भी हथियार लेकर भीतर घुस आये।

कुञ्जर से देवीसिंह बोला—'दुष्ट, छली, सँभाल।'

कुमुद गोमती को छोड़कर खड़ी हो गई। परन्तु विचलित नहीं हुई। कोमल, किन्तु दृढ़ स्वर में बोली—'देवी के मन्दिर में रक्त न बहाया जाय।'

देवीसिंह रुका। कुञ्जरसिंह ने भी वार नहीं किया।

कुमुद ने फिर कहा—'राजा, आपको यह शोभा नहीं देता।'

'मेरा इसमें कोई अपराध नहीं।' देवीसिंह बोला—'यह मनुष्य नाहक बीच में आ कूदा।'

'देवीसिंह !' कुंजर ने दाँत पीसकर कहा—'न मालूम यहां ऐसी कौनसी शक्ति है, जो मुझे अपनी तलवार तुम्हारी छाती में हूँसने से रोक रही है। तुम तुरन्त यहां से चले जाओ। बाहर जाओ।'

'जाइये।' कुमुद भी बिना किसी क्षोभ के बोली।

देवीसिंह की आँखों में खून-सा आ गया। तो भी स्वर को यथा-सम्भव संयत करके, बोला—'कुञ्जरसिंह, मैं आज ही तुम्हरा सिर घड़ से अलग करना चाहता था, परन्तु यहाँ न कर सका, इसका उस समय तक खेद रहेगा, जब तक तुम्हारा सिर घड़ पर मौजूद है।'

कुञ्जर ने कहा—'गलियों के भिखारी, छल प्रपंच करके मेरे पिता के सिंहासन पर जा बैठा है, इसलिये ऐसी बातें मार रहा है। मन्दिर के बाहर चल और देख ले कि पृथ्वी माता को किसका प्राण भार-समान हो रहा है।'

देवीसिंह गरजकर बोला—'चल बाहर, दासी-पुत्र, चल बाहर। महाराज नायकसिंह के सिंहासन पर शुद्ध बुन्देला ही बैठ सकता है, बांदियों के जाये उसे छू भी नहीं सकते।'

कुमुद ने कहा—'यहां अब और अधिक बातचीत न करिये, अन्यथा देवी के प्रकोप से आपकी बहुत हानि होगी।'

इस निवारण पर भी दोनों दल वहां से नहीं हटे। पैंतरे बदल गये और वहां केवल एक क्षण इसलिये गुजरा कि कौन किस पर किस तरह का वार करे कि नरपतिसिंह ने उस छोटे से रणक्षेत्र में बड़ा भारी गोलमाल उपस्थित कर दिया।

वह मन्दिर में किसी तरह लड़ाई बन्द कर देना चाहता था परन्तु उसके ध्यान में उस क्षण केवल एक उपाय आया। उसने चुपचाप मुँह की फूँक से दीपक बुझा दिया।

प्रकाश के यकायक तिरोहित हो जाने से मन्दिर के भीतर का पूर्व-संचित अन्धकार और भी अधिक काला मालूम होने लगा।

कुमुद ने अपने सहज, कोमल स्वर से जरा बाहर कहा—'कुमार, अपनी रक्षा करो।'

वहां कुन्जर को या किसी को इस प्रकार के किसी भी संकेत की ज़रूरत न थी। जो मारने के लिये उतारू होता है, वह प्राय: मरने के लिये भी तैयार रहता है परन्तु ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े हैं जिन्हें वार कर पाने का रत्ती भर भी भरोसा न हो और मारे जाने का सोलहों आने सन्देह जान पड़े। इसलिये वे सब अपने बचाव के लिये तलवार भांजते हुये मन्दिर के निकास द्वार के लिये अग्रसर हुये। इतनी हड़बड़ी मची कि अपनी ही ठोकर और अपनी ही तलवार से कई लोग थोड़े-थोड़े से घायल हो गये। किसी-किसी को दूसरे के भी हथियार के छोले लग गये, परन्तु गम्भीर घाव किसी के नहीं लगा।

थोड़े समय में आगे-पीछे सब योद्धा निकल गये।

मन्दिर के बाहर एक चट्टान के पास देवीसिंह ने खड़े होकर पुकारा—'मेरे सिपाही !'

उत्तर देकर एक-एक करके देवीसिंह के सैनिक उसकी आवाज़ पर आ गये।

कुँजरसिंह मन्दिर के बाहर जरा पीछे आ पाया था। पहरा ठीक करके वह आगे बढ़ा। उसके साथ उसके सिपाही भी थे। थोड़ी दूर से देवीसिंह की आवाज़ सुनकर कुन्जर ने तैश में आकर कहा—'मारो जाने न पावे।'

उसके साथी सिपाही भी चिल्लाये—'मारो।'

उस अन्धेरे में तारों के प्रकाश में मार्ग टटोलता हुआ देवीसिंह पत्थरों और-पठारियों की ऊबड़-खाबड़ भूमि लांघता हुआ नदी की ओर उतर गया। बेतवा की लम्बी-चौड़ी धार उस अन्धेरे में बहुत स्पष्ठ दिखलाई पड़ती थी।

कुन्जरसिंह के सिपाहियों ने दूर तक पीछा नहीं किया। परन्तु उसके तोपची ने रामनगर की ओर तोप दाग दी। प्रखर प्रकाश और प्रखर तर शब्द हुआ। उस प्रकाश में देवीसिंह को अपनी बँधी हुई नाव और उस पर बैठी हुई सैनिक स्पष्ट दिखलाई पड़ गये। वह अपने दोनों साथियों को लिये हुये नाव की ओर बढ़ा।

थोड़ी देर में सबदलसिंह मन्दिर के पास आया। चिल्लाकर बोला—'कुंवर कुन्जरसिंह, यह क्या है ? कहां हो ?'

चिल्लाहट के पैने, किंतु बारीक स्वर में किसी ने मन्दिर से कहा—'शत्रुओं का निवारण कर रहे हैं।'

यह स्वर कुमुद का था। सबदलसिंह पहचान नहीं पाया, परन्तु समझ गया कि दो में से किसी स्त्री का है और अवस्था सङ्कटमय है। तोप की ओर जल्दी-जल्दी डग बढ़ाकर उसने फिर कुन्जरसिंह को पुकारा।

कुन्जरसिंह ने उत्तर दिया और साथ ही सिपाहियों को जोर से आज्ञा दी—'बचने न पावे। नाव लेकर दूर नहीं गया होगा।'

इस समय देवीसिंह नाव पर पहुँच गये थे। बेतवा से पूर्वीय किनारे की ओर नाव खेते हुये उसी किनारे किनारे वह रामनगर की ओर चले गये।

कुन्जरसिंह के पास पहुंच कर सबदलसिंह ने पूछा—'क्या था कुमार ? क्या राजा देवीसिंह आये थे ?'

कुन्जरसिंह उत्तर नहीं दे पाया। उनके उसी सैनिक ने, जिसने देवीसिंह पर बिराटा-गढ़ी के पास आने के समय ही सन्देह किया था, कहा—'देवीसिंह कैसे हो सकते थे ? मुसलमान लोग हिन्दुस्तानी वेश रखकर घुस आये थे। मैंने उसी समय कह दिया था, परन्तु कुंवर को विश्वास था कि दलीपनगर के राजा ही हैं। इनके साथ कुछ बातचीत भी हो पड़ी थी। न-मालूम क्यों उसी समय काटकर नहीं डाल दिया ?'

'मुसलमान थे।' सबदलसिंह ने आश्चर्य से कहा—'पठारी का पहरा कमजोर हो गया था ?'

'न।' वह सिपाही तुरन्त बोला—'कुँवर तलवार खींचकर तुरन्त दौड़ पड़े थे और हम लोग सब तैयार थे, परन्तु उसके वेश और देवीसिंह की नक़ल के धोखे में आ गये।'

उस सिपाही को अपने मन में इस अन्वेषण पर बड़ा हर्ष हो रहा था।

'क्या बात थी ?' सबदलसिंह ने कुंजर से पूछा—'आप चुप क्यों हैं ?'

कुंजर ने उत्तर दिया—'यह सिपाही ठीक कह रहा है। हम लोग धोखे में आ गये थे।'

'तब रामनगर-पतन की बात निरी गप थी?' सबदलसिंह ने रामनगर-गढ़ी की ओर देखते हुये प्रश्न किया—'न-मालूम कब विपद् से छुटकारा मिलेगा?'

कुंजरसिंह ने बेतवा की दूर बहती हुई धार की ओर देखते हुये उत्तर दिया—'अभी तक हम थोड़े-से आदमियों ने जैसी और जिस तरह से लड़ाई लड़ी है, वह आपसे छिपी नहीं है। अब और घोर—घोरतर—युद्ध होगा, आप विश्वास रक्खें। हमारे गोलन्दाज़ आज रात में रामनगर को चकनाचूर कर डालेंगे।'

सबदलसिंह क्षमा-प्रार्थना के स्वर में बोला—'आपके कौशल से ही अब तक हम इने-गिने मनुष्य अपने पैरों पर खड़े हुये हैं।' और प्रश्न किया—'बात क्या थी।'

कुञ्जरसिंह ने बात बनाने का निश्चय कर लिया था। कहा—'शायद कोई देवीसिंह का रूप धरकर आया था मन्दिर में। गया। मैं भी पीछे-पीछे गया। अपने चार सैनिक उसके साथ भेज दिये गये। वहाँ देखा, वह स्त्रियों से कह रहा है कि हमारे साथ चलो, नाव तैयार है। गोमती से उसने कुछ कहा-सुनी की। वह अचेत होकर गिर पड़ी। मैंने गड़बड़ समझकर तलवार खींची, इतने में हवा से दीपक बुझ गया। इस कारण वह, जो वास्तव में देवीसिंह-सा मालूम होता था, अपने साथियों को लेकर खिसक गया। मैंने पीछा किया, परन्तु हाथ न आया।'

सबदलसिंह का इतने से कदाचित् समाधान हो गया। वह अपने स्थान की ओर चला गया।

थोड़ी देर में रामदयाल उसके पास आया। हाथ जोड़कर बोला—'क्या मेरा अपराध क्षमा किया जायगा?'

कुञ्जर ने थोड़ी देर पहले रामदयाल को शत्रु रूप में देखा था। उसके जी में रामदयाल के लिये इस समय बहुत घृणा न थी। उसने

उत्तर दिया—'और बातें पीछे देखी जायेंगी। हम इस समय यह चाहते हैं कि देवीसिंह के इस तरह यहाँ धँस आने का समाचार इधर-उधर न फैलने पावे।'

रामदयाल ने इस प्रस्ताव को समझ लिया। कहा—'उसमें मेरा लाभ ही क्या है ? उलटे मुसीबत में पड़ने का डर है।'

'मन्दिर में कुशल है ?' कुञ्जर ने पूछा।

'मेरे इस समय यहां आने का कारण वहीं की बात है।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'गोमती की हालत खराब मालूम होती है। आप एक क्षण के लिये चलिये।'

गोलन्दाज़ों को रामनगर पर अनवरत गोले बरसाने का हुक्म देकर कुञ्जर रामदयाल के साथ चला गया।

[८५]

कुञ्जर के मन्दिर में पहुँचने के पहले नरपति ने फिर दीपक जला दिया था। जब कुञ्जर भीतर पहुंचा, वह पूर्ववत् टिमटिमा रहा था। नरपति ने बड़े भोलेपन के साथ कहा––'कभी-कभी ऐसी हवा चल उठती है कि दीपक अपने आप बुझ जाता है। उस समय जब तलवारें खिंच गई थीं और पैंतरे बदल गये थे। ऐसे कुसमय प्रकाश लोप हो गया कि आप उन लोगों को काट-कूट न पाये।'

नरपति कुछ और भी पवन की इन आकस्मिक निष्ठुरताओं पर कहता, परन्तु कुञ्जर का ध्यान दूसरी ओर था। इसके सिवा उसे एक औषधि के लिये रामदयाल के साथ खोह में जाना था, जहां वह उसके साथ कुञ्जर के आने पर चला गया।

कुमुद गोमती का सिर अपनी गोद में रक्खे टकटकी बांधे कुञ्जर की ओर देख रही थी––मानो समय से उसकी प्रतीक्षा कर रही हो।

कुञ्जर ने बड़े उत्साह, बड़ी उत्कण्ठा के साथ कुमुद से पूछा–– 'अवस्था बहुत बुरी तो नहीं है ?'

दया के कोमलता-पूर्ण कंठ से कुमुद बोली––'बहुत बुरी तो नहीं जान पड़ती, परन्तु कुछ उपचार आवश्यक है।'

अपने को कुछ असमर्थ-सा समझकर कुञ्जर ने पूछा––'मुझसे जिस उपचार के लिये कहा जाय, तुरन्त करने को प्रस्तुत हूँ।'

कुमुद जरा मुस्कराकर बोली––'आपकी तलवार की कदाचित् आवश्यकता पड़ेगी। उपचार तो मैं कर लूँगी।'

जरा आश्चर्य के साथ, परन्तु, बहुत संयत स्वर में कुञ्जर ने कहा–– 'आज्ञा हो।'

कुमुद के मुख पर एक हलकी; लालिमा दौड़ आई। गोमती की ओर आँख फेरकर बोली––'यह दुःखिनी है और कोमल। हम लोगों का कुछ ठीक नहीं, यहां क्या हो। शीघ्र अच्छी हो जायगी। परन्तु अच्छे होते ही

इसे किसी सुरक्षित स्थान में बिराटा से बाहर पहुँचा देना चाहिये।'

'पहुंचा दिया जायगा।' कुञ्जर ने उत्तर दिया।

'कब ?' फिर पूछा।

कुमुद ने फिर उसी मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया—'एक आध दिन में, जब वह अच्छी हो जाय।'

'साथ किसे भेजा जाय ?' कुञ्जर ने बढ़ती हुई उत्कंठा के साथ पूछा।

कुमुद ने उत्तर दिया—'रामदयाल के सिवा और यहां कोई ऐसा नहीं दिखलाई पड़ता, जिसका नाम ले सकूँ।'

'रामदयाल !' कुञ्जर अपनी उठती हुई अस्वीकृत को दबाकर बोला—'देखा जायगा। यह अच्छी हो ले।'

अपनी बड़ी-बड़ी आँखें पसारकर कुमुद बोली—'रण-क्षेत्र में होकर सुरक्षित स्थान में इसे पहुंचाना पड़ेगा। आप अपने कुछ सैनिक इसके साथ भेज दीजियेगा।'

'मैं स्वयं जाऊँगा।' कुञ्जर ने कहा।

कुमुद गोमती को होश में लाने के लिये दुलार के साथ उपाय करने लगी।

गोमती की आँखें बन्द थीं, उसी दशा में बोली—'यह मेरे कोई नहीं हैं।'

बड़े मीठे स्वर में कुमुद ने कहा—'गोमती।'

वह अचेत थी।

कुञ्जर ने प्रश्न किया—'इसे कहीं चोट तो नहीं आई है ?'

कुमुद ने उत्तर दिया—'ऊपर तो कहीं नहीं आई है, परन्तु इसके हृदय को जान पड़ता है, कठोर पीड़ा पहुँची है।'

कुञ्जर बोला—'वह मनुष्य बड़ा नृशंस है।'

कुमुद ने फिर आँख ऊपर उठाई। उस दृष्टि में बड़ी अनुकम्पा थी। कहा—'उस चर्चा को जाने दीजिये। भावी प्रबल होती है। जो होना होता है, बिना हुये नहीं रहता। इस लड़की को बाहर पहुँचाकर फिर हम लोग और बातें सोचेंगे। मैं जानती हूँ, उस मनुष्य ने केवल गोमती को ही संकट में नहीं डाला है।'

'मैं क्या कहूँ ।' कुञ्जर कम्पित स्वर में बोला—मेरा इतिहास व्यथा-पूर्ण है, मेरे साथ बड़ा अन्याय हुआ है ।' फिर तुरन्त उसने कहा—'परन्तु—परन्तु आपका शुभ दर्शन-मात्र मेरी उस सम्पूर्ण कहानी में एक बड़ी भारी मार्ग-प्रदर्शन ज्योति है । वह समय मेरी अँधेरी रात के अवसान की ऊषा है । केवल उसी प्रकाश के सहारे मैं संसार में चलता-फिरता हूँ ।'

कुँजर कुछ और कहता, परन्तु कुमुद ने रोककर पूछा—'वह यहां तक कैसे आये ? चारों ओर मुसलमानों और उनके सहायकों की सेनायें रुकी हुई हैं ।'

कुमुद के साथ वह छल नहीं कर सकता था । एक बहुत बारीक़ आह को दबाकर उसने उत्तर दिया—'रामनगर पर उसका अधिकार हो गया है । कम से कम वह कहता यही था । इसीलिये शायद यहां तक चला आया ।'

कुमुद ने कहा—'आपकी तोपें किस ओर गोले फेंक रही है ।'

'रामनगर पर ।' कुञ्जर का सहज उत्तर था ।

कुमुद ने अपने आंचल से गोमती पर हवा करते हुये कहा—'मैं भी यही सोच रही थी ।'

'क्यों ?' कुञ्जर ने ज़रा डरते हुये प्रश्न किया ।

कुमुद बोली—'आप को कभी न कभी देवीसिंह से लड़ना ही पड़ेगा । आज या फिर कभी, परन्तु अवस्था कुछ भयानक हो जायगी ।'

'मैंने एक उपाय सोचा है ।' कुञ्जरसिंह ने कहा—'मुझे एक चिन्ता सदा लगी रहती है ।'

आंखें नीचे ही किये हुये कुमुद ने पूछा—'क्या ?'

'यह खोह सुरक्षित नहीं है । किसी दूसरे स्थान में आपको पहुँचाकर फिर निश्चिन्तता के साथ यहां लड़ता रहूंगा ।'

'मैं नहीं जाऊँगी ।' कुमुद ने धीरे से कहा ।

'मैं नहीं जाऊँगी ।' क्षीण स्वर में अचेत गोमती बोली ।

कुमुद चौंक पड़ी। गोमती अचेत थी। कुन्जर ने कहा—'यह स्थान अब आपके रहने योग्य नहीं रहेगा। बड़ा घमासान युद्ध होगा। मैं गोमती को रामदयाल के साथ किसी अच्छे स्थान में छोड़ दूंगा और आपको भी किसी सुरक्षित स्थान में।'

कुमुद बोली—'आपके लिये यदि यह स्थान सुरक्षित है, तो मेरे लिये भी।' फिर मुस्कराकर कहा—'मुझे आपकी तोपों पर विश्वास है।'

कुंजर की देह भर में रोमांच हो आया। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो आकाश के नक्षत्र तोड़ लाने की सामर्थ्य रखता हो। कुछ कहना चाहता था। अवाक् रह गया। उसी समय नरपति और रामदयाल के आने की आहट मालूम हुई।

कुमुद ने जल्दी से कहा—'यदि रामदयाल अविश्वसनीय हो, तो उसके पास गोमती को नहीं छोड़ना चाहिये।'

रामदयाल सब से पहले आया। आतुरता के साथ बोला—'इस बीच में अवस्था और तो नहीं बिगड़ी।'

कुंजर ने उत्तर दिया—'नहीं।'

औषधोपचार के बाद गोमती को चेत आने लगा।

अर्द्ध-चेतनावस्था में बोली—'वह कहाँ हैं ?'

कुमुद ने अपने बड़े-बड़े स्नेह पूर्ण नेत्रों से मानो उसे ढंक दिया। उसके मुंह के बहुत पास अपनी आंखें ले जाकर कहा—'घबराओ मत, दुखी मत होओ।'

जब गोमती को बिलकुल चेत आ गया, वह अपने सिर को कुमुद की गोद से उठाने लगी। कुमुद ने रोक लिया। बोली—'लेटी रहो।'

कुंजर ने कहा—'रात बहुत हो गई है। अब आप लोग अपनी खोह में चले जायें।'

रामदयाल बोला—'अभी वह चलने-फिरने योग्य नहीं जान पड़तीं।'

'थोड़ी देर में सही।' कुञ्जर ने कहा—'परन्तु रात को रहना वहीं चाहिये। आज की रात बहुत गोला-बारी होगी।'

'हम लोग जाते हैं।' कुमुद ने कहा—'आज रात में खोह पर कुशल-क्षेम पूछने के लिये न आना।'

कुमुद इत्यादि वहाँ से चली गईं।

उस रात कुञ्जरसिंह कदाचित् इच्छा होने पर भी खोह के पास न जा सका। रात भर बेतरह रामनगर पर गोले ढाये। उधर से भी जवाब में कुछ गोला-बारी हुई, परन्तु बिराटा की कोई हानि नहीं हुई। रामनगर पर अलीमर्दान की भी तोपें गोला उगलती रहीं। परन्तु एक बात का आश्चर्य कुञ्जरसिंह को रहा था। अलीमर्दान की ओर से विराटा पर एक तोप ने भी वार नही किया। कुञ्जर ने भी शायद यह समझकर कि पहले एक शत्रु से समझ लें, फिर दूसरे को देख लेंगे, अलीमर्दान को नहीं छेड़ा।

उस रात कुञ्जसिंह के कान में कुमुद के अन्तिम वाक्य ने कई बार झंकार की—उसने कहा था—'आप रात में खोह पर कुशल-क्षेम पूछने न आना।'··

उस निषेध में कुंजर को एक अपूर्व मोह-सा जान पड़ा था।

[८६]

सवेरे सबदलसिंह कुञ्जर के पास आया। उदास था। बिना किसी भूमिका के बोला—'रामनगर पर देवीसिंह का अधिकार हो गया है। आपने रामनगर पर गोले क्यों बरसाये ?'

कुञ्जर ने उत्तर दिया—'पहले मेरे मन में भी कुछ इसी तरह की कल्पना जगी थी, परन्तु पीछे विश्वास हो गया कि रामनगर पर अभी देवीसिंह का दखल नहीं हुआ है।'

'परन्तु नरपतिसिंह दूसरी ही बात कहते हैं।'

'वह धोखे में आ गये हैं।'

'और गोमती।'

'वह भी; और रामदयाल भी। वह छद्मवेश था।'

रामदयाल कहता था कि धोखा-सा था। मान लीजिये, देवीसिंह ही थे, तो वह इस तरह क्यों और कैसे आये ?'

'कैसे आये वे लोग, सो तो आपको मालूम ही हो चुका है; परन्तु मुझे उस व्यक्ति के देवीसिंह होने में बिलकुल सन्देह है।'

'यहि वह देवीसिंह थे, तो बहुत करके गोमती के लिये आये होंगे। मैं नरपति से सब हाल सुन चुका हूं। केवल इतनी बात प्रकट करने के लिये आने की अटक न थी कि रामनगर उनके हाथ में आ गया है। इस समाचार को तो वह किसी के भी द्वारा कहला सकते थे। रामदयाल उनकी सेवा में रहा है, नरपति विश्वास दिलाते हैं। परन्तु यह सब फिर क्या और क्यों हो पड़ा, कुछ समझ में नहीं आता। नरपति त्यागी-विरागी पुरुष हैं, उनके दिमाग़ में सांसारिक बातों को यथावत स्थान नहीं मिलता। कुमुद कहती है कि धोखा-सा हो गया है शायद ऐसा ही हो।'

'मैं आपको विश्वास दिलाता हूं।'

'खैर, दो एक दिन में मालूम हो जायगा, परन्तु यदि वास्तव में रामनगर देवीसिंह के अधिकार में है, तो उस ओर गोला-बारी करना आत्मघात के समान होगा।'

'और यदि रामनगर अलीमर्दान या रानियों के हाथ में है, तो उस गढ़ पर गोले न चलाना आत्मघात से भी बुरा सिद्ध होगा।'

सबदल किंकर्तव्य-विमूढ़ था।

कुछ क्षण पश्चात् बोला—'यदि देवीसिंह का हमसे कुछ अपराध भी हो जायगा, तो हम क्षमा मांग लेंगे।' निस्सहायों की-सी आकृति बनाकर उसने कहा—'इस समय हम किसी को बाहर भेज कर इस बात का ठीक-ठीक अनुसन्धान भी नहीं कर सकते।'

कुञ्जर ने अपनी बात की पुष्टि का प्रण कर लिया था। बोला—'यदि आपकी इच्छा हो, तो मैं तोपों का मुँह मुरका दूँ?'

सबदल तोपों का कुल भार कुञ्जर को सौंप चुका था। वह सहमत न हुआ। कहा—'तोपों के सञ्चालन का सम्पूर्ण कार्य आपके हाथ में है। मैं हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। असली बात एकआध दिन में ही मालूम हो जायगी। यदि वास्तव में रामनगर देवीसिंह के अधीन हो गया है, तो कुछ-न-कुछ समाचार किसी-न-किसी प्रकार हमारे पास बिना आये न रहेगा, तब तक आपको जैसा उचित जान पड़े, करिये।'

सबदलसिंह चला गया। दो-एक दिन में क्या होगा, इसे वह या कोई भी उस समय नहीं जान सकता था।

आंख से ओझल होते हुये सबदल को कुञ्जर ने देखा। सरल, दृढ़ व्यक्ति। कुञ्जर को झूठ बोलने के कारण अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हुई। तुरन्त ही उसने मन में कहा— इसने जितना विश्वास मेरा कर रक्खा है, उससे कहीं अधिक मूल्य इसे दूँगा। इस गढ़ी की रक्षा में अन्तिम श्वास की होड़ लगाऊंगा। इसे भ्रम में डालने के सिवा मुझे कोई और उपाय न सूझा। क्या करूँ, देवीसिंह ने झूठ बोलने के लिये विवश किया।

[८७]

दूसरे दिन रामदयाल गोमती के लिये उपयुक्त स्थान की खोज में सन्ध्या के उपरान्त बिराटा से चल पड़ा।

कहना न होगा कि वह इधर-उधर बहुत न भटककर और चक्कर काटकर अलीमर्दान की छावनी में गया और सीधा अलीमर्दान के पास पहुंचा। प्रातःकाल हो गया।

उसने रामदयाल को पहचान लिया।

बोला—'तुम्हारी रानी साहबा तो बहुत पहले आ गई हैं। तुम कहाँ थे?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'मैं भी हुजूर का कुछ काम कर रहा था।'

'वह क्या ?'

'विराटा से रामनगर पर गोले पड़ रहे हैं।'

रामनगर के नाम पर अलीमर्दान की ज़रा त्योरी बदली।

रामदयाल उसके भाव को समझ गया। बोला—'जहाँ तक मैंने सुना है, इस समय आपका अधिकार रामनगर पर नहीं है।'

अलीमर्दान बोला—'रनिवास में रहकर भी तुम्हें बात करने की तमीज़ न आई।'

'मैं माफ़ किया जाऊं।' रामदयाल ने क्षमा-प्रार्थना का कोई भी भाव प्रदर्शित न करते हुये कहा—'यदि अब भी रामनगर आपके हाथ में है, तो मैंने रामनगर पर विराटा से गोले बरसवाने में गलती की है।'

इस पर अलीमर्दान ज़रा मुस्कराया। बोला—'रामनगर पर इस समय मेरा क़ब्जा नहीं है, परन्तु भरोसा है कि जल्दी होगा। यह सचमुच समझ में नहीं आ रहा है कि तुमने विराटा को रामनगर के खिलाफ़ किस उपाय से किया। इस रात हमारी छावनी की तरफ एक भी गोला नहीं आया, यह अचरज की बात है।'

'वह एक लम्बी कहानी है।' रामदयाल ने कहा—'परन्तु बिराटा इस समय कुन्जरसिंह के हाथ में है और उसे यह मालूम हो गया है कि उसका विकट वैरी देवीसिंह रामनगर में जा पहुंचा है। कुन्जरसिंह इस

समय इस भर्रे पर काम कर रहा है कि पहले देवीसिंह को मिटाऊँ, फिर आप पर वार करूँ।'

अलीमर्दान हँसा। बोला—'इतनी बड़ी अक़ल की बात क्या तुमने कुञ्जरसिंह को सुझाई है? फिर गम्भीर होकर उसने कहा—'कुन्जरसिंह हमसे नाहक बुरा मान गया। असल में तुम लोगों ने सिंहगढ़ में उसे हाथ से निकल जाने दिया। वह आदमी साथ में रखने लायक था।' फिर सोचकर बोला—'उसमें बेहद हेकड़ी है। यह भी एक कारण उसके भाग खड़े होने का हुआ।'

रामदयाल ने इस बात को अनसुनी करके कहा—'अब उस सुन्दरी के प्राप्त होने में भी बहुत विलम्ब नहीं है।'

अलीमर्दान बहुत गम्भीर हो गया। बोला—'तुम उस विषय में मेरी सहायता कर सको, तो जैसा मैं कह चुका हूं, तुम्हें भारी इनाम दूँगा।'

'अब उसका समय आ गया है।' रामदयाल ने भी गम्भीर होकर कहा—'बिराटा पर धावा बोल दीजिये। देवीसिंह कोई सहायता बिराटा को न दे सकेगा। सीधा मार्ग मैं बतला दूँगा।'

अलीमर्दान मन-ही-मन प्रसन्न हुआ परन्तु बिना कोई भाव प्रकट किये बोला—'आज ही रात को अजमाओ।'

'आज रात को नहीं।' रामदयाल ने प्रस्ताव किया—'एक आध रोज ठहर जाइये। बिराटा में निस्सीम गोला-बारूद या मनुष्य नहीं हैं। कुन्जरसिंह को ज़रा थक जाने दीजिये।' फिर नीची आँख करके बोला—'एक ज़रा-सा काम मेरा है। पहले वह हो जाने दीजिये।'

आँख चमकाकर अलीमर्दान ने कहा—'क्या माजरा है भाई?'

बड़ी नम्रता और लज्जा का नाट्य करते हुये रामदयाल बोला—'मैंने भी सोचा है, अब अपना घर बसा लूँ। हमारी महारानी आपकी दया से दलीपनगर का राज्य पा जायें और मैं अपनी एक मड़ैया डालकर घर की देख-भाल करूँ, बस, यही प्रार्थना है।'

अलीमर्दान ने हँसकर कहा—'इसमें मेरी सहायता की किस जगह ज़रूरत पड़ेगी ?'

'उस स्त्री को।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'यथासम्भव मैं कल बिराटा से लिवा लाऊँगा। मैं चाहता हूं, यहीं कहीं सुरक्षित स्थान में उसे रख दूं। न मालूम बिराटा में कब कितना उपद्रव उठ खड़ा हो। ऐसी हालत में उसका वहां रखना ठीक नहीं है। यहां थोड़ा-सा सुरक्षित स्थान मिल जायगा ?'

'बहुत-सा।' अलीमर्दान बोला—'तुम्हारी महारानी यहीं पर हैं। उनके पास उस स्त्री को छोड़ देना हर तरह उचित होगा।' रामदयाल सोचने लगा।

इतने में अलीमर्दान का एक सरदार आया। उसने रामदयाल को पहचान लिया। बोला—'हुज़ूर, रानी साहबा के सिर के लिये दो हज़ार मुहरें इनाम के तौर पर राजा देवीसिंह ने रखी हैं।'

अलीमर्दान ने पूछा –'रानी साहबा को मालूम है या नहीं ?'

उसने जवाब दिया—'अभी सवेरे उनके किसी सेवक ने ही बतलाया था।'

'मुझे मालूम था।' अलीमर्दान ने कहा—'और उसके साथ यह भी मालूम हो गया था कि दीवान जनार्दन शर्मा ने भी अपनी तरफ़ से दो सौ मुहरें उसी सिर के लिये इनाम में और रक्खी हैं।'

रामदयाल चकित होकर बोला—'क्या ये लोग पागल हो गये हैं ?'

अलीमर्दान ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। सरदार से कहा—'इस समय बिराटा पर गोला-बारी न की जाय। आज दिन भर और रात भर बराबर रामनगर पर ही गोले बरसाओ और लगातार दलीपनगर की सेना पर हमले करो। इसी समय महारानी के पास जाओ। कहना, थोड़ी देर में हाज़िर होता हूं। रामदयाल को भी साथ लेते जाओ।

वे दोनों गये।

[८८]

सरदार और रामदयाल छोटी रानी के डेरे पर पहुंचे। कालपी की सेना की छावनी के एक सुरक्षित कोने में एक छोटा-सा तंबू खड़ा था। उसी में छोटी रानी अपने कुछ आदमियों के साथ थीं। भाग कर जब रामनगर में रानी आई थीं तब से अब उनके गौरव में और भी बड़ी कमी हो गई थी।

रामदयाल तम्बू के भीतर चला गया। सरदार बाहर रह गया। भीतर की हीनता रामदयाल को और भी अधिक अवगत हुई। रानी के चेहरे पर अब सहज दृढ़ता और सुलभ कोप के सिवा स्थायी निराशा के भी चिन्ह अङ्कित थे।

रामदयाल को देखकर रानी ने कहा—'इन दिनों कहाँ छिपा था? क्या मेरा सिर काटने के लिये आया है।'

रामदयाल ने कुछ डरते हुये हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'मैं बिराटा में जासूसी के काम पर नियुक्त था।'

'वहां, क्या जासूसी की?'

देवीसिंह का सेवक बनकर कुछ समय तक रहा। कुंजरसिंह ने कल पहचान लिया। लगभग उसी समय देवीसिंह भी वहां आ गये। उन्होंने भी पहचान लिया। दोनों को लड़ा-भिड़ाकर यहां चला आया हूं। देवीसिंह रामनगर चले गये हैं और अब कुंजरसिंह रामनगर पर गोले बरसा रहे हैं।'

रानी ज़रा चिड़चिड़ाकर बोली—'जब कालपी की इतनी बड़ी सेना ने रामनगर को न ले पाया, तब बिराटा की तोपें क्या कर पायेंगी।'

रामदयाल ने तुरन्त उत्तर दिया—'बिराटा की तोपों का संचालन कुंजरसिंह ऐसा अच्छा कर रहे हैं कि रामनगर में देवीसिंह को रहना कठिन हो जायगा।'

अपनी दशा की याद करके रानी ने कहा—'अब और किसी के हाथ से कुछ होता नहीं दिखाई देता। परन्तु यदि दिलेर आदमियों की एक छोटी-सी सेना मुझे मिल जाय, तो मैं कुछ करके दिखला दूं। क्या कुंजरसिंह अपना पुराना पागलपन छोड़कर हमारा साथ देने को तैयार हो जायगा ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'कुञ्जरसिंह का पागलपन अब और बढ़ गया है। जिसे बिराटा में देवी का अवतार या देवी की पुजारिन बतलाया जाता है, वह उनके कुल कर्तव्य की लक्ष्य है। उनके किये जो कुछ हो, सो हो। नवाब की एक बड़ी सेना शीघ्र ही यहां आने वाली है।'

धीरे स्वर में छोटी रानी बोलीं—'अब वही एक आधार है। मुझे चाहे राज्य न मिले, कुञ्जरसिंह राजा हो जाय या कोई और, परन्तु देवीसिंह और वह पिशाच जनार्दन धूल में मिल जायें। रामदयाल मेरा प्रण न पूरा हो पाया! यदि मेरे मरने के पहले कम-से-कम जनार्दन का सिर काट लाता, तो मुंह माँगा इनाम देती, परन्तु तेरे किये कुछ न हुआ।'

रामदयाल ने उत्साहित होकर कहा—'नहीं महारानी, जनार्दन का सिर अवश्य किसी दिन काटकर आपके सामने पेश करूंगा।'

रानी एक ओर टकटकी बाँधकर कुछ सोचने लगीं।

रामदयाल बोला—'आप बिलकुल अकेली हैं, मुझे इधर-उधर भटकना पड़ेगा। आज्ञा हो, तो एक लड़की आपके पास कर जाऊं।'

रानी ने चौंककर कहा—'लड़की तेरी कौन है ?'

चालाक रामदयाल भी अपने चेहरे के रङ्ग को फ़क होने से न रोक सका। बोला—'वैसे तो मेरी कोई नहीं है, परन्तु कुछ दिनों से जानने लगा हूं इसलिये चाहता हूँ कि आपके पास रह जाय। जब देवीसिंह ने दलीपनगर के सिंहासन की ओर आँख नहीं डाली थी, उसके साथ विवाह करना चाहते थे, जब वह सिंहासन खसोट लिये, तब इस बेचारी का त्याग कर दिया। दुःखिनी है और देवीसिंह से बहुत नाराज़ है।'

रानी ने नाम इत्यादि और थोड़ी-सी ऊपरी पूछ-ताछ के बाद रामदयाल को गोमती के लिवा लाने की अनुमति दे दी। कहा—'उसे वास्तव में देवीसिंह ने परित्याग कर दिया है?'

'हां, महाराज।'

'परन्तु मेरे पास रहने में उसे और भी अधिक कष्ट होगा। शायद किसी समय उसके प्राणों पर भी आ बने।'

'मैं भी तो आपकी सेवा में रहूंगा।'

'और तुम्हारा प्रण?'

'सदा सेवा में न रहूंगा—प्रायः रहा करूंगा।'

रानी बोली—'तुम उसे लिवा लाओ, परन्तु दूसरे डेरे में रहेगी और उसके ऊपर चौकसी भी रक्खी जायगी। किसी दिन शायद देवीसिंह उसे अपनाने के लिये तैयार हो जाय या शायद किसी दिन वही देवीसिंह के पास दौड़ जाय और हम लोगों को यों ही किसी आकस्मिक विपद् में डाल जाय।'

रामदयाल ने कहा—'मेरे सामने ही देवीसिंह ने उस स्त्री का घोर अपमान किया था।' वह अचेत होकर गिर पड़ी थी। देवीसिंह ने उससे कहा था कि मैं तो तुम्हें पहचानता नहीं हूं।'

रानी बोली—'तू उसे ले आ। आजकल और कोई साथ में नहीं है। उसके साथ कुछ मन बहलेगा।'

रामदयाल वहां कुछ समय ठहर कर चला गया।

सरदार से कहता गया—'अब हम सब लोगों की मुरादें पूरी होंगी।'

वह बोला—'इन्शा अल्लाह।'

[८६]

रामदयाल बिराटा के उत्तर वाले जङ्गल और भरकों में होकर इधर उधर फैले हुये भांडेर सैन्यदल की आंख बचाता हुआ अँधेरे में बिराटा पहुंचा। बिराटा के सिपाही उसे पहचानने लगे थे, इसलिये प्रवेश करने में दिक़्क़त नहीं हुई। सीधा कुंजरसिंह के पास पहुंचा। बोला—'मैं गोमती के ठहरने का उचित प्रबन्ध कर आया हूँ।'

'वहाँ जाने की वह अभिलाषा रखती हो, तो मैं न रोकूंगा।' कुंजर ने कहा।

रामदयाल जरा चकित होकर बोला—'उस दिन आप ही ने कहा था कि इन लोगों के ठहरने का प्रबन्ध कहीं बाहर कर देना चाहिये, सो मैंने कर दिया। अब यदि दूसरी मर्ज़ी हो, तो मुझे कहना ही क्या है ?'

कुंजरसिंह ने झुँझलाकर कहा—'अच्छा, अच्छा। ले जाओ उसे, जहां वह जाना चाहे और कोई साथ नहीं जायगा। कहां ले जाओगे ?'

रामदयाल इस प्रश्न के लिये तैयार था। बोला—'यहां से चेलरा थोड़ी दूर है। वहां एक ठाकुर रहते हैं। उनके यहां प्रबन्ध कर दिया है। मैंने तो सबके लिये ठीक-ठाककर लिया है। यदि सब लोग वहीं चले चलें, तो बहुत अच्छा होगा।'

'सब लोग नहीं जायेंगे, पहले ही बतला चुका हूं और यदि उन लोगों की इच्छा होगी, तो मैं साथ पहुँचाने चलूंगा।' कुंजरसिंह ने कहा। फिर एक क्षण ठहरकर बोला—'यदि अकेली गोमती जायगी तो भी मैं साथ चलूंगा।'

रामदयाल ने आहत निर्दोषिता के स्वर में कहा—'मैं मार्ग बतलाये देता हूँ। ठाकुर का नाम प्रकट किये देता हूं। आप किसी को साथ लेकर गोमती को या जो जाना चाहे, उसे लिवा जाइये। यदि मेरी बात में कोई फ़र्क़ निकले, तो जो जी चाहे, सो कर डालियेगा।'

इस पर कुञ्जरसिंह रामदयाल को लेकर खोह पर गया।

कुञ्जर ने रामदयाल के आने का कारण बतलाया। ज़रा विचलित स्वर में कुमुद से कहा—'आप यदि जाना चाहें, तो इस सङ्कटमय स्थान से चली जायें। मैं पहुंचाने के लिये चलूंगा।'

कुमुद ने दृढ़ता, परन्तु कोमलता के साथ उत्तर दिया—'बिराटा के योद्धाओं की सफलता के लिये मैं यहीं रहकर दुर्गा से प्रार्थना करूंगी। गोमती को अवश्य बाहर भिजवा दीजिये। उस दिन से यह बड़ी अस्वस्थ रहती है।'

गोमती की इच्छा जानने के लिये कुञ्जर ने उसकी ओर दृष्टिपात किया।

गोमती ने कुमुद की ओर देखकर कहा—'मुझे मृत्यु का कोई भय नहीं है। प्राणों के बनाये रखने की कोई कामना नहीं है। कहीं भी रहूं, सर्वत्र समान है। यदि वहिन के पास ही रह कर मेरा प्राणांत होता, तो सब बात बन जाती।' फिर ज़रा नीचा सिर करके बोली—'परन्तु अभी मरना नहीं चाहती हूं।'

'कुमुद ने उसकी ओर स्नेह की दृष्टि से देखा।'

एक क्षण बाद गोमती बोली—'ऐसी भली छत्रच्छाया छोड़कर कहीं भी जाना पागलपन है, परन्तु यहां और अधिक ठहरने से मैं सचमुच बावली हो जाऊंगी। मन्दिर में अब धँसा नहीं जाता, खोह में पड़े रहने से अनमनापन बढ़ता जाता है, इसलिये रामदयाल के साथ जहां ठीक होगा, चली जाऊंगी। केवल एक विनती है।'

दयार्द्र होकर कुमुद ने प्रश्न किया—'वह क्या है बहन ?'

उस लड़की का गला रुँध गया। बोली—'केवल यह कि मुझसे जो कुछ भी अपराध हुआ हो, वह क्षमा हो जाय।'

कुमुद ने उसे कन्धे से लगा लिया।

इसके बाद कुमुद ने कुञ्जर से कहा—'आप इस किले की रक्षा कर रहे हैं। कैसे कहूं कि आप इस बेचारी को सुरक्षित स्थान तक पहुंचा आवें ?'

'मैं अवश्य जाऊंगा और दुर्गा की कृपा से अभी लौटूंगा।' कुञ्जरसिंह ने उत्तर दिया।

रामदयाल अभी तक चुपचाप था। उसने प्रस्ताव किया—'इन्हें पुरुष का वेष धारण करके चलना चाहिये।'

इस प्रस्ताव को कुंजरसिंह और गोमती दोनों ने स्वीकृत किया।

[६०]

कुञ्जरसिंह गोमती को लेकर गढ़ के उत्तर की ओर से जाने की दुविधा में था। वह सोचता जाता था कि रामदयाल के ऊपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है परन्तु कुमुद ने कहा था कि साथ जाओ, इसलिये जा रहा था। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचाकर लौटने में समय लगेगा और इस बीच में गढ़ की समस्या कुछ उलट-पलट गई, तो क्या होगा ? यह बात उसके मन में गड़ रही थी।

उसी समय सबदलसिंह मिला। कुञ्जर से उसने पूछा—'कहाँ जा रहे हो ?'

उसने उत्तर दिया—'यह एक निरीह स्त्री गढ़ से बाहर जाना चाहती है। चेलरे तक पहुंचाने जा रहा हूँ।'

सबदलसिंह बोला—'लौटने में बहुत देर लग जायगी। तब तक अगर यहाँ आपकी ज़रूरत पड़ गई, तो क्या होगा ? साथ में यह आदमी तो है। दो के जाने की क्या ज़रूरत है। इस स्त्री से आपका कोई नाता है ?'

कुञ्जर ने झिझक के साथ उत्तर दिया—'कोई भी नाता नहीं है। कहा गया था, इसलिये जा रहा हूं।'

रामदयाल तुरन्त बोला—'मेरे बाहु-बल और विवेक का यदि भरोसा किया जाय, तो मैं अकेला ही इस काम को निभा सकता हूं।'

कुञ्जरसिंह को उत्तर देने में हिचकते हुये देखकर सबदल ने रामदयाल से कहा—'तुम्हारा इनसे कोई नाता है ?'

'क्या बतलाऊं।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'इसे वह जानती हैं, मैं सेवक-मात्र हूं।'

सबदल ने कुछ विनम्र और कुछ अधिकार-युक्त स्वर में कुञ्जर से कहा—'राजा, आप न जा सकेंगे। देवी ने मानो आप ही को तोपों पर

नियुक्त किया है। थोड़े समय के लिये भी आपका यहाँ से चला जाना न-मालूम कब हम सब लोगों के लिये भयंकर हो उठे।'

कुञ्जर असमंजस में पड़ गया।

एक क्षण बाद ही एक आकस्मिक घटना ने उसे निर्णय के किनारे पहुँचा दिया। उसी समय एक ओर से नरपति दौड़ता हुआ आया। घबराहट में बोला—'मन्दिर की दालान पर एक गोला अभी आकर गिरा है। दीवार का एक हिस्सा टूट गया है। देखिये, घूल उड़ रही है। शायद हमारी खोह पर भी गोले पड़ें।'

कुञ्जर ने भी देखा।

कुन्जर ने कहा—'आप खोह के भीतरी हिस्से में रहें। मैं अपनी तोपों की मार से उधर की तोपों के मुँह बन्द किये देता हूं।' उसी क्षण रामदयाल से बोला—'तुम इन्हें सुरक्षित स्थान में ले जाओ। मैं न जा सकूँगा। इन्हें कोई कष्ट न होने पावे। खबरदार!'

रामदयाल आश्वासन देता हुआ गोमती के साथ चला गया।

[६१]

गोमती को रामदयाल सहारा देता हुआ, एक तरह से घसीटता हुआ अलीमर्दान की छावनी की ओर ले चला।

खैर, मकोय और हींस के कांटेदार जङ्गल में होकर चलना पड़ा। ऊबड़-खाबड़ भूमि और भरकों की भरमार में यात्रा और भी कष्ट-पूर्ण हो गई। ऊपर से गोली-गोले कभी-कभी समीप आकर ही गिरते थे। काँटों के मारे रामदयाल का शरीर जगह-जगह से लोहू-लुहान हो गया। पसीने के साथ मिलकर रक्त पतली धारों में बह रहा था। परन्तु वह अर्द्ध-चेतना गोमती को अपनी थकी हुई बाहों में कसे हुआ था। उसके जो अङ्ग रामदयाल के शरीर द्वारा सुरक्षित नहीं थे, वे कहीं कहीं कांटों से छिल गये थे और रामदयाल को शायद उसी की अधिक चिन्ता मालूम होती थी। परन्तु बिलकुल थक जाने के कारण एक जगह वह बैठ गया। गोमती भी रामदयाल के पास ही बैठ गई।

थोड़ी देर तक दोनों कुछ न बोले—जब रामदयाल की हांफ शान्त हो गई। तब धीरे परन्तु भर्राये हुये स्वर में बोला—'बहुत कष्ट हुआ है, क्यों ?'

गोमती ने जरा रीती दृष्टि से रामदयाल की ओर देखा, परन्तु उत्तर कुछ न दिया।

थोड़ी देर और चुप रहने के बाद रामदयाल बोला—'आपके शरीर में काँटे अटक गये होंगे, उन्हें निकाल दूं।'

गोमती ने कहा—'कहीं इधर-उधर पैरों में भले हों; उन्हें ठिकाने पर पहुंचकर निकाल लूंगी, अभी रहने दो।'

रामदयाल को अपने काँटे भी काफ़ी कसक रहे थे। गोमती के न पूछने पर भी उसने कहा—'मेरे शरीर को तो काँटों ने छलनी कर दिया है। मैं नहीं जानता था कि इस मार्ग में इतना बुरा जङ्गल मिलेगा।' और अपने लोहू-लुहान हाथों को गोमती के सामने करके देखने लगा। गोमती ने भी देखा।

रामदयाल ने कहा—'अगर कुञ्जरसिंह आते, तो यहां हम लोगों की क्या सहायता कर सकते थे ? कांटों में फँसकर मुझे ही बुरा-भला कहते हैं। खैर, उसे भी सह लेता, क्योंकि कुछ उनके लिये तो मैं सब कर नहीं रहा हूं।'

गोमती बोली—'मैं अब पैदल चलूँगी। जैसे तुम इतना कष्ट भोग सकते हो, वैसे ही मैं भुगत लूँगी।'

रामदयाल ने एक आह भर कर कहा—'मैं कांटों कंकड़ों में घिसटना कैसे देखूँगा।

'तुम भी तो थक गये हो ?'

'थक तो अवश्य गया हूँ, परन्तु अभी मरा तो नहीं हूँ।'

गोमती थोड़ी देर चुप रहकर बोली—'थोड़ी दूर चलकर देख लूं। यदि चलते न बना, तो सहारा ले लूँगी।'

उसने आग्रह के साथ गोमती का हाथ पकड़कर कहा—'मेरे गठीले शरीर को देखो। इस बहते हुये रक्त को देखो। पैरों की उङ्गलियां ठोकरों से फट गई हैं, उन्हें भी देख लो, अब मालूम हो जायगा कि पैदल चलना कितनी आफत का काम है।'

गोमती रामदयाल के हाथ में हाथ दिये रही, परन्तु उसने वह सब कुछ नहीं देखा।

रामदयाल ने यकायक गोमती का वह हाथ झटककर, अपने हृदय पर चिपटाकर रख लिया और असाधारण आवेश के साथ बोला—'और मेरे घायल हृदय को देखो।'

गोमती अपने हाथ को रामदयाल की छाती पर कुछ क्षण रक्खे रही और फिर उसने खींच लिया।

रामदयाल ने उसी आग्रह के स्वर में कहा—'देखोगी ?'

गोमती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रामदयाल कहता गया—'मैं पापी हूं, नीच हूँ, बुरा हूं और सभी कुछ हूं। मेरे राजा ने जैसा कुछ मुझे बनाया, वह मैं सब हूं, परन्तु तुम्हारे लिये मैं कुछ और हूं।'

आवेश के अतिरेक में एक क्षरण के लिये वह रुद्ध हो गया, परन्तु अपने ऊपर शीघ्र अधिकार स्थापित करके बोला—'मेरे लिये केवल दो मार्ग हैं—एक तो यह कि तुम्हें किसी सुरक्षित स्थान में पहुंचाकर तुरन्त मर जाऊं, या खैर, तुम्हारे मुंह की बात सुनकर फिर कुछ कहूंगा।'

गोमती ने पूछा—'कहाँ चलोगे ?'

'ऐसे स्थान पर, जहां तुम्हें किसी तरह का कष्ट न हो सकेगा।'

'मैं लौट न जाऊं ?' गोमती ने क्षीरण स्वर में प्रस्ताव किया।

रामदयाल ने कहा—'उस कंकरीली भूमि पर बैठे बैठे कष्ट होने लगा होगा, वहां मत बैठो।'

गोमती बोली—'अच्छा, जहां चलना हो, चलो। भाग्य में जो कुछ होगा, देखूंगी।' खड़ी हो गई। रामदयाल उसका हाथ पकड़कर चलने लगा। थोड़ी दूर चलकर वह फिसल कर गिर पड़ी। अधिक चोट आ जाती, परन्तु रामदयाल ने सम्भाल लिया। तो भी उसका घुटना छिल गया। रामदयाल ने उसे उठाकर कन्धे से लगा लिया। बोला—'अब पैदल नहीं चलने दूंगा। क्या कहती हो ?'

गोमती बोली—'क्या कहूं ?'

रामदयाल ने गोमती को उठा लिया। रामदयाल को जान पड़ा, जैसे उसकी सब थकावट यकायक कहीं चल दी हो। उसे अपने एक-एक रोम में विलक्षण बल प्रतीत होने लगा। गोमती को हृदय से सटाकर रामदयाल ने प्रश्न किया—'तुम यदि समझो कि मैं तुम्हारे साथ कोई घात कर रहा हूं तो इस क्षरण या जब चाहो, मुझे छुरी के घाट उतार देना। परन्तु मैं जीते-जी तुम्हें अपने से अलग न होने दूंगा।'

थोड़ा-सा स्थान ज़रा साफ-सुथरा मिल जाने से गोमती को बातचीत का सुभीता मिला। बोली—'यहाँ जगह चलने लायक है। मुझे पैदल ही चलने दो।'

रामदयाल ने काँपते हुये कंठ से कहा—'मैं अपने को जैसा इस समय पा रहा हूँ वैसा कभी न पाया था। मैं बड़ी स्वच्छता के साथ अपने जीवन को बिताऊँगा। जो कुछ मैंने किया है, उसे भूल जाऊँगा और तुम्हारे योग्य बनूँगा। तुम मुझे अवसर दोगी ?'

गोमती ने थोड़ी देर कोई उत्तर नहीं दिया। फिर बोली—'यहां से कहां चलोगे ?'

रामदयाल ने तुरन्त उत्तर दिया—'मैं छोटी रानी के पास जाना चाहता था, परन्तु अब मैं सोचता हूं कि वहाँ न जाऊँ। किसी ऐसे स्थान पर चलूँ, जहाँ हम दोनों निरापद् रह सकें।'

गोमती ने अनुरोध के-से स्वर में कहा—'मैं उन्हीं के पास चलना चाहती हूँ। मैं अभी युद्ध-भूमि छोड़ना नहीं चाहती।'

'वहां संकट में पड़ जाने का भय है।'

'तुम भी तो वहाँ रहोगे ?'

'रहूंगा। परन्तु गोला-बारी हो रही है। ऐसा न हो कि तुम बिछुड़ जाओ।'

'वहीं चलो। मैं वहीं कुछ कर सकूँगी।'

रामदयाल ने कुछ क्षण पश्चात इस प्रस्ताव को मान लिया। फिर यकायक उसे हृदय के पास समेटकर बोला—'गोमती, तुम मेरी होकर रहना। रहोगी न ?'

गोमती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

[६२]

रामदयाल को बहुत चक्कर काटकर चलना पड़ा। थोड़ी देर बाद गोमती थकावट के मारे रामदयाल की बाहों में सो गई या अचेत हो गई। रामदयाल थोड़ी दूर चल-चलकर दम लेने के लिये रुक जाता, परंतु गोमती को गोद से न उतारता।

जब शिविर थोड़ी दूर रह गया और सवेरा होने में भी बहुत विलम्ब न था, रामदयाल एक जगह कुछ समय के लिये थम गया। उसने गोमती को गोद में आराम के साथ लिटाया। गोमती सोती रही।

रामदयाल ने उसे जगाया।

गोमती ने पूछा—'कितनी दूर निकल आये होंगे? अभी तो जंगल में ही मालूम पड़ते हैं?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'बहुत दूर निकल आये हैं। उद्दिष्ट स्थान निकट आ गया है। कुछ कष्ट तो नहीं है?'

'अब मैं पैदल चलूंगी। खूब गहरी नींद आ जाने के कारण फुर्ती मालूम होने लगी है। छोड़ दो।'

'अभी नहीं छोड़ूंगा। पहले एक बात बतलाओ।'

'क्या?'

'तुम मुझे प्यार करती हो?'

गोमती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रामदयाल ने और भी आवेश के साथ कहा—'गोमती, मैं राजा तो नहीं हूं, परन्तु मेरा हृदय राजमुकुटों के ऊपर है। उसे मैं तुम्हारे चरणों में रखता हूं।'

गोमती धीमे स्वर में बोली—'तुम अपने राजा के सम्मुख जब जाओगे, क्या कहोगे?'

'मैं उनके सम्मुख अब कभी नहीं जाऊँगा। बहुत दिनों से गया भी नहीं। अब तो मैं छोटी रानी के पास रहूंगा, यदि तुम भी वहां रहना पसन्द करोगी तो; नहीं तो; इस विशाल जगत में कहीं भी हम लोग अपने लिये ठौर ढूंढ़ लेंगे।'

'रानी के पास किसके हित के लिये जा रहे हो ? किसके होकर जा रहे हो।'

'अपने हित के लिये और अपने होकर। मैं इस समय अपने और तुम्हारे सिवा और किसी चीज़ को नहीं देख रहा हूँ।'

'मुझे राजा से एक बार मिलना है।'

'किसलिये ?' रामदयाल ने ज़रा चौंककर पूछा।

'दो बातें कहना चाहती हूँ। उस विश्वासघाती को कुछ दंड भी दिया चाहती हूं, यदि सम्भव हुआ तो।'

रामदयाल ने संतोष की सांस लेकर पूछा—'इसके बाद क्या करोगी ?'

गोमती ने उत्तर दिया—'इसके बाद जो कुछ भाग्य में लिखा है, होगा। कुमुद के ही पास चली जाऊँगी।'

रामदयाल ने कुछ क्षण चुप रहने के बाद कहा—'यदि इस लड़ाई से बचने के बाद कुञ्जरसिंह और कुमुद का स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध हो गया, तो तुम वहां क्या करोगी ?'

गोमती चुप रही।

रामदयाल कहता गया—'कुमुद और कुञ्जर में प्रेम है, इसे मैं भी जानता हूँ और तुम भी। प्रेम का जो आवश्यक परिणाम है, यह भी होकर रहेगा, यानी वे दोनों अपना एक कुटुम्ब बनावेंगे। क्या हम लोग ऐसा नहीं कर सकते ? तुम्हारा शायद यह खयाल है कि मैं तो केवल एक नौकर-मात्र हूँ। मैं पूछता हूँ, हृदयों में क्या कोई भेद होता है ? और फिर मेरे पास सम्पत्ति भी काफी होगी। इसमें सन्देह नहीं कि तुम महारानी न कहला सकोगी, परन्तु तुम सदा मेरी रानी होकर रहोगी, इसमें भी कोई सन्देह नहीं। राजा ने जैसा बर्ताव तुम्हारे साथ किया है, उसमें क्या तुम यह आशा करती हो कि वह तुम्हें अब ग्रहण कर लेंगे ? तुमने उन्हें दण्ड देने के विषय में जो प्रस्ताव किया है, वह महज़ अपने को धोखा देना है तुम उन्हें कोई दण्ड न दे सकोगी। जिस समय उनके

सामने जाकर उन्हें कोई उल्टी-सीधी सुनाओगी, उस समय वह तुम्हारा और अधिक अपमान करेंगे। हां, मैं दण्ड भी दे सकता हूँ, परन्तु तुम कहो, तो।'

गोमती ने कहा—'कुमुद-जैसी स्त्रीं अब कभी न मिलेगी।' और एक लम्बी आह खींची।

रायदयाल ने सांस खींचकर कहा—'तुम अब भी उधर का ही ध्यान कर रही हो? यदि तुम्हारी इच्छा वहां फिर लौट चलने की हो, तो आज दिन-भर यहीं भरकों में छिप जाओ, सन्ध्या-समय मैं तुम्हें वहीं पहुँचा दूँगा और अपने को किसी तोप के गोले के नीचे खपा दूँगा।' वह सूक्ष्मता के साथ गोमती की ओर देखने लगा।

गोमती को चुप देखकर ज़रा जोश के साथ रामदयाल बोला—'बोलो गोमती। मैं इसके लिये भी तैयार हूँ। सवेरा होने वाला है। दिन में बाहर चलना-फिरना अनुचित होगा। यदि काफ़ी रात होती, तो मैं इसी समय विराटा लौट पड़ता, यद्यपि सारा शरीर चूर-चूर हो गया है और काँटों के मारे बिच्छू के डंकों-जैसी ताड़ना हो रही है।'

गोमती ने सिर नीचा करके कहा—'मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। अब विराटा नहीं जाऊँगी।'

रामदयाल का शरीर कांप उठा। उसने तुरन्त असहाय गोमती को उठाकर अपने गले से लगा लिया। गोमती की आंखों से आँसू बह निकले।

[९३]

उन दिनों छावनियों के आस-पास पहरों की वह कड़ाई न थी, जो आजकल की रण-क्रिया में दिखलाई पड़ती है। इसलिये रामदयाल और गोमती को छावनी के बाहर के थानेवालों ने सवेरा हो जाने के बाद देखा। कुछ रोक-टोक और कठिनाई के बाद रामदयाल गोमती को लिये हुये छोटी रानी के तम्बू के पास आ खड़ा हुआ। रानी उन दोनों को देखकर प्रसन्न नहीं हुईं।

रामदयाल से कहा—'इस बेचारी को इस घोर संग्राम में क्यों ले आया ?'

रामदयाल ने निर्भयता से उत्तर दिया—'गोमती की रक्षा और कहीं हो ही नहीं सकती थी। इनका यहां बाल भी बांका न हो सकेगा। आपकी रावटी में रहेंगी यह।'

रानी की आंखों से चिनगारी-सी छूट पड़ी, परन्तु गोमती के म्लान मुख और दुर्दशा-ग्रस्त नेत्रों को देखकर असाधारण संयम के साथ बोली—'अच्छा इस लड़की को मेरे पास छोड़ दो। मैं इसकी रक्षा करूंगी। तेरा कार्य-क्रम अब क्या है ?' गोमती को रानी ने अपने निकट बिठला लिया।

रामदयाल का तू-तड़ाक का यह वार्तालाप आज अपूर्व श्रुति-कटु जान पड़ा, परन्तु उसकी चतुरता ने उसका साथ न छोड़ा। कहने लगा—'जो आपका कार्य-क्रम है, वही मेरा भी। जनार्दन शर्मा को ठिकाने लगाना है, यही न ?'

रामदयाल की बातचीत के संक्षिप्त ढङ्ग से रानी ज़रा चकित हुईं। रोष में आकर बोलीं—'तू इस लड़की को सँभाले रहना। मैं जनार्दन का सिर काटूंगी।'

ज़रा लजित स्वर में रामदयाल ने उत्तर दिया—'देख-भाल के लिये तो मैं इन्हें यहाँ लाया ही हूं। यह हथियार चलाना जानती हैं। आपको इनसे सहायता मिलेगी, परन्तु जनार्दन से लड़ने के लिये न तो आपको जाना पड़ेगा और न इन्हें, मैं जाऊँगा।'

रानी ने बेधड़क गोमती से पूछा—'तुम्हारा इसका क्या नाता है ?'

गोमती के होंठ फड़के, माथे की नसें फूल गईं और चेहरा लाल हो गया। कुछ कहने को हुई कि गला रुँध गया।

रामदयाल ने दबे हुये स्वर में तुरन्त उत्तर दिया—'इस समय मैं इनका केवल रक्षक हूँ। इससे ज्यादा आपको जानने की ज़रूरत भी क्या है ?'

रानी ने सिंहनी की दृष्टि से रामदयाल की ओर देखा। फिर यथा-संभव नरम स्वर में गोमती से बोलीं—'तुम ठीक-ठीक बतलाओ, यह तुम्हारा सत्यानास करने को तो नहीं लिवा लाया है ? यह बड़ा झूठा और फ़रेबी है।'

रामदयाल ने कुपित कण्ठ से कहा—'ठीक है महाराज ! मेरी सेवाओं का यह पुरस्कार तो मिलना ही चाहिये। मान लीज़िये, मैं इनका सत्यानास करने को ही यहां लिवा लाया हूं, तो इनकी जितनी दुर्दशा हो चुकी है, उससे और अधिक तो होगी नहीं, और यदि मैं आपको बहुत खलने लगा हूँ, तो इसी समय चले जाने को प्रस्तुत हूँ।'

गोमती ने स्पष्ट स्वर में कहा—'मैं रानी के ही पास रहूंगी।'

रानी नरम पड़ गईं। बोलीं—'रामदयाल, तुम हमें ऐसे अवसर पर छोड़कर न जाओगे, तो कब जाओगे ? इसीलिये तो तुम्हें झूठा और फ़रेबी कहा। छुटपन से तुम्हें देखा है। छुटपन से तुम्हें गालियां दी हैं। अब क्या छोड़ दूँगी ?'

सिर नीचा करके रामदयाल ने अपने सहज स्वभाविक ढङ्ग से उत्तर दिया—'सो आपके सामने सदा सिर झुका है। आपको जब कभी रंज या क्रोध में देखता हूं. बुरा लगता है। मैं आपको धार में छोड़कर कैसे जा सकता हूं ? आपकी सहायता के लिये ही गोमती को लिवा लाया हूं। आपका इनसे मन-बहलाव होगा और यदि लड़ाई के समय आपके ऊपर कोई सङ्कट उपस्थित होगा, तो मेरे अतिरिक्त यह भी आपकी सहायक होंगी।'

इसके बाद गोमती को कुछ संकेत करता हुआ रामदयाल छावनी में अलीमर्दान के पास चला गया। अपना जितना अपमान आज उसने अवगत किया, उतना जीवन में पहले कभी न किया था।

[६४]

अलीमर्दान के शिविर में रामदयाल और गोमती के पहुंच जाने के बाद ही बिराटा की गढ़ी पर गोला-बारी बढ़ गई। कुञ्जरसिंह की तोपें उत्तर देने लगीं। परन्तु कुञ्जरसिंह ने एक घण्टे के भीतर ही देख लिया कि समस्या अत्यन्त विकट हो गई है और अधिक समय तक बिराटा की गढ़ी को सुरक्षित रखना संभव न होगा।

तोपों के ऊपर अपने चुस्त तोपचियों को छोड़कर वह कुमुद के पास गया। खोह में इस समय नरपति न था।

कुञ्जरसिंह ने धीमे स्वर में कहा—'बिदा माँगने आया हूँ।'

कुमुद उसके असाधारण तने हुये नेत्र देखकर चकित हो गई। कोमल स्वर में पूछा—'क्यों? क्या—'

'अन्तिम बिदाई के लिये आया हूं। आज की सन्ध्या देखने का अवसर मुझे न मिलेगा। ४-६ घण्टे में यह गढ़ ध्वस्त हो जायगा और रामनगर की सेनायें प्रवेश करेंगी। कुछ डर मत करना। खोह में ही बनी रहना। कोई सेना आपका अपमान नहीं कर सकेगी। यदि आप भी कल रात को बाहर चली जातीं, तो बड़ा अच्छा होता।'

कुमुद कुछ क्षण चुप रही। स्वर को संयत करके बोली—'दुर्गा कल्याण करें, विश्वास रखिये।'

'दुर्गा और आपका विश्वास ही तो मुझसे काम करवा रहा है।' कुञ्जरसिंह ने कहा—'इसीलिये आपसे इसी समय बिदा मांगने आया हूं—दुर्गा से मरते समय बिदा मांगूंगा।' कुंजर मुस्कराया। मुस्कराहट क्षीण थी, परन्तु उसमें न मालूम कितना जल था।

कुमुद की आँखें तरल हो गईं। ऐसी शायद ही कभी पहले हुई हो, जैसे गुलाब की पंखुड़ी पर बड़े-बड़े ओस-कण ढलक आये हों।

उन्हें किसी तरह वहीं छिपाकर कुमुद ने कम्पित स्वर में कहा—'मैं आपके साथ चलूँगी।'

'मेरे साथ!' सिपाही कुंजर बोला—'नहीं कुमुद, यह न होगा। गोलों की वर्षा हो रही है। उस संकट में आपको नहीं जाने दूंगा।

'मैं चलूँगी।'

कुमुद की आँखों में अब आँसू न था। कुंजर ने दृढ़ता के साथ कहा—'देवीसिंह की महत्त्वाकांक्षा पर मुझे बलिदान होना है आपको नहीं आप इसी खोह में रहें।'

'मैं दुर्गा के पास प्रार्थना करने जाती हूं।' कुमुद बोली।

उसने पैर उठाया ही था कि एक गोला मन्दिर की छत पर और आकर गिरा और वह ध्वस्त हो गई।

कुंजर ने कहा—'वहाँ मत जाइये, दुर्गा का ध्यान यहीं करिये। मैं अब जाता हूं। मरने के पहले मैं देवीसिंह को अपनी तोपों की कुछ करामात दिखलाना चाहता हूं। उसे विजय सस्ती नहीं पड़ने दूँगा।'

'अभी मत जाओ।' क्षीण स्वर में कुमुद ने कहा—'ज़रा ठहर जाओ। गोला-बारी थोड़ी कम हो जाने दो' और बड़े स्नेह की दृष्टि से कुमुद ने कुंजर के प्रति देखा।

कुंजर उत्साह-पूर्ण स्वर में बोला—'मैं अभी थोड़ी देर और नहीं मरूँगा। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि देवीसिंह के सिर पर तलवार बजाकर फिर मरूँगा।'

कुमुद चुप रही। जल्दी-जल्दी उसकी साँस चल रही थी। आँखें नीची किये खड़ी थी। कुञ्जर भी चुप था। तोपों की धूम-धड़ाम आवाजें आ रही थीं।

कुञ्जर ने पूछा—'तो जाऊँ?' परन्तु गमनोद्यत नहीं हुआ।

कुमुद बोली—'जाइये, मैं पीछे-पीछे आती हूँ।'

'तब मैं न जाऊँगा।'

'यह मोह क्यों?'

'मोह?' कुञ्जर ने ज़रा उत्तेजित होकर कहा—'मोह! मोह! न था। अब मरने का समय आ रहा है, इसलिये मुक्त होकर कह डालूँगा कि क्या था......।' परन्तु आगे उससे बोला नहीं गया।

कुमुद उसकी ओर देखने लगी।

कुछ क्षण बाद कुञ्जर ने कहा—'तुम मेरे हृदय की अधिष्ठात्री हो, मालूम है ?'

कुमुद का सिर न-मालूम ज़रा-सा कैसे हिल गया। आँखें फिर तरल हो गईं।

'तुम मेरी हो ?' आवेश-युक्त स्वर में कुञ्जर ने प्रश्न किया।

कुमुद ने कुछ उत्तर न दिया।

कुंजर ने उसी स्वर में फिर प्रश्न किया—'मैं तुम्हारा हूँ ?'

कुमुद नीचा सिर किये खड़ी रही।

कुञ्जर ने बड़े कोमल स्वर में प्रस्ताव किया—'कुमुद, एक बार कह दो कि तुम मेरी हो और मैं तुम्हारा हूं—सम्पूर्ण विश्व मानो मेरा हो जायगा और देखना, कितने हर्ष के साथ मैं प्राण विसर्जन करता हूँ।' कुञ्जर को यह न जान पड़ा कि वह क्या कह गया।

कुमुद ने सिर नीचा किये ही कहा—'आप अपनी तोपों को जाकर सँभालिये। मैं दुर्गाजी से आपकी रक्षा और विजय के लिये प्रार्थना करती हूँ।'

कुञ्जर ने हँसकर कहा—'उसके विषय में तो दुर्गा ने पहले ही कुछ और तय कर दिया है।'

किसी पूर्व-स्मृति ने कुमुद के हृदय पर एकाएक चोट की। दुर्गा ने पहले ही कुछ और तय कर दिया है।'

इस वाक्य ने कमुद के कलेजे में बर्छी-सी छेद दी। वह विस्फारित लोचनों से कुंजर की ओर देखने लगी। चेहरा एकाएक कुम्हला गया। होंठ कांपने लगे। उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे लड़खड़ाकर गिरना चाहती हो। सहारा लेकर बैठ गई। दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया।

कुंजर ने पास आकर उसके सिर पर हाथ रक्खा—'क्या हो गया है कुमुद ? घबराओ मत। तुम दूसरों को धैर्य बँधाती हो। स्वयं अपना धैर्य स्थिर करो। सम्भव है, मैं आज की लड़ाई में बच जाऊँ।'

कुमुद फिर स्थिर हो गई। बोली—'मैं आज लड़ाई में तुम्हारे साथ ही रहूंगी। मानो।'

कुन्जर कुछ क्षण कोई उत्तर न दे पाया। कुमुद ने फिर कहा—'वहाँ पास रहने से आपके कर्तव्य-पालन में विघ्न होगा और मैं दुर्गा की प्रार्थना न कर सकूँगी।'

कुन्जर बोला—'केवल एक बात मुँह से सुनना चाहता हूँ।

बहुत मधुर स्वर में कुमुद ने पूछा—'क्या ?'

'तुम मुझे भूल जाना।'

नीचा सिर किये हुये ही कुमुद ने कुंजर की ओर देखा। थोड़ी देर देखती रही। आंखों से आँसुओं की धार बह चली।

कम्पित स्वर में कुन्जरसिंह ने पूछा— भुला सकोगी ?'

कुमुद के होठ कुछ कहने के लिये हिले, परन्तु खुल न सके। आंखों से और भी अधिक वेग से प्रवाह उमड़ा।

कुन्जर की आंखें भी छलक आईं! बड़ी कठिनाई से कुन्जर के मुँह से ये शब्द निकले—'प्राण प्यारी कुमुद, सुखी रहना। एक बार मेरी तलवार की मूठ छू दो।'

तुरन्त कुमुद उसके सन्निकट आकर खड़ी हो गई। एक उसका कोमल कर कुन्जर की कमर में लटकती हुइ तलवार की मूठ पर जा पहुँचा और दूसरा उसके उन्नत भाल को छूता हुआ उसके कन्धे पर जा पड़ा।

ऊपर गोले सायँ-सायँ कर रहे थे। तोपचियों ने कुन्जरसिंह को पुकारा। कुन्जर ने अपना एक हाथ कुमुद की पीठ पर धीरे से रक्खा और फिर ज़ोर से उसे हृदय से लगा लिया। कुमुद ने अपना सिर कुन्जर के कन्धे पर रख दिया

तोपचियों ने कुन्जरसिंह को फिर पुकारा।

कुन्जरसिंह कुमुद से धीरे से अलग हुआ। बोला—'यहीं रहना, बाहर मत आना। सुखी रहना।' कुमुद कुछ न बोल सकी।

खोह से बाहर जाते हुये पीछे एक बार मुड़कर कुन्जर ने फिर कहा—'अगले जन्म में फिर मिलेंगे—अवश्य मिलेंगे अर्थात् यदि आज समाप्त हो गया तो।'

[६५]

उसी दिन राजा देवीसिंह ने देखा कि गोलाबारी केवल विराटा की तरफ से ही नहीं हो रही है, किन्तु अलीमर्दान की तोपें गोले उगल रही हैं।

रामनगर के नीचे गहरे नाले के एक संकीर्ण भरके में लोचनसिंह के पास देवीसिंह और जनार्दन आये। देखते ही लोचनसिंह ने कहा—'मालूम होता है, अलीमर्दान और कुन्जरसिंह का मेल हो गया है। अब तो यहां छिपे-छिपे नहीं लड़ा जाता।'

देवीसिंह पास आकर बोला—'हमारी तोपें रामनगर से अलीमर्दान की छावनी पर आग उछालेंगी। परन्तु आढ़-ओट के कारण कुछ हो नहीं पाता है। व्यर्थ ही गोला-बारूद खराब हो रहा है। यदि किसी तरह अलीमर्दान को मुसावलीपाठे की ओर से हटा सकें और विराटा की गढ़ी को हाथ में कर लें, तो स्थिति तुरन्त बदल जाय।'

'मैं अलीमर्दान को मुसावलीपाठे से हटा दूंगा।' लोचनसिंह ने कहा।

देवीसिंह बोले—'आप भरकों को ही पकड़े रहिये। मैं किनारे-किनारे आड़-ओट लेता हुआ विराटा पर धावा करता हूं। आप भरकों में से दाव बोलकर हमारी टुकड़ी की रक्षा करते हुये बढ़िये। जनार्दन मुसावलीपाठे पर हल्ला बोलें। अलीमर्दान की सेना दो ओर से दबोची जाकर मैदान पकड़ेगी। तब खूब खुलकर हाथ करना। इस बीच में हम लोग विराटा गढ़ी को घर दबायेंगे और वहां से अलीमर्दान का सफाया कर देंगे।'

लोचनसिंह ने अस्वीकृति के ढङ्ग पर कहा—'इस तरह की सलाहें सदा बनती और बिगड़ती हैं। मैं तो इस तरह की लड़ाई लड़ते-लड़ते थक गया हूं। लड़ना हो, तो अच्छी तरह से खुलकर लड़ लेने दीजिये। यहां बैठे-बैठे रेंगते-रेंगते फिट-फिट करने से तो मर जाना अच्छा है।'

देवीसिंह ने उत्तेजित होकर आश्वासन दिया—'नहीं, आधी घड़ी के भीतर ही इसी योजना पर काम होगा। परन्तु पहले हमें नदी के किनारे अपनी टुकड़ी के साथ हो जाने दो। उसके बाद तुम ज़ोर का हल्ला बोल कर आगे बढ़ो। तुम्हारे हल्ले के पश्चात् तुरन्त ही जनार्दन मुसावली पाठे के पीछे से हमला करेंगे।'

लोचनसिंह ने कहा—मैं अभी बढ़ता हूँ। दीवान जी अपनी जानें, परन्तु आज आगे पैर रख कर पीछे हटाने का काम नहीं है।'

जनार्दन इस स्पष्ट व्यङ्ग से आहत होकर बोला—'आप अपने की खबर लिये रहियेगा, मेरे पैरों की उङ्गलियां एड़ी में नहीं लगी हैं।'

लोचनसिंह का शरीर जल उठा। परन्तु देवीसिंह ने जनार्दन को तुरन्त वहां से निर्दिष्ट कार्य के लिये भेज दिया।

[९६]

अलीमर्दान शीघ्र युद्ध समाप्त करना चाहता था। दीर्घ काल तक लगातार लड़ते रहना किसी पक्ष के भी मन में हठ के रूप में न था। छोटी रानी को कुछ समय पहले वह सहायक समझता था, परन्तु अब उसके लिये भार-सी होती जा रही थीं। विराटा की पद्मिनी के लिये उसका जी उत्सुकता से भरा हुआ था, देवीसिंह को यदि वह ४-६ कोस ही पीछे हटा सकता और थोड़ा-सा अवकाश पाकर कुमुद को बिराटा से अपने साथ ले जाता, तो भी वह अपने को विजयी मान लेता। बिराटा और रामनगर के छोटे से राज्य उसकी महत्त्वाकांक्षा के क्षितिज नहीं थे। उसकी राजनीति कल्पनाओं के केन्द्र दिल्ली और कालपी थे।

अपनी ही उमङ्ग और सनक से उत्तेजित होकर उसने अपने एक सरदार को बुलाया। कहा—'देवीसिंह पर जोर का हमला कर के उसे पीछे हटाना बहुत जरूरी है। बिराटा को भी आँख से ओझल नहीं होने देना चाहिये। यदि बिराटा वालों के ध्यान में पूर्व दिशा की ओर भाग खड़े होने की समा गई, तो फिर कुछ हाथ नहीं लगेगा। सारी मेहनत बेकार हो जायगी।'

'जब तक कुञ्जरसिंह बिराटा में है।' उसने मन्तव्य प्रकट किया—'तब तक वहां की चिन्ता नहीं। वह बराबर देवीसिंह की सेना पर गोला-बारी करता रहेगा।'

अलीमर्दान उत्तेजित स्वर में बोला—'मैं चाहता हूं अपने सिपाही बढ़कर हाथ करें। देवीसिंह पीछे हटाया जाय। तुम रानी को साथ लेकर हमला करो। मैं एक दस्ता लेकर बिराटा पर धावा करता हूं। आगे तक़दीर।'

सरदार ने अकचकाकर कहा—'सेना को टुकड़ों में बांटना शायद हानि का कारण हो बैठे।'

जरूर हो सकता है।' अलीमर्दान ने चुटकी ली—'यदि हमारी फ़ौज इस क़ायदे और पाबन्दी के साथ लड़ती रही, तो।'

वह मुँह लगा नायक था परन्तु जब नवाब को उत्तेजित देखा, तब उसने विरोध करने का साहस नहीं किया। इसके सिवा कुञ्जरसिंह के दो ओर से दबोचे जाने के प्रस्ताव में एक हिंसा-मूलक आशा थी, इसलिये वह शीघ्र सहमत हो गया। आक्रमण के सब पहलुओं पर बातचीत करके योजना को सांगोपांग तैयार कर लिया। रानी को इस प्रकार की लड़ाई के लिये सहमत कर लेना वह बिलकुल सहज समझता था।

रानी तो सहज सरल गति को घृणा के साथ शिथिलता की संज्ञा देने की मानों प्रतिभा रखती थीं। परन्तु अलीमर्दान जानता था कि रानी को अपनी तैयार की हुई योजना को निर्णय के रूप में बतलाने से वह तत्काल उत्साह-पूर्ण सहमति प्राप्त न होगी, जो उसी के मुँह से अपनी योजना पर उसके निश्चय की छाप लगवाने से होती। इसलिये उन दोनों ने छोटी रानी के डेरे पर जाने का संकल्प किया।

अलीमर्दान और सरदार इस अभीष्ट से अपने स्थान से बाहर जाने को ही थे कि एक हरकारा सामने आया।

'हुज़ूर।' हांफता हुआ बोला--'दिल्ली से खान्दौरान का पत्र आया है।'

जैसे तेज़ी के साथ बहने वाले नाले को एकाएक एक बड़ी चट्टान की बाधा सामने मिल जाय और उसके आगे की धार क्षीण हो जाय, उसी तरह अलीमर्दान सन्न-सा हो गया। सम्भलकर उसने हलकारे से कहा— 'कहाँ है लाओ।'

हरकारे ने अलीमर्दान के हाथ में चिट्ठी दी। दिल्ली का सिंहासन संकट में था। दिल्ली में ही दिल्ली का एक सरदार विमुख हो गया था। और सरदारों पर इतना भरोसा न था, जितना अलीमर्दान पर। राजपथ को स्वच्छ करने के लिये अलीमर्दान को तुरन्त शेष सेना-समेत दिल्ली आने के लिये पत्र में लिखा था। पत्र पर बादशाह की मुहर थी। खानदौरान ने उसे भेजा था। खानदौरान के बनने-बिगड़ने पर अलीमर्दान का इस तरह के अनेक सरदारों की भाँति, भविष्य निर्भर था। इसलिये वह पत्र फ़रमान के रूप में था और अनिवार्य था।

अलीमर्दान ने सरदार को पत्र या फ़रमान दे दिया, उसने पढ़कर मुस्कराकर कहा—'हुजूर को शायद पहले से कुछ मालूम हो गया था। कल के लिये लड़ाई का जो कुछ ढंग तय किया गया है, वह इस फ़रमान की एक लकीर के खिलाफ़ नहीं जा रहा है।'

अलीमर्दान भी उत्साहित होकर बोला—'इसमें सन्देह नहीं कि इस परवाने से कल की लड़ाई को दोहरा ज़ोर मिलना चाहिये। भाई खां, अगर लड़ाई चींटी की रफ़्तार से चली, तो कल ही या ज्यादा-से ज्यादा दो दिन बाद हमें देवीसिंह से सुलह करनी पड़ेगी और जीते-जिताये मैदान को छोड़कर चला जाना पड़ेगा। अन्त में कुञ्जरसिंह और उनके देवी-देवता कहीं कूच कर देंगे और फिर हजार लड़ाइयों का भी वह फल न होगा, जो कल की एक कसदार लड़ाई का होना चाहिए। क्या कहते हो?'

सरदार ने उत्तर दिया—'इंशाअल्ला कल ही सवेरे लीजिये, चाहे हमारी आधी सेना कट जाय।'

[९७]

जब से गोमती छोटी रानी के पास से आई, बोली कम, किसी गंभीर चिन्ता में, किसी गूढ़ विचार में डूबती-उतराती रही अधिक। छोटी रानी का अनुराग कथोपकथन में अधिक दिखलाई पड़ता था, परन्तु गोमती हाँ-हूं करके या बहुत साधारण उत्तर देकर अपनी विषय रुचि-भर प्रकट कर देती थी।

छोटी रानी की रावटी बिराटा के उत्तर पश्चिम में, एक गहरे नाले के छोटे से द्वीप पर थी। इसी नाले के छोर पर अलीमर्दान का डेरा था। रात हो रही थी। गोमती को अपने अंगों में शिथिलता अनुभव हो रही थी। रानी बातचीत करने के लिये आतुर थीं। गोमती कोई बचाव न देखकर बातचीत करने के लिये तत्पर हो गई।

छोटी रानी बोलीं—'कई बार पहले भी कह चुकी थी कि इस लड़ाई में मैं स्वयं तलवार लेकर भिड़ूंगी। पुरुषों की ढील-ढाल के कारण ही देवीसिंह अब तक मौज में हैं।'

'हां, सो तो ठीक ही है।' गोमती ने जमुहाई लेकर सहमति प्रकट की।

"मैं केवल यह चाहती हूँ कि देवीसिंह के सामने तक किसी तरह पहुँच जाऊं।' रानी बोलीं।

गोमती ने सिर हिलाया।

रानी कहती गईं—'अब और अधिक जीने की इच्छा नहीं है, दलीपनगर के राज्य की भी आकांक्षा नहीं है, परन्तु छलियों और अधर्मियों को अपने मरने से पहले कुचला हुआ देखने की अभिलाषा अवश्य है। देवीसिंह को रण में ललकार सकूं, जनार्दन शर्मा का मांस कौओं-कुत्तों को खिला सकूं, केवल यह ललक है। अलीमर्दान के पास इतनी सेना है कि यदि वह डटकर लड़ डाले, तो देवीसिंह की सेना नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। अवसर भी अच्छा है। बिराटा उस छलिया पर आग बरसा ही रहा है। इधर से एक प्रचंड हल्ला और बोल दिया जाय, तो युद्ध के सफल होने में विलंब न रहे। तब दलीपनगर फिर उसके सच्चे अधिकारी के

हाथ में पहुंच जाय, नीच, राक्षस जनार्दन अपनी करनी को पहुँचे, स्वामिधर्मी सरदारों के जी में जी आवे और बागी भय के मारे दलीपनगर छोड़कर भागें। धर्म का राज्य हो और सब लोग शांति के साथ अपना-अपना काम करें। कुञ्जरसिंह को एक अच्छी-सी जागीर मिल जाय, तो वह भी सुख के साथ अपना जीवन-निर्वाह करे परन्तु बड़ी सरकार से कुछ न बना।'

इसी क्षण रानी ने अपने स्थान के एक कोने में दृष्टि डाली। वहाँ राज-पाट का कोई सामान न था। परन्तु उसे अपनी वर्तमान वास्तविक अवस्था का फिर ध्यान हो आया।

भर्राये हुये कंठ से वह बोलीं—राज्य नहीं चाहिये और न वह कदाचित् मिलेगा परन्तु हाथ में तलवार लेकर देवीसिंह के कवच और झिलम को अवश्य फाड़ूँगी और फिर मरूँगी। इसे कोई नहीं रोक सकेगा, यह तो मेरे भाग्य में होगा, गोमती।'

गोमती की शिथिलता कम हो गई थी। शरीर में सनसनी थी, गले में कंप।

धीरे से बोली—'आप जो कुछ करें, मैं आपके संग में हूं, मैं भी मरना चाहती हूं। मुझे संसार में अब और कुछ भी देखने की इच्छा नहीं। कुमुद—विराटा की देवी—सुखी रहे, यही लालसा है।'

'विराटा की देवी!' रानी ने उत्तेजित होकर कहा—'दाँगी की छोकरी को देवी किसने बना दिया?'

गोमती ने भी ज़रा उत्तेजित स्वर में उत्तर दिया—'संसार उसे मानता है। और कोई माने या न माने, मैं उसे लोकोत्तर समझती हूँ। यदि इसी समय प्रलय होने वाली हो, तो मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगी कि कम-से-कम एक वह बची रहे।'

रानी ज़ोर से हँसकर एकाएक चुप हो गई और तुरन्त बोलीं—'नहीं, मैं प्रार्थना करूँगी कि मैं और देवीसिंह बचे रहें और मेरी तलवार। मैं अपनी तलवार से या तो गला काट लूँ और या उसी तलवार को अपनी छाती में चुभो लूँ।'

'जनार्दन ?' गोमती ने क्षीण तीक्ष्णता के साथ पूछा।

'मेरे साथ हँसी मत करो।' रानी ने निषेध किया— 'जनार्दन बचा रहेगा, तो उसके मारने के लिये रामदयाल भी तो बना रहेगा।'

गोमती का चेहरा एक क्षण के लिये तमतमा गया। परन्तु अपने को संयत करके बोली—'जब मैं स्वयं तलवार चला सकती हूं, तब किसी के आसरे की कोई अटक नहीं है।' फिर तुरन्त अपने असंगत उत्तर पर कुपित होकर बोली—'मैं अपनी बकवाद से आपको अप्रसन्न नहीं करना चाहती, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि—'

'क्या ?' रानी ने असाधारण रुचि प्रकट करते हुये पूछा—'किस बात में सन्देह नहीं ?'

गोमती ने बिलकुल संयत स्वर में कहा—'इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं लड़ना चाहती हूं उसके साथ, जिसने मेरा अपमान किया है, मेरे जीवन का नाश किया है—आपके साथ नहीं।'

रानी ने एक क्षण पश्चात् प्रश्न किया—'रामदयाल कहाँ है ?'

'मुझे नहीं मालूम।' गोमती ने उत्तर दिया।

'तुमसे कहकर नहीं गया ?'

'न। आपसे कुछ कहकर गये होंगे -'

'वह तुम्हारे साथ ब्याह करना चाहता है अर्थात् यदि तुम उसकी ज़ाति की होओ तो।'

'और न होऊँ, तो ?'

'तो भी वह अपना घर बसना चाहता है, तुम्हें यों ही रख लेगा।'

गोमती ने दाँत पीसे। बहुत धीरे और कांपते हुये स्वर में पूछा—'वह कौन जाति के हैं ?'

'दासी-पुत्र है।' रानी ने प्रखर कण्ठ से उत्तर दिया— 'दासी-पुत्रों की कोई विशेष जाति नहीं होती, उनका सम्बन्ध परस्पर हो जाता है। परन्तु वह स्वामिभक्त है।'

'यहां तो मुझे सब दासी-पुत्र दिखलाई दे रहे हैं।' गोमती ने क्षुब्ध होकर कहा—'मुझे तो कोई भी वास्तविक क्षत्रिय नहीं दिखलाई देता। क्षत्रियत्व की डींग मारनेवालों में क्षत्रिय का क्या कोई भी लक्षण बाक़ी है? अपने को क्षत्रिय कहने वाला कौन-सा मनुष्य दुर्बलों को सबलों से, पतितों को उत्थितों से, पीड़ितों को पीड़कों से, निस्सहायों को प्रपन्नों से बचाने में अपने को होम देता है? मैं तो यह देख रही हूं कि क्षत्रित्व की डींग मारने वाले अपने अहंकार की झंकार को बढ़ाने और पर-पीड़न के सिवा और कुछ नहीं करते।' फिर नरम स्वर में तुरन्त बोली—'आपसे पूछती हूँ कि विराटा के मुट्ठी-भर दांगियों ने आपका या दलीपनगर का क्या बिगड़ा है, जो उन पर प्रलय बरसाई जा रही है? क्या जिस प्रेरणा के साथ आपने दलीपनगर के राजा या छलिया के साथ लोहा लिया चाहती हैं, उसकी आधी भी उमंग के साथ आप विराटा की उस निस्सहाय कुमारी की कुछ सहायता कर सकती हैं?'

रानी कुछ कहना चाहती थीं कि रामदयाल आ गया। उसके चेहरे पर उमङ्ग की छाप थी, एक तीक्ष्ण दृष्टि से उसने रानी की ओर देखा और आधे पल एक कोने से गोमती को देखकर बोला—'कल बहुत ज़ोर की लड़ाई होगी, ऐसी कि आज तक कभी किसी ने न देखी और न सुनी होगी।'

क्रुद्ध स्वर में रानी ने कहा—'तू उस लड़ाई में कहां होगा? ले जा इस लड़की को संसार के किसी कोने में और कर अपना जन्म सफल। मरने-मारने के लिये मुझे अब किसी साथी की जरूरत नहीं।'

किसी भाव के कारण गोमती का गला रुद्ध हो गया। कुछ कहने को ही थी कि छोटी रानी के स्वभाव और अभ्यास से परिचित रामदयाल मानो दोनों ओर के वारों के बीच में ढाल बन गया हो। बोला—'नवाब साहब एक बहुत महत्वपूर्ण विषय पर बातचीत करने के लिये आपके पास आये हैं। यहीं खड़े हैं, तुरन्त मिलना चाहते हैं। लिवा लाऊं।'

रानी ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी। कुछ ही पल बाद रामदयाल अलीमर्दान को लिवा लाया। रानी ने साधारण-सी आड़ कर ली और रामदयाल ने उसके बैठने के लिये आसन रख दिया।

[९८]

'कल देवीसिंह को उसके सब पापों का फल मिलेगा महारानी साहब।' अलीमर्दान ने कहा—'चाहे इस लड़ाई में मेरी आधी फौज खतम हो जाय, इस पर मोर्चा लिये बिना चैन न लूँगा। खुदा ने चाहा, तो कल शाम को इस वक्त हम लोग रामनगर और विराटा पर पूरा अधिकार कर लेंगे।'

रानी ने रामदयाल के द्वारा कहलवाया—'मुझे आपसे यही आशा है। मेरी समझ में हल्ला रात में ही बोल दिया जाय। सेना को कई दलों में बाँट दिया जाय। कुछ तो समय-कुसमय के लिये तैयार बने रहें, बाकी दल कई ओर से चढ़ाई करके डटकर लड़ जायँ।'

अलीमर्दान बोला—'मैंने भी कुछ इसी तरह का उपाय सोचा है। मैं एक विनती करने आया हूँ।'

रामदयाल ने पूछा—'क्या आज्ञा है ?'

'विनती यह है।' अलीमर्दान ने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—'कि इस धावे का सेनापतित्व महारानी साहब और मेरे नायक के हाथ में रहे। महारानी साहब की शूरता हमारे सैनिक की छाती को लोहे का बना देगी।'

रानी ने रामदयाल के द्वारा कहा—'आपकी आज्ञा का पालन किया जायगा। आप न भी चाहते, तो भी मैं सेना के आगे रहकर अपने पद और मर्यादा का मन मनाती।'

रामदयाल कहने में शायद कुछ भूल गया था, इसलिये आड़-ओट की अपेक्षा न करके रानी स्वयं बोलीं—'कल मैं बतलाऊंगी कि छत्राणी इसे कहते हैं।'

इस नये अनुभव से अलीमर्दान एक क्षण के लिये जरा चंचल हुआ।

रानी ने अपनी सहज उत्तेजना की साधारण सीमा से आगे बढ़कर कहा—'मैं कल इस समय आपसे बात करने के लिये जिऊँ, या न जिऊँ परन्तु

वह काम करूँगी, जिसे स्मरण करके पुरुषों के भी रोमांच हो जाया करेगा।'

रानी का गला रुँध गया। रुँधे हुये स्वर में बोली--'मैंने कपटाचारियों के छल और अधर्म के कारण जो कुछ सहा है, उसे मेरे ईश्वर जानते हैं। मैंने कदाचारियों और विद्रोहियों के सामने कभी सिर नहीं नवाया और न कभी नवाऊँगी। अभिमान के साथ उत्पन्न हुई थी और अभिमान के साथ मरूँगी।' रानी अपने भरे हुये गले और आंदोलित हृदय को सम्भालने के लिये ज़रा ठहरीं। अलीमर्दान इस उद्गार का कोई उपयुक्त उत्तर सोचने लगा। रानी अपने को न सँभालकर बोलीं — 'मेरे स्वामी वैकुण्ठवास की तैयारी कर रहे थे; निर्दयी राक्षसों ने उनके सिरहाने बैठे-बैठे एक प्रपंच-जाल रचा और उसमें दलीपनगर के मुकुट को फांसकर उसे पद-दलित किया। यदि इन आतताइयों को मैंने दण्ड न दे पाया, तो मेरे जीवन और मरण दोनों व्यर्थ हुये।'

रामदयाल अपने कोने से हटकर रानी के पास आ गया। सांत्वना देने लगा— आप रोएँ नहीं। थोड़ी-सी घड़ियों के बाद ही घमासान होगा। उसमें जो कोई कुछ कर सकता है, करेगा।'

अलीमर्दान को कोई विशेष उत्तर याद न आया, तो भी बोला— 'आपके रोने से हम सबको बहुत रंज होगा। आप भरोसा रक्खें, कल लड़ाई का सब नक़शा बदल जायगा। आपकी बहादुरी हमारे सब सिपाहियों को शहीद बनाने का बल रखती है।'

रानी ने गला साफ़ करके कर्कश स्वर में कहा—'मेरे पास जो थोड़े-से सरदार बचे हैं, वे धावे में मेरे निकट रहेंगे। मैं लड़ूँगी, वे लड़ेंगे। मैं आगे रहकर लड़ूँगी, परन्तु सेना का संचालन आप अपने सरदार के हाथ में दीजिये। मैं जिस दिशा से डाकू देवीसिंह का व्यूह वेध करूँगी, उस ओर फिर शायद ही लौटूँ। मुझे सैन्य-संचालन का अवकाश न मिलेगा।'

अलीमर्दान तुरन्त बोला—'सरदार आपके नजदीक ही रहेंगे।

गोमती ने रामदयाल से ऐसे स्वर में पूछा, जिसे अलीमर्दान सुन सके—'नवाब साहब कहाँ रहेंगे ?'

अलीमर्दान इस प्रश्न के लिये तैयार था। तपाक से बोला—'समय-कुसमय के लिये जो एक बड़ा दल तैयार रहेगा, उसका संचालन मैं करूँगा। उसके सिवा मुझे बिराटा की भी थोड़ी-सी चिन्ता है। बिराटा का राजा हम लोगों से लड़ता रहा है। एक दो दिन से जरूर वह देवीसिंह की तरफ़ ध्यान दिये हुये है, पर उसकी ओर से हम लोगों को असावधान न रहना चाहिये। यदि उसने पीछे से हमारी सेना को घर दबाया, तो सब बना-बनाया बिगड़ जायगा।'

गोमती ने सीधा अलीमर्दान को संबोधन करके कहा—'आप बिराटा के राजा की सन्धि-प्रार्थना को क्यों स्वीकार नहीं कर लेते ? आप तो बहुत शक्तिशाली नवाब हैं। आपको भगवान् ने सब कुछ दिया है, तो भी जो कुछ थोड़ी-बहुत धन-सम्पत्ति बिराटा के राजा के पास बची है, वह आपको भेंट कर देगा। आप उसे क्षमा कर दें।'

अलीमर्दान ने रामदयाल से संकेत में पूछा—'यह कौन है ?'

रामदयाल ने बहुत धीरे से अलीमर्दान को उत्तर दिया—'यह वहां रही हैं। इस समय महारानी की आश्रित हैं, हम लोगों के पक्ष की हैं। मैंने एक बार कहा था न ?'

इसे रानी ने चाहे सुना हो, चाहे न सुना हो, गोमती ने सुन लिया। बोली—'मैं भी महारानी के पास रहकर लड़ूँगी। ठाकुर की बेटी हूं। अपना कर्तव्य पालन करूँगी। इससे अधिक जानने से आपको कोई लाभ न होगा।'

अलीमर्दान ने कहा—'यों तो मैं महारानी साहब के इशारे पर नाचने को तैयार हूं, परन्तु बिराटा के राजा ने जो गुस्ताखी की है, उसका दण्ड देना ज़रूरी जान पड़ता है। परन्तु यदि महारानी साहब का हुक्म होगा, तो मैं उसे भी माफ़ कर दूँगा।'

रानी बिना किसी उत्साह के बोली—'हमारा लक्ष्य दलीपनगर के बाग़ी हैं। देवीसिंह और उसके सहायक जनार्दन के टुकड़े उड़ाना हमारा कर्तव्य है। बिराटा को हम लोग इस समय छोड़ दें, तो बहुत अच्छा होगा। बिराटा के राजा की उस लड़की पर कोई वार न होना चाहिये। आगे जैसी नवाब साहब की मर्जी हो।'

अलीमर्दान ने कहा—'आपकी आज्ञा हो, तो मैं स्वयं थोड़े से आदमियों को अपने साथ बिराटा ले जाऊँ और वहां के ठिकानेदार को क़ायदे के साथ वहां का राजा बना आऊँ। मेरा उसके साथ कोई वैर नहीं है।'

'न।' रानी ने उत्तर दिया—'आप यदि उस ओर चले जायँगे, तो यहाँ गड़बड़ फैलने का डर है। आप यदि लड़ाई में आरम्भ से ही भाग न लें, तो अपनी कुमुद के साथ निकट ही बने रहें। आप अभी बिराटा न जायँ। रामदयाल को आप चाहें, तो अपने साथ रक्खें।'

'न।' रामदयाल ने तेजी के साथ कहा—'महारानी जहाँ होंगी, वहीं मैं भी रहूंगा। मैं भी लड़ना जानता हूं। महारानी के शत्रुओं को मैं भी पहचानता हूं।'

अलीमर्दान 'बहुत अच्छा' कहकर वहाँ से चल दिया। जाते-जाते कहता गया—'थोड़ी देर में धावा कर दिया जायगा। थोड़ा-सा आराम करके तैयार हो जाइये।'

सरदार अलीमर्दान के साथ आया था और साथ ही गया। डेरे पर पहुंचने पर बोला—'तो क्या हुजूर बिराटा पर हमला न करेंगे?'

'कौन कहता था?' अलीमर्दान ने रुखाई के साथ कहा—'आधी रात के बाद ही मैं एक दस्ता लेकर बिराटा की ओर जाता हूं। शायद बिना किसी जोखिम के बिराटा में दाखिल हो जाऊँगा, परन्तु मेरे यहां से कूच करने के पहले तुम्हारी तैयारी में किसी तरह की कसर न रहनी चाहिये। मैं अगर पद्मिनी को लेकर जल्द लौट पड़ा, तो तुम्हारी मदद के लिये आ मिलूँगा, अगर देर लग गई तो मेरी बाट मत देखना और न मेरी

चिन्ता करना । अब यों भी सारी लड़ाई की जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर रहती है । शायद ऐसा मौक़ा आजाय कि मुझे पद्मिनी को लेकर भांडेर चला जाना पड़े, तो मामूली शर्तों के साथ देवीसिंह के साथ सन्धि करके चले आना । दिल्ली से लौटकर फिर कभी देखेंगे, परन्तु बिराटा का मोर्चा हाथ से न जाने देना चाहिये । जब तक बिराटा से मेरे लौट पड़ने की खबर तुम्हें न लगे, तब तक लड़ाई जारी रखना ।'

[९९]

राजा देवीसिंह ने भी सन्ध्या होने के उपरान्त दूसरे दिन की समर-योजना के सब छोटे-बड़े अङ्गों पर विचार करने के बाद यह तय किया कि प्रातःकाल के लिये न ठहरकर आधी रात के बाद ही लड़ाई आरम्भ कर दी जानी चाहिये। लोचनसिंह सन्तुष्ट था।

देवीसिंह ने इस योजना में बिराटा को भी स्थान दिया। उसने अपना निश्चय जिन शब्दों में प्रकट किया था, उसका तात्पर्य यह था — बिराटा व्यर्थ ही हमारे कार्य की सरलता में बाधा डालता है। प्रातःकाल होने के पूर्व ही उस पर अधिकार कर ही लेना चाहिये। फिर दिन में रामनगर और बिराटा दोनों गढ़ों की तोपों के गोले अलीमर्दान की सेना पर फेंके जायँ। इधर लोचनसिंह और जनार्दन खुले में उसकी सेना के पैर उखाड़ दें।

दलीपनगर की सेना खुली लड़ाई की आशा की उमङ्ग में तीन दलों में विभक्त होकर सावधानी के साथ आधी रात के बाद आगे बढ़ी। एक दल उत्तर की ओर नदी के किनारे-किनारे बिराटा की ओर चला। इसका नायक देवीसिंह था। दूसरा दल जनार्दन के सेनापतित्व में नदी के भरकों और किनारों को देवीसिंह के दल की ओट बनाता हुआ उसी दिशा में बढ़ा। लोचनसिंह का दल पश्चिम और उत्तर की ओर से चक्कर काट कर अलीमर्दान की सेना को आगे से युद्ध में अटका लेने और पीछे से घेरकर दबा लाने की इच्छा से उमड़ा। बिराटा की गढ़ी से रामनगर पर उस रात कभी थोड़े और कभी बहुत अन्तर पर गोले चलते रहे, परन्तु देवीसिंह के पूर्व-निर्णय के अनुसार रामनगर से उन तोपों का जवाब नहीं दिया जा रहा था। रामनगर के तोपचियों को आदेश दिया जा चुका था कि जब एक बँधा हुआ संकेत उन्हें अपनी क्षेत्रवर्ती सेना से मिले, तब वे तोपों में बत्ती दें।

लोचनसिंह ने उस रात देवीसिंह के आदेश के अनुसार बहुत सावधानी के साथ कूच किया। उसने अपने सैनिकों से कहा था —'बिल्ली की तरह

दबे हुये चलो और समय आने पर की बिल्ली तरह ही झपाटा मारो।'

थोड़ी देर तक लोचनसिंह और उसके सैनिकों ने इस सतर्क-वृत्ति का पूरी तरह पालन किया, परन्तु पग-पग पर लोचनसिंह को उसका अधिक समय तक पालन कर पाना दुष्कर और दुस्सह जान पड़ने लगा। मार्ग बहुत बीहड़ और ऊंचा-नीचा था। सावधानी के साथ उस पर चलना सम्भव न था। किन्तु अनिवार्य था। परन्तु जहां मार्ग सुथरा और विस्तृत मैदान पर होकर गया था, वहां सावधानी का व्रत बनाये रखना स्थिति की व्यग्रता और लोचनसिंह की प्रकृति के विरुद्ध था। इसलिये लोचनसिंह अपने दल के आगे विरुद्ध उमंग से प्रेरित हुआ सपाटे के साथ बढ़ने लगा। निकट भविष्य में किसी तुरन्त होने वाले भयंकर विस्फोट की कल्पना से उन पके-पकाये सैनिकों का कलेजा धक-धक नहीं कर रहा था, परन्तु पैर के पास ही किसी छोटी-सी असाधारण आकस्मिक ध्वनि के होते ही सैनिक चौकन्ने हो जाते थे, कभी-कभी थर्रा भी जाते थे और आधे क्षण में उनका धैर्य फिर उनके साथ हो जाता था।

इस तरह से वे लोग क़रीब आध कोस बढ़े होंगे कि लोचनसिंह एकाएक रुक गया और ज़मीन से घुटनों और छाती के बल सट गया। उसके पीछे आने वाले सैनिक एकाएक खड़े हो गये। उनके चलते रहने से जो शब्द हो रहा था, वह मानो सिमटकर केन्द्रित हो गया और एक बड़ी गूंज-सी उस जंगल में उठकर फैल गई।

आकाश में चन्द्रमा न था। बड़े-बड़े और छोटे-छोटे तारे प्रभा में डूबते-उतराते-से मालूम पड़ते थे। छोटे तारे टिमटिमा रहे थे। तारिकायें अपनी रेखामयी आभा आकाश पर खींच रही थीं। पक्षी भर-भराकर वृक्षों से उड़-उड़ जाते थे। आकाश के तारों की टिमटिमाहट की तरह झींगुरों की झंकार अनवरत थी। लोचनसिंह ने अपने पास खड़े हुये सैनिक का पैर दबाया। लोचनसिंह के इस असाधारण ढङ्ग से उस सैनिक को तुरन्त यह धारणा हुई कि कोई बड़ा और विकट संकट सामने हैं। वह भी घुटन और छाती के बल पृथ्वी से सट गया। लोचनसिंह के पास अपना का ले जाकर धीरे से बोला—'दाऊजू, क्या बात है?'

'सामने और दायें-बायें से कोई आ रहा है। शायद अलीमर्दान की सेना बढ़ी चली आ रही है—बड़ी सावधानी के साथ।'

'तो क्या किया जाय ?'

ज़रा ठहरो। पीछे वालों को तुरन्त संकेत करो कि वे सब इस तरह पृथ्वी से सट जायें।'

उस सैनिक ने धीरे से यह संकेत अपने पीछे के सैनिकों में पहुंचाया। परन्तु जैसा कि बिलकुल स्वाभाविक था, इस संकेत के सब ओर पहुँचने में काफ़ी विलम्ब हो गया। जो लोग मार्ग की दुर्गमता के कारण आगे-पीछे हो गये थे, उन तक तो वह संकेत पहुँचा ही नहीं।

कुछ ही क्षण बाद लोचनसिंह को सामने आने वाला शब्द एकाएक बन्द होता हुआ जान पड़ा और उसके दाहनी ओर नदी की दिशा में बन्दूक़ की आवाज़ सुनाई पड़ी।

लोचनसिंह ने अपने पास वाले सैनिकों से धीरे से कहा—'अभी हिलना-डुलना मत।'

जिस दिशा में बन्दूक चली थी, उस दिशा में शोर हुआ। एक ओर से कालपी और दूसरी ओर से दलीपनगर की जय का शब्द परस्पर गुंथ गया। तब भी लोचनसिंह का हाथ बन्दूक या तलवार पर नहीं गया।

पास पड़े हुये सैनिक ने लोचनसिंह से पूछा—'दाऊजू. क्या आज्ञा है ?'

लोचनसिंह ने कड़ुवाहट के साथ उत्तर दिया—'चुप रहो। जब तक मैं कुछ न कहूं, तब तक बिलकुल चुप रहो।'

जिस दिशा में जय की गूंज उठी थी, उस दिशा में बन्दूक़ों की नाल से निकलने वाली लौ प्रतिक्षण बढ़ने लगी और वह नदी की ओर बढ़ने लगी।

लोचनसिंह ने धीरे से अपने पास के सैनिक से कहा—'जान पड़ता है, अलीमर्दान की सेना सब ओर से बढ़ती आ रही है। इस समय जनार्दन की टुकड़ी के साथ मुठभेड़ हो गई है। होने दो। बोलो मत। उसका करतब थोड़ी देर देख लिया जाय।'

पास के सैनिक ने कोई उत्तर नहीं दिया। परन्तु पीछे के सैनिकों में से कुछ चिल्ला उठे—'दाऊजू, क्या आज्ञा है ?'

इस प्रकार की आवाज़ उठते ही सामने से कुछ बन्दूकों ने आग उगली। लोचनसिंह के पीछे वाले सैनिकों ने उत्तर दिया, परन्तु आगे की क़तार जो पृथ्वी से सटी हुई थी, उसने कुछ नहीं किया। लोचनसिंह के उन साथियों की बन्दूकों की गोलियाँ वायु में फुफकार मारती हुई कहीं चल दीं, किसी के बाल को भी उन्होंने न छुआ होगा, परन्तु अलीमर्दान की सेना के उस दल की बाढ़ ने लोचनसिंह के कई सैनिकों को हताहत कर दिया। इसका पता लोचनसिंह को उनके कराहने से तुरन्त लग गया।

बहुत शीघ्र लोचनसिंह की दाहनी ओर लड़ाई ने गहरा रंग पकड़ा। उसकी टुकड़ी का एक भाग और जनार्दन की सेना का बड़ा खण्ड उसी केन्द्र पर सिमट पड़े। देवीसिंह नदी-किनारे पर अपने दल को लिये स्थिर हो गया।

लोचनसिंह के निकटवर्ती सैनिक सोचने लगे कि वह कहीं मारा तो नहीं गया, नहीं तो ऐसा किंकर्तव्य-विमूढ़ क्यों हो जाता ? अलीमर्दान की सेना के उस भाग ने, जो लोचनसिंह के सामने था, सोचा कि इस ओर क्षेत्र रीता है। वह बढ़ा। जब वह लोचनसिंह के बहुत पास आ गया, तब तारों के प्रकाश में लोचनसिंह को एक बढ़ता हुआ झुरमुट-सा जान पड़ा।

लोचनसिंह ने कड़ककर कहा—'दागो।'

पृथ्वी से सटे हुये उसके सैनिकों ने बन्दूकों की बाढ़ एक साथ दागी। पीछे के सैनिकों ने भी गोली चलाई। इस बाढ़ से कालपी की सेना का वह भाग बिछ-सा गया। थोड़ी देर में बन्दूकों को फिर भरकर लोचनसिंह अपने उस दल को झपटकर लेकर बढ़ा। कालपी की सेना के योद्धा भी इस मुठभेड़ के लिये सन्नद्ध थे। एक क्षण में ही बंदूकों ने आग और लोहा उगला। फिर धीरे-धीरे बन्दूकों की ध्वनि कम और तलवारों की

झनझनाहट अधिक बढ़ने लगीं। लोचनसिंह पल-पल पर अपने दल के एक भाग के साथ आगे बढ़ रहा था, परन्तु वह नदी से बराबर दूर होता चला जा रहा था। उसके दल का दूसरा भाग नदी की ओर कट-कर आगे-पीछे होता जाता था। उसी ओर से जनार्दन का दल खूब घमासान करने में लग पड़ा था। कालपी की सेना का भी अधिकांश भाग इसी ओर पिल पड़ा।

कुछ घड़ियों पीछे अलीमर्दान के सरदार को मालूम हुआ कि दलीप-नगर की एक सेना का भाग उसके पीछे घूमकर युद्ध करता हुआ बढ़ रहा है। वह धीरे-धीरे पीछे हटने लगा। परन्तु लोचनसिंह के बढ़ते हुये दबाव का विरोध करने के लिये उसे जाना पड़ा। युद्ध कभी थमकर और कभी बढ़-घटकर होने लगा। अंधेरे में मित्र-शत्रु की पहचान लगभग असंभव हो गई। सैनिक केवल एक धुन में मस्त थे—'जब तक बाँह में बल है, अपने पास वाले को तलवार के घाट उतारो।'

[१००]

मुसलमान नायक छोटी रानी, गोमती और रामदयाल को साथ-साथ जिस ओर और जिस प्रकार घुमाना चाहता था, वे नहीं घूम पाते थे। इसलिये उसकी प्रगति को बड़ी बाधा पहुंच रही थी। तो भी वह स्थिर-चित्त होने के कारण धैर्य और चतुरता के साथ सैन्य-संचालन कर रहा था। जिस स्थान पर लोचनसिंह के दल के साथ उसकी टुकड़ी की मुठभेड़ हो गई थी, वहाँ पर वह न था। वह जनार्दन के मुकाबले में था।

लड़ाई के आरंभ में जितना उत्साह गोमती के मन में था, उतना दो घड़ी पीछे न रहा। वह बच-बचकर युद्ध में भाग ले रही थी और रानी बढ़-बढ़कर। रामदयाल प्रायः गोमती के साथ रहता था। रानी को बार-बार इस बात का बोध होता था और बार-बार वह एक अनुदृष्टि क्रोध से भभक उठती थीं। परन्तु थोड़ी ही देर में उन्हें भी भान होने लगा कि हाथ उस तेजी के साथ काम नहीं करता, जैसा प्रारम्भ में कर रहा था। वह भी पीछे हटीं। मुसलमान नायक की एक चिन्ता कम हुई।

वह सँभलकर, डटकर लड़ना चाहता था। परन्तु अँधेरी रात में अपनी इच्छा के ठीक अनुकूल सारी सेना का संचालन करना उसके लिये क्या, किसी के लिये भी असम्भव था। इधर-उधर सारी सेना गुथ गई, कोई नियम या संयम नहीं रहा। केवल लोचनसिंह के साथ सैनिकों का एक खंड और देवीसिंह का दल इस पक्ष का और मुसलमान नायक के निकटवर्ती सैनिकों का भाग और विराटा की ओर अग्रसर होता हुआ अलीमर्दान का दल उस पक्ष का, ये लड़ाई में कोई बड़ा भाग न लेने के कारण कुछ व्यवस्थित थे। अलीमर्दान का दूसरा दल कुछ दूरी पर मुस्तैद खड़ा था। वह विलकुल सुव्यवस्थित और किसी अवसर की ताक में था। परन्तु सभी दल उमंग के साथ अपने-अपने कार्य में दत्त-चित्त हो जाने के वाद शीघ्र प्रातःकाल होने के लिये लालायित हो रहे थे।

रामनगर से बिराटा पर तोपें नहीं चल रहीं थीं। बिराटा से इसी कारण उत्तरोत्तर तोपों की बाढ़ बढ़ने लगी। कोई निशाना चूकता था और कोई लगता। रामनगर की अस्त-व्यस्त दीवारें और दृढ़ बुर्ज धीरे-धीरे भर-भराकर टूट रहे थे। गढ़वर्ती सैनिकों की चिंता पल-पल पर बढ़ती जा रही थी, परन्तु देवीसिंह का बँधा हुआ संकेत अभी तक नहीं मिला था।

देवीसिंह ठीक नदी-किनारे था। दोनों किनारों के भीतर तोपों और बन्दूकों की आवाज दुगुनी-चौगुनी होकर गर्जन कर रही थी। घायलों का चीत्कार धूम-धड़ाके से मथे हुये सन्नाटे को बीच-बीच में चीर-चीर-सा देता था।

बेतवा अपने अक्षुण्ण कलरव के साथ बहती चली जा रही थी। तारों का नृत्य बेतवा की जल-राशि पर अनवरत रूप से होता जा रहा था।

राजा ने अपने पास खड़े हुये एक सरदार से कहा—'यदि कुञ्जरसिंह थोड़े समय के लिये भी अपनी मूर्खता के साथ सन्धि कर ले, तो आज का युद्ध अलीमर्दान के लिये अन्तिम हो जाय।' एक क्षण बाद बोला—'आज रात शायद रामनगर से तोप चलाने का अवसर ही न आवे।'

सरदार ने कोई मन्तव्य प्रकट नहीं किया, परन्तु प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

'इसलिये कि।' देवीसिंह ने उत्तर दिया— रामनगर से तोप चलते ही बिराटा का नदी-कूल भी बिलकुल सतर्क हो जायगा और हम लोग आसानी से बिराटा की गढ़ी में प्रवेश न करने पायेंगे।'

इसके बाद देवीसिंह अपने दल को लेकर बहुत धीरे-धीरे और सावधानी के साथ बिराटा की ओर बढ़ा।

[१०१]

रात की इसी उथल-पुथल ने सचेत बिराटा को और भी सचेत कर दिया। बिराटा में थोड़े से सैनिक थे। साधारण बने रहने में ही उसकी रक्षा थी। उस रात के भयानक हल्ले असाधारण आक्रमण ने बिराटा के प्रत्येक शस्त्रधारी को किसी अनहोनी के लिये बिलकुल तैयार कर दिया। उस रात जब तक देवीसिंह की अलीमर्दान के दलों में टक्कर नहीं हुई थी, तब तक कुन्जरसिंह की तोपें केवल इस बात का प्रमाण देती रहीं कि उनके तोपची सोये नहीं हैं, परन्तु जब बन्दूकों की बाढ़ें उन दोनो दलों की भभकीं तब किसी सङ्कट के तुरन्त सिर पर आ पड़ने की आशंका ने कुँजरसिंह को बहुत सक्रिय कर दिया।

आक्रमणों के होने के कुछ घड़ी पीछे ही अलीमर्दान अपने दल के साथ बिराटा के नीचे, नदी के किनारे आ गया। उसके बिलकुल पास ही देवीसिंह का दल भी आकर ठिठक गया था। परन्तु दोनों इतनी सावधानी से चले थे कि एक ने दूसरे की गति को नहीं समझ पाया था। तो भी बिराटा के सतर्क योद्धा की दृष्टि से उन दोनों की गति-विधि न बच पाई। उसने तुरन्त अपने गढ़ में इसकी सूचना दी। अभी तक देवीसिंह और अलीमर्दान की सेनायें एक दूसरे के सम्मुख मोर्चा लिये हुये डट रही थीं, इसलिये भी बिराटा के थोड़े से मनुष्यों की कुशल-क्षेम बनीं रही, परन्तु उस प्रहरी को मालूम हो गया कि उनमें से एक का, कदाचित दोनों का, लक्ष्य बिराटा है। यही समाचार तुरन्त बिराटा के भीतर पहुंचाया गया।

बिराटा के सैनिक बारी-बारी से थोड़ी देर के लिये शस्त्र लगाये हुये ही विश्राम करते आये थे। उन्हें बहुत दिन से यथेष्ट भोजन न मिला था। फटे कपड़ों से अपना शरीर ढाँके थे। चोटों की मरहम-पट्टी अपने हाथ से ही कर लेते थे—वह भी अपने फटे कपड़ों के चिथड़े फाड़ फाड़कर। जो कुछ उनके पास था, वह तो और बारूद पर न्योछावर कर

चुके थे और कह रहे थे। जो कुछ हथियार उनके पास थे, उन्हें अच्छी हालत में रखने की चेष्टा करते थे, परन्तु उनकी भी बहुतायत न थी।

हथियार उनके साफ़-सुथरे थे, परन्तु शरीर धूल और पसीने में ऐसे सने हुये कि उनकी त्वचा के प्राकृतिक रङ्ग का यकायक पता लगाना कठिन हो गया था। आंखें धंस गई थीं गाल की हड्डियाँ तीव्रता के साथ ऊपर उठ आई थीं। बाल बढ़ गये थे।

हृदय की ज्वाला आंखों में आ बैठी थी। परन्तु जङ्गली' पशुओं की तरह दिखाई देने वाले उन लोगों की आँखों में कभी-कभी जो मर मिटने की दृढ़ता छलक उठती थी, वह निराशा के घास-घूस के ढेर में उज्ज्वल अंगार की तरह थी। टूटी-फूटी गढ़ी पर अस्त-व्यस्त शरीर रखवालों के जीवन में आभा को ग्रसने के लिये राहु-केतु की तरह दो तरफ़ से दो अलग-अलग उद्देश्यों से प्रेरत होकर दलीपनगर और कालपी के सुसज्जित योद्धा पिल पड़ने को ही थे। दो वक्र रेखाओं की तरह वे दोनों एक ही केन्द्र पर सिमट पड़ने के लिये खिंचने को ही थे।

प्रहरी के समाचार को पाते ही, जैसे प्रचंड झंझावत से पल्लव झकझोर खा जाते हैं, वैसे ही सबदलसिंह और उनकी सेना जिस फटियल लड़ाकुओं की भीड़ की उपाधि से ही सम्बोधित किया जा सकता है, विश्राम और थकावट से उचटकर सजग हो गई और एक मार्के के ठोर पर इकट्ठी हो गई। सबदलसिंह थोड़ा ही सो पाया था। धँसी हुई आंखों को पोंछता-पोंछता आ गया। कुन्जरसिंह भी अपने तोपचियों को कुछ सलाह देकर उसी समय आया। एक बड़े पीपल के पेड़ के नीचे वे सब इकट्ठे हो गये। कुन्जरसिंह ने कहा—'आज हम लोगों की विजय-रात्रि है।'

'कदाचित् अन्तिम भी।' सबदलसिंह बोला।

'क्यों ?' कुंजरसिंह ने ज़रा आश्चर्य के साथ कहा—'मैं यदि ग़लती नहीं कर रहा हूं, तो रामनगर की गढ़ी मेरी तोपों ने ध्वस्त कर दी है। अलीमर्दान और देवीसिंह की सेनायें सबेरा होते-होते आपस में लड़-कटकर समाप्त हुई जाती हैं। तब कल विजय अवश्यम्भावी है।

सबदलसिंह ने क्षीण मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया—'हमें जो समाचार अभी मिला है, वह किसी दूसरे भविष्य की ही सूचना देता है। अलीमर्दान की सेना का एक बड़ा भाग किनारे पर आ पहुंचा है। दूसरी ओर से देवीसिंह का एक दल भी निकट आ गया है। रामनगर पर गोले चलाने में कोई बुद्धिमानी नहीं जान पड़ती।'

ज़रा उद्धत स्वर में कुँजरसिंह ने कहा—'तब किस बात में बुद्धिमानी है?'

'मरने में।' तीक्ष्णता के साथ सबदलसिंह बोला—'मरने में। देवीसिंह से कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सकती। उस ओर से हम बिलकुल निराश हो चुके हैं। एक-एक पल हमारे लिये बहुमूल्य है। मालूम नहीं, कब अलीमर्दान की सेना यहाँ घुस पड़े और हमारी मर्यादा पर आ बने।'

कुञ्जरसिंह ने कुछ सोचकर कहा— तब मैं मैदान की ओर तोपों का मुँह फेरता हूं। उन्हें छठी का दूध याद आवेगा।'

'और एक ही क्षण पश्चात्।' सबदलसिंह ज़रा रोष-पूर्ण स्वर में बोला—'उन सबको अपनी प्रबल और हमारी हीन स्थिति का भी स्मरण हो आवेगा।' कुँवर साहब, यह लड़ाई कल से और अधिक आगे नहीं जा सकेगी।'

इस मन्तव्य पर कुञ्जरसिंह को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। और लोगों में से भी कोई कुछ न बोला। सबदलसिंह ने धीरे, परन्तु दृढ़ता के साथ कहा—'हम लोगों ने सन्धि के धर्म-सम्मत सब उपाय कर छोड़े। अलीमर्दान हमारी मर्यादा चाहता है, वह हम उसे नहीं देंगे। बाहर से अब किसी सहायता की कोई आशा नहीं है, इसलिये मेरी समझ में केवल एक उपाय आता है।'

उपस्थित लोगों की दृष्टियाँ तारों के क्षीण प्रकाश में उस उपाय के सुनने के लिये सबदलसिंह की ओर घिर गईं।

सबदलसिंह ने उसी दृढ़ स्वर में कहा—'हम सब गढ़ी से निकलकर शत्रुओं से लड़ते-लड़ते मरें। किसी को इनकार हो, तो कह डालने में संकोच न करे।'

कोई न बोला।

सबदलसिंह कहता गया—'परन्तु हम अपने पीछे अपने बाल-बच्चों को अनाथ नहीं छोड़ सकते। अपनी बहू-बेटियों को मुसलमानों के घरों में भेजने से जो कालिख हमारे नाम पर लगेगी, उसे सहस्त्र गङ्गा नदियाँ नहीं धो सकेंगी। इसलिये ग्वालियर, चित्तौर और चँदेरी में जो कुछ हुआ था, वही विराटा में भी हो।'

'वह क्या ?' जरा व्याकुलता के साथ कुंजरसिंह ने प्रश्न किया।

'जौहर।' धीरज के साथ सबदलसिंह ने उत्तर दिया—'हमारी स्त्रियाँ और बच्चे हम सबको मरा हुआ समझकर चेतन चिता पर चढ़ जायँगे और हम सब थोड़े समय बाद ही अपनी तलवारों के विमान पर बैठकर उनसे स्वर्ग में जा मिलेंगे।'

कुँजरसिंह को यह काव्यात्मक कल्पना कुछ कम पसन्द आई। बोला—'मुझे यह बहुत अनुचित जान पड़ता है। जिन बालकों को गोद में खिलाया है, जिन स्त्रियों के कोमल कंठों के आशीर्वाद से बाँहों ने बल पाया है, उन्हें अपनी आँखों जीते-जी खाक होते हुये कभी नहीं देखा जा सकता। जब लोग सुनेंगे कि हमने अपने हाथों से निर्दोष बालकों को जला मारा, तब क्या कहेंगे ?'

सबदलसिंह ने कहा—'क्या कहेंगे ? कहें। हमारे मर जाने के पीछे लोग हमारे लिये क्या कहते हैं, उसे हम नहीं सुनेंगे और फिर ऐसी अवस्था में हमारे बड़ों ने भी तो जगह-जगह यही किया है।'

'यहाँ कदापि न हो।' कुञ्जरसिंह बोला—'इसमें संदेह नहीं कि जैसे सो जाने के बाद कुछ पता नहीं रहता कि क्या हो रहा है, वैसे ही मर जाने के बाद की अवस्था है। इसलिये जीते जी ऐसा काम क्यों किया जाय कि मरने के समय जिसके लिये पछताना हो और आसानी के साथ मरने में बाधा पहुंचे ?'

दर्शन शास्त्र की इस संगत या असंगत बात के समझने की चेष्टा न करके सबदलसिंह ने क्षीण स्वर में कहा—'हम लोग कई दिन से यही

बात सोच रहे हैं। मरने से यहाँ कोई नहीं डरता। परन्तु हमारे पीछे जो विधवायें और अनाथ होंगे, उनकी कल्पना कलेजे को तड़पा देती है।'

'क्या पहले कभी विधवायें या अनाथ नहीं हुये हैं ?' अपने मन को आश्वासन देने के लिये अधिक और अपने श्रोताओं को अपेक्षाकृत कम। कुँजरसिंह ने कहा—'यदि हमारा यही सिद्धान्त है, तो हमें कभी न मरने का ही उपाय सोचना चाहिये और जब हमारे सामने हमारे सब प्रि॰जन समाप्त हो जायें, तब हमें मरना चाहिये। जब रण-क्षेत्र में सैनिक जाता है, तब क्या वह यह सब सोच-विचार लेकर जाता है ? चलो, हम सब मरने के लिये बढ़ें। एक-एक प्राण का मूल्य सौ-सौ प्राण लें और अपने बाल-बच्चों को परमात्मा के भरोसे छोड़ें। उनके लिये हमें इसलिये भी नहीं डरना चाहिये कि हमारे विरोधियों में अनेक हिन्दू भी हैं।'

सबदलसिंह के साथियों ने इस बात को मान लिया। वे सब मरने से नहीं हिचकते थे, परन्तु अपने नन्हे-नन्हे बच्चों को अपने हाथ से नष्ट नहीं कर सकते थे।

'परन्तु।' उनमें से एक असाधारण उत्साह के साथ बोला—'केशरियावाना हम अवश्य पहनेंगे। मौत के साथ हमारा ब्याह होना है, हम सादा कपड़ा पहनकर दूल्हा नहीं बनेंगे।'

घोर विपत्ति में भी मनुष्य का साथ हँसी नहीं छोड़ती। वे सब इस बात पर थोड़े हँसे और सभी ने इस बेतुकी-सी बात को पसन्द किया।

सबदलसिंह बोला—'परन्तु केशर शायद ही बिराटा भर में किसी के घर मिले।'

उन सैनिकों में से जिसने दूल्हा बनने का प्रस्ताव किया था, कहा—'मैं अभी ढूँढ़कर लाता हूं। केशर न मिलेगी, तो हल्दी तो मिलेगी। मौत के हाथ भी तो उसी से पीले होंगे।' और तुरन्त वहाँ से अदृश्य हो गया।

सबदलसिंह ने कुंजर से कहा—'अब अपनी तोपों से और अधिक आग उगलाओ।'

कुँजरसिंह बोला—'परन्तु जान पड़ता है, अन्धेरी रात के युद्ध में दोनों दल गुँथ गये होंगे।'

'तब जहाँ इच्छा हो, गोले बरसाओ।' सबदलसिंह ने कहा—'परन्तु शत्रु के हाथ गोला-बारूद न पड़ने पावे।'

कुञ्जरसिंह अपने तोपचियों के पास गया। तोपों के मुँह मुरकाये। बहुत देर लग गई। लक्ष्य बाँधने में कम समय नहीं लगा। जब इस लक्ष्य पर गोला-बारी आरम्भ करा दी, तब सबदलसिंह के पास लौटा।

इस बीच में सबदलसिंह के उन सब सैनिकों ने अपने फटे कपड़े हल्दी से रङ्ग लिये थे। थोड़ी-सी केशर भी एक जगह मिल गई थी। सबदलसिंह ने उसका टीका सबके भाल पर लगाया। कुन्जरसिंह ने भी अपने वस्त्र हल्दी में रंगे। सबदलसिंह ने केशर का टीका उसके भाल पर लगाते हुये कहा—'आज दांगियों की लाज ईश्वर और तुम्हारी तोपों के हाथ है।'

'राजा!' कुन्जर ने कहा—'निराश नहीं होना चाहिये। क्या ठीक है, शायद ईश्वर कोई ऐसा ढङ्ग निकाल दे कि बात रह जाय और सब बच जायँ।'

'और कुछ रहने की जरूरत नहीं है, रहे या न रहे।' एक अधेड़ सैनिक बोला—'हम लोग केसरिया बाना पहन चुके हैं। यह बिना ब्याह के नहीं उतारा जा सकता। सगाई पक्की करके अब विवाह से भागना कैसा? बचने-बचाने के सब विचार ध्यान से हटाओ। यदि यही बात मन में थी, तो भाल पर केशर का तिलक किस बिरते पर लगाया? अब ब्रह्मा के सिवा उसे कौन पोंछ सकता है? इतने दिनों धीरे-धीरे बहुत लड़े, अब जी खोलकर हाथ करेंगे और स्वर्ग में विश्राम लेंगे। सच मानिये देह भार-सी जान पड़ने लगी है।'

सबदलसिंह चिल्लाकर बोला—'मूठ पर हाथ रखकर राम-दुहाई करो कि सब के सब मरने का प्रयत्न करेंगे।'

सबने तलवार की मूठों पर हाथ रखकर जोर से कहा—'राम-दुहाई, राम-दुहाई।'

ये शब्द कई बार और देर तक दुहराये गये। उत्तरोत्तर उस ध्वनि में प्रचण्डता आती गई। वे लोग इधर-उधर घूम-घूमकर दुहाई देने लगे। इन लोगों के बढ़ते हुये शोर को अलीमर्दान ने भी सुना। उसने सोचा, खेल बिगड़ गया, अब चुपचाप काम नहीं बन सकता। यही विचार उसके सरदारों और सैनिकों के भीतर भी उठा। किसी एक ही भाव से प्रेरित होकर वे लोग पहले थोड़े से और कुछ पल उपरान्त ही बहुत से गला खोलकर बोले—अल्ला हो अकबर।

'राम दुहाई' की पुकार इस प्रहर और प्रबल स्वर की गूँज में पतली और फीकी-सी पड़ गई। एक बार विराटा के सिपाहियों का कलेजा धसक-सा गया। परन्तु 'अल्लाहो अकबर' की प्रबल गूँज के ऊपर कुंजर की तोपों की प्रवलता धायँ-धायँ हो रही थी, इसलिये सबदलसिंह के सैनिकों के हृदय में मरने-मारने की धुन ने, एक निराश-जनित भयंकर नवीन अनुभव शीघ्र ही प्राप्त करने की कामना ने पुनः साहस का संचार कर दिया। उन्हें आशा हो चली कि लड़ाई की लम्बी घसीटी हुई थकावट से निस्तार पाने में विलम्ब नहीं है।

देवीसिंह ने भी 'राम-दुहाई' और 'अल्लाहो अकबर' के जयकार सुने और उसे भी अपनी योजना को बदलना पड़ा। उसने सोचा—'अलीमर्दान बिराटा पर आक्रमण करना ही चाहता है। अब किसी उपयुक्त अवसर की बाट जोहना बिलकुल व्यर्थ है। बिराटा पर जिसका अधिकार पहले होगा, वही इस युद्ध को जीतने की आशा करे। इन मूर्खों की तोपें बिना किसी भेद के गोले बरसा रही हैं। यदि शीघ्र हमारे हाथ में आ गई, तो हम रामनगर और विराटा दोनों स्थानों से अलीमर्दान की सेना को कुचल सकेंगे।' वह अपनी सेना लेकर ज़रा और आगे बढ़ा, सवेरा होने में दो-तीन घंटे की देर थी। वह थोड़ा-सा और ठहरना चाहता था, कम से कम उस समय तक, जब तक अपने दल को खुलकर लड़ने योग्य परिस्थिति में प्रस्तुत न देख ले।

[१०२]

जैसे जंगल के कुपित पशु विना किसी नियम-संयम के आगे-पीछे, नीचे–ऊँचे कहीं भी लड़ जाते हैं, उसी तरह रात के उस पहर में वह युद्ध होता रहा। बिराटा की तोपें कभी अपने गोले दलीप नगर के सैनिकों पर कभी कालपी के सैनिकों और कभी वृक्षों, पत्थरों पर फेंकती रहीं।

पूर्व दिशा में क्षितिज से नभ की ओर एक रेखा खिची। उसकी आभा स्पष्ट न थी, परन्तु गगन की नीलिमा और तारिकाओं को प्रभा के ऊपर उसका तिलक सा लग रहा था। वह जिस आगमन की सूचना दे रही थी, कौन जानता था कि उसमें क्या है।

इस समय वड़ी देर बाद छोटी रानी और गोमती का एक भरके में मिलाप हो गया। दोनों ने एक दूसरे के लिये तलवारें तानी और दोनों ने एक दूसरे के पास पहुँचकर मोड़ लीं।

'महारानी !' गोमती ने कहा।

'अरे ! मैं समझी थी कोई और है।' छोटी रानी ने भी आश्चर्य के साथ कहा।

गोमती वोली—'अच्छा हुआ, आप मिल गईं। मुझे कुछ कहना है।'

'जल्दी कहो। समय नहीं है।' छोटी रानी ने कहा।

'मैं रामदयाल के साथ विवाह न करूँगी विश्वास रखिये।'

'इन बातों की चर्चा का यह समय नहीं है। तुम चाहे उसके साथ विवाह करना, चाहे उसका गला काट डालना, मुझे दोनों बातों में से एक से भी कोई मतलब नहीं।'

'मैं उसका गला भी न काटूँगी। जितना आश्रय या स्नेह मुझे इन दिनों संसार में रामदयाल से मिला है, उतना कुमुद को छोड़कर मैंने किसी से नहीं पाया है।'

तुम जिस जगह रामदयाल हो, वहीं जाओ, जिस जगह देवीसिंह या जनार्दन होंगे, मैं वहां जाऊँगी या जहाँ मेरी मौत होगी, वहाँ। जाओ, हटो।'

'न। मैं आपके साथ रहूँगी। मैं इस तरह नहीं मरना चाहती। मैं दलीपनगर के राजा को भी नहीं मारना चाहती, परन्तु उस नृशंस, निष्ठुर से एक बात कहकर अपनी छाती में पिस्तौल मारना चाहती हूं। पिस्तौल मेरे पास है। उसे केवल इसी प्रयोजन से अभी तक सुरक्षित रक्खा है।'

'वह मुझे दे दो। मैं उसका ज्यादा अच्छा प्रयोग करूँगी।'

'न। मेरी एक बात सुनिये। आप और सब विचार एक ओर रखकर बिराटा की कुमारी की रक्षा का कुछ उपाय करिये। अलीमर्दान उसे जबरदस्ती अपनी दासी बनाना चाहता है। वह आपकी बात मानता है। पहले ही यदि आप उसे निवारण कर देतीं, तो वह आपकी मान जाता।'

'पागल।' रानी ने कड़ककर कहा—'इन छोटी-छोटी सी बातों के सोचने का समय मुझे नही है। दे अपनी पिस्तौल मुझे और हो जा मेरे साथ। तू रामदयाल की दासी बनना चाहती है, यह मुझे मालूम हो गया है। मैं बाधा नहीं डालूंगी, भरोसा रख, परन्तु पिस्तौल इधर दे और चल मेरे साथ; यहां इस तरह खड़े-खड़े हम दोनों मार डाली जायेंगी। चल नदी की ओर, जहां से प्रातः-नक्षत्र का उदय होता हुआ जान पड़ता है। वहीं देवीसिंह इत्यादि कोई-न-कोई मिल जायेंगे।'

गोमती ने फिर इनकार किया और कुछ कहने को थी कि रानी गोमती की ओर झपटीं। गोमती उनका उद्देश्य समझकर हटी। रानी ने वार के लिये तलवार सँभाली। गोमती ने भागना आरंभ किया और रानी ने गाली देकर उसका पीछा किया। जिस ओर जनार्दन की टुकड़ी और कालपी का एक खण्ड परस्पर कांटों की तरह उलझ रहे थे, उसी

ओर ये दोनों गईं। तलवारों के उस झंझावात के पास पहुँचकर गोमती उसमें प्रवेश न करने की इच्छा से फिर मुड़ी। रानी ने उसका फिर पीछा किया।

उधर से एक गोला इन दोनों के बीच में पड़ कर आगे को सन्ना गया। जहां गिरा था, वहां उसने इतनी धूल उड़ाई कि दोनों की आँखें भर गईं। दोनों ही एक दूसरे से ज़रा हटकर आंखें मींचने लगीं।

[१०३]

उसी रात की घूमधाम ने नरपति और कुमुद को भी सजग किया। मन्दिर के पास ही राम 'दुहाई' की ध्वनियों ने नरपति को कारण का पता लगा लाने के लिये विवश किया। कारण की खोज कर लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई। थोड़ी ही देर में वह लौटकर आ गया। भरे हुये स्वर में उसने कुमुद से कहा—'जोहर हो रहा है।'

'जोहर ?' कुमुद ने अकचकाकर नरपति से पूछा—'क्या इसके लिये सब लोग तैयार हो गये हैं ? हम लोगों से किसी ने नहीं पूछा ?'

'मैंने भी यह प्रश्न राजा से किया था।' नरपति ने उत्तर दिया—'और बड़ी रुखाई के साथ बोले—तुम्हें मरना हो, तो तुम भी आ जाओ।' तुम्हारे विषय में उनकी सम्मति मांगी, तो कहा—'जो मन में आवे, सो करें।' तुम्हारी सम्मति क्या है ? इसी के लिये मैं व्याकुल हो रहा हूं। सब दांगी केशरिया बाना पहने उछलते-कूदते फिर रहे हैं।'

कुमुद ने गला साफ किया। दो पल चुप रही। फिर अर्द्ध-कंपित स्वर में बोली—'मैं तो कभी की मरने के लिये तैयार हूं। यदि इस युद्ध का कारण पहले ही मिट जाता, तो आज बिराटा के इतने शूर-सामन्तों का व्यर्थ बलिदान न होता। मैं न-जाने क्यों जीवित रही ? किसके लिये ?' फिर तुरन्त चुप हो गई। एक क्षण पश्चात् फिर कहा—'आप तैरना जानते हैं। तैरकर उस पार चले जाइये।'

'उस पार तो जाऊंगा।' नरपति ने उत्तेजित होकर कहा—'परन्तु तैरकर नहीं। पानी में प्राण देना मुझे कठिन जान पड़ता है। अथाह जल-राशि है। उसमें बड़े-बड़े भयानक मगरमच्छ हैं। जगह-जगह बड़ी-बड़ी भँवरें पड़ती हैं और बहुत चौड़ा पाट है। मैं तो तलवार की धार पर मरना अधिक श्रेयस्कर समझता हूं। मैं मूर्ख भले ही हूं, परन्तु इतना मूर्ख नहीं कि तुम्हें छोड़कर भाग जाऊं। तुम उस पार चलो, तो तुम्हें लेकर चल सकता हूं। देवी का स्मरण करो। वह बेड़ा पार लगावेंगी। उठो, चलो। मैं तुम्हें अभी सुरक्षित स्थान में पहुंचाऊंगा।'

स्थिर स्वर में कुमुद बोली—'यह असम्भव है। सब लोग यहीं हैं, मैं भी यहीं रहूंगी पार्थ, सारथी और तोपों के चलानेवाले जब यहां हैं, तो मेरा बाल बांका नहीं हो सकता और जब कुछ भी न रहेगा, तो मां बेतवा तो सदा साथ हैं। आप अपनी रक्षा की चिन्ता अवश्य करें। मैंने जिस गोद में जन्म लिया है, उसे नष्ट होता हुआ नहीं देखना चाहती। आप जायें। अकेले आपके यहां रहने से कोई सुविधा नहीं बढ़ेगी। देवी की आज्ञा है, दुर्गा का आदेश है, आप जायें। आपके यहां ठहरने से अनिष्ट हो सकता है। आप जायें। अभी चले जायें।

'मैं कदापि न जाऊँगा।' नरपति ने हँसकर कहा—'मैं भी दाँगी हूं। मैं भी अपने कपड़े हल्दी में रँगता हूँ। हम सब दाँगियों को अपना अन्तिम आशीर्वाद दो। हम थोड़े हैं और दरिद्र हैं। तुम एक अनेक हो। शक्ति हो शक्तिशालिनी हो। हमें वरदान दो, जिसमें पुरुष की तरह मरें।' फिर आँखें फाड़कर प्रखर स्वर में ऊपर की ओर देखकर बोला—दुर्गे देवी! हम थोड़े से दांगियों ने अपने अन्तिम रक्त-कण से आपके देवालय की रखवाली की है। हमारे हृदय को अब इतना बल दो कि अन्त समय हमारे भीतर किसी तरह की हिचक न आवे और हम हंसते-हंसते तुम्हारे झूले की डोर पकड़कर पार हो जायें। मां, मां आशीर्वाद दो।' 'दो, दो' की अन्तिम गूंज उस खोह में कई बार गूंजी। नरपति का शरीर थिरकने लगा। वह प्रमत्त होकर गाने लगा और ताली बजाने लगा—

"मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।
ऊँची-नीची घटिया डगर पहार
जहाँ बीरा लँगुरा लगाई फुलवार
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।

छोटी-सी रे मालिन लम्बे ऊके केस,
फुलवा बीने पुरुष के बेस।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।

बीन-बीन फुलवा, लगाई बड़ी रास,
उड़ गये फुलवा, रह गई बास।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-वन के।"

नरपति उठ खड़ा हुआ। गीत की गूँजती हुई तान में वह अपनी खोह के बाहर हो गया। शायद हल्दी के रङ्ग में अपने फटे हुये कपड़े रंगने के लिये। कुमुद ने सिर नवा लिया। हाथ जोड़कर अपने कोमल कण्ठ से गाने लगी—

"मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-वन के।
बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास,
उड़ गये फुलवा रह गई बास।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-वन के।"

उस खोह में, उस रात्रि में, उस घूमधाम में, उस प्रकार चीत्कार में, उस धांय-धांय, सांय-सांय में उस कोमल कण्ठ की वह स्वर्गीय तान समा गई—

"उड़ गये फुलवा, रह गई बास।"

[१०४]

प्रभात-नक्षत्र क्षितिज के ऊपर उठ आया। दमक रहा था और मुस्करा-सा रहा था। वनराशि और नीचे की पर्वत-श्रेणी पर उसका मन्द मृदुल प्रकाश झर-सा रहा था।

देवीसिंह ने देखा प्रातःकाल होने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। उसने रामनगर की ओर वह बँधा हुआ संकेत किया, जिसे पाकर उस गढ़ी की तोपों को दिराटा पर गोले बरसाने थे। उस संकेत के पाने के आधी घड़ी बाद बिराटा पर गोले आने लगे।

तब देवीसिंह ने सोचा, यह अच्छा नहीं किया। यदि हमारी तोपों ने इन पागल दांगियों को पीस डाला, तो अलीमर्दान का विरोध करने के लिये केवल हम हैं। अब किसी तरह यहां से अलीमर्दान को हटाना चाहिये। दिन निकलने के पहले यदि हम विराटा पहुँच गये, तो कदाचित् हमारी ही तोपों से हमारा ही चकनाचूर हो जाय, इसलिये सूर्योदय तक केवल अलीमर्दान को खदेड़ने का उपाय करना ही ठीक जान पड़ता है।

देवीसिंह ने अपने दल को आक्रमण करने का आदेश दिया। 'अल्लाहो अकबर' के साथ 'दलीपनगर की जय, महाराज देवीसिंह की जय' पुकारें सम्मिलित हो गईं। अलीमर्दान को अनजानी दिशा के आकस्मिक आक्रमण के धक्के को झेलने में विचलित हो जाना पड़ा, परन्तु उसके सैनिक दलीपनगर के सैनिकों की तरह ही युद्ध के लिये तैयार खड़े थे। मुठभेड़ के प्रथम धक्के से पहले ज़रा पीछे हटकर फिर आगे बढ़े। आज अलीमर्दान बेतरह सचेष्ट था। देवीसिंह भी कोई कसर नहीं लगा रहा था। दोनों ओर के सैनिक भी हाथ और हथियार दोनों पर प्राणों की होड़ लगा रहे थे। बराबरी का युद्ध हो रहा था। दोनों संयत तेजस्विता के साथ लड़ रहे थे। ऐसा भासित होता था कि उस युद्ध का भाग्य-निर्णय एक बाल से टँगा हुआ है।

प्रात:काल का प्रकाश होनें तक देवीसिंह ने जमकर लड़ना ही ज्यादा अच्छा समझा। तितर-बितर होने में सारी योजना भ्रष्ट हो जाने का भय था। यही बात अलीमर्दान ने भी सोची।

निदान, पूर्व दिशा में लाली दौड़ी। अन्धकार एक क्षण के लिये सघन और एक क्षण के लिये छिन्न-भिन्न सा होता दिखलाई दिया।

उत्सुकता के साथ देवीसिंह ने जनार्दन शर्मा और लोचनसिंह के दलों को आंख से टटोला। जनार्दन की टुकड़ी तितर-बितर हो गई थी। कालपी के दल का एक भाग रामनगर की तलहटी में पहुंच गया था, दूसरा देवीसिंह कीं बगल में ही जनार्दन के एक भाग से उलझा हुआ था और जनार्दन थोड़े से सैनिकों के साथ एक कालपी की दूसरी टुकड़ी से घिरा हुआ था। इसमें छोटी रानी भी भाग ले रही थीं, लोचनसिंह का एक दस्ता कालपी के एक टुकड़े को अलीमर्दान की छावनी के पीछे निकाल चुका था। लोचनसिंह कालपी वाले दस्ते पर एक ओर और अलीमर्दान के तैयार योद्धाओं पर दूसरी ओर प्रहार कर रहा था।

लोचनसिंह को अपने निकट देखकर देवीसिंह ने चिल्लाकर कहा—'शाबाश चामुण्डराय, बढ़े चले जाओ।' इस वाक्य को लोचनसिंह या उसके किसी सैनिक ने नहीं सुन पाया, परन्तु देवीसिंह के अनेक सैनिकों के मुँह से यह वाक्य एक साथ निकला।

लोचनसिंह की टुकड़ी ने भी उत्तर दिया—'आये, अभी आये।'

जनार्दन देवीसिंह के और भी पास था। देवीसिंह ने चिल्लाकर कहा—'जनार्दन, घबराना नहीं। लोचनसिंह और हमारे बीच में शत्रु अभी दबोचा जाता है।' देवीसिंह इतने जोर से चिल्लाया था कि उसका गला भर्रा गया और उसे खाँसी आ गई। खांसी ने उसके सिर को जरा नीचा कर दिया और तिरछा भी, इसलिये एक स्थान से आई हुई एक अचूक गोली उसके कान को लेती हुई चली गई, परन्तु प्राण बच गया।

चिन्ता के साथ अलीमर्दान ने देखा। भयानक उत्तेजना के साथ उसकी सेना ने जनार्दन के खंड पर वार करने शुरू किये। जनार्दन के

लिये पीछे हटने को न स्थान था, न अवसर। इसलिये वह देवीसिंह की ओर ढलने लगा। देवीसिंह के सैनिकों की मार के कारण कालपी के सैनिकों ने जनार्दन को स्थान दे दिया और वह अपने सैनिकों सहित देवीसिंह की टुकड़ी के साथ आ मिला।

'महाराज देवीसिंह की जय!' इस ओर से अतुल ध्वनि हुई।

'महाराज देवीसिंह की जय?' लोचनसिंह के दल से प्रचंड शब्द गूँज उठे।

रामनगर के गढ़ से बिराटा की गढ़ी पर निशाना बांधकर धाँय-धांय गोले बरसने लगे और उसकी दीवारें एक-एक करके टूटने लगीं। एक गोला मन्दिर पर गिरा। उसका एक भाग खंडित हुआ। दूसरा गिरा, दूसरा भाग खंडित हुआ। तीसरा गिरा, वह धुस्स होकर रह गया। इतनी धूल उड़ी की चारों ओर छा गई। पत्थरों और ईंटों के इतने टुकड़े टूटकर बेतवा की धार में गिरे कि पानी छर्र-छर्र हो गया।

रामनगर की तोपों के मुँह बन्द करने का कोई उपाय देवीसिंह के हाथ में न था। पहले रामनगर फिर विराटा की ओर चिन्तित दृष्टि से देवीसिंह ने देखा। आंखों में आँसू आ गये। वे कान की जड़ से बहने वाले खून में ढलकर जा मिले।

आह भरकर उसने कहा—'मेरे हाथ से मन्दिर टूटा। हे भगवान्, किसीतरह इस युद्ध को बन्द करो—चाहे मेरा प्राण लेकर ही।'

परन्तु न तो रामनगर की तोपों ने गोले बरसाने बन्द किये और न देवीसिंह का प्राण ही किसी ने उस समय ले पाया।

बिराटा की टूटी हुई दीवारों से फटे चिथड़े पहने हुये सबदलसिंह के सैनिक दिखलाई पड़ने लगे। उनके चिथड़े पीले रंगे हुये थे। सिर के फटे हुये साफों के चिथड़े लहरा रहे थे, मानो विजय-पताकायें हों। रामनगर की तोपों से वे नहीं डर रहे थे। उनकी तोपें कभी अलीमर्दान और कभी जनार्दन की टुकड़ियों पर आग उगल रही थीं। परन्तु एक गोले के बाद दूसरे के चलने में बराबर अन्तर बढ़ता चला जाता था।

सूर्योदय हुआ—उसी सज-धज के साथ, जैसा असंख्य युगों से होता चला आया है। सूर्य की किरणों ने भी बिराटा के दुर्बल, विवर्ण सैनिकों के पीले वस्त्र-खंडों की ओर झाँका और उनकी दमकती तलवारों को चमका दिया, मानो रश्मियों ने उन्हें अर्घ्य दिया हो।

बिराटा के सैनिक उन टूटी-फूटी दीवारों के पीछे डटे हुये थे। बाहर निकलकर लड़ने को अब तक नहीं आये थे।

देवीसिंह ने इन पीत-पट-धारियों की चुप्पी का अर्थ समझ लिया। आह भरकर मन में कहा—'इसका पाप भी मेरे ही सिर आना है। किस कुघड़ी में दलीपनगर का राजमुकुट मेरे माथे पर रक्खा गया था!' एक ही क्षण पीछे देवीसिंह ने दाँत पीसकर निश्चय किया—इन्हें अवश्य बचाऊँगा, चाहे होड़ में दलीपनगर नहीं, सारी पृथ्वी और स्वर्ग को भी भले ही हार जाऊँ और चिल्लाकर बोला—बढ़ो, बढ़ो। क्या खड़े होकर युद्ध कर रहे हो? आज ही माँ का ऋण चुकाना है। बढ़ो और मरो। इससे अच्छी मृत्यु कभी न मिलेगी।'

सैनिक बढ़े और उन सबके आगे उछलता हुआ देवीसिंह।

सूर्य की किरणें कान की जड़ से बहने वाले रक्त को दमक देने लगीं। अपने राजा को घायल और उछलकर सबसे आगे बढ़ा हुआ देखकर दलीपनगर के योद्धा सब ओर से अलीमर्दान की सेना पर पिल पड़े।

[१०५]

परन्तु अलीमर्दान वाले दस्ते ने इस भीषण आक्रमण को उसी तरह रोक लिया, जैसे ढाल तलवार का वार रोक लेती है। जिस ओर से लोचनसिंह आक्रमण कर रहा था, उस ओर कालपी की एक टुकड़ी ने भयंकर संग्राम आरम्भ कर दिया। परन्तु वह दो तरफ़ से घिर गई।

अलीमर्दान देवीसिंह के सैनिकों से लड़ता-भिड़ता, पंक्तियों को चीरता-फारता नदी के किनारे आगया, जहाँ रात के आरम्भ से ही बिराटा के कुछ सैनिक प्रहरी का काम कर रहे थे। उन्हें थोड़े-से क्षणों में समाप्त करके वह अपने कुछ सैनिकों सहित नाव पर चढ़ गया। उसके एक दस्ते ने तीरवर्ती गाँव पर अधिकार कर लिया। बिराटा-गढ़ी की फूटी दीवारों में से बन्दूकों की एक बाढ़ चली। अलीमर्दान के कुछ सैनिक हताहत हुये। उसके और सैनिक प्रचुर संख्या में पानी में कूद पड़े। वहाँ धार छोटी थी। वे लोग जल्दी ध्वस्त मन्दिर के नीचे वाली पठारी पर आ गये। अलीमर्दान भी वहाँ नाव द्वारा आ गया।

देवीसिंह प्रबल पराक्रम से ही अलीमर्दान के शेष सैनिकों को पानी में कूद पड़ने से रोक सका। उसके दल ने उन लोगों को थोड़ा-सा पीछे हटाया। फिर देवीसिंह भी अपने कुछ सैनिकों के साथ पानी में कूद पड़ा।

अलीमर्दान और उसके सैनिक दौड़ते हुये ऊपर चढ़े।

बिराटा के पीत-पट-धारी अपनी टूटी दीवारों के बाहर निकल पड़े। तलवारों से सिर और धड़ कटने लगे। अलीमर्दान के सैनिक कवच और झिलम पहने हुये थे, तो भी दांगियों की तलवारों ने उन्हें चीर डाला।

सबदलसिंह ने अलीमर्दान को ललकारा—'जब तक इस गढ़ी में दाँगी का जाया जीवित है, तेरी साध पूरी न हो पायेगी। ले।'

अलीमर्दान चतुर लड़ाका था। सबदलसिंह के वार को बचा गया और फिर उसने अपनी तलवार का ऐसा प्रहार किया कि उसका दायाँ हाथ कंधे से कटकर अलग जा गिरा। सबदलसिंह भू शायी हो गया।

बेतवा की मंदगामिनी धारा पर रपट-रपटकर चमकने वाली किरणों की ओर उसकी दृष्टि थी।

फिर जो कुछ हुआ, वह थोड़े-से क्षणों का काम था। सबदलसिंह के योद्धा अलीमर्दान के बचे हुये दस्ते की तलवारों की नोकों पर झूम-झूमकर आ टूटने लगे। अलीमर्दान के थोड़े-से ही कवचधारी उन लोगों से बच पाये। परन्तु दाँगी कोई न बचा। जगह-जगह कटे-कुटे शरीरों के ढेर लग गये। 'केशरिया बानों' से ढँकी हुई पृथ्वी हल्दी से रंगी मालूम होती थी, मानों रण-चंडी के लिये पाँवड़ा बिछाया गया हो।

देवीसिंह अपने थोड़े-से सैनिकों-सहित गढ़ी के नीचे आया। विलम्ब हो गया था। अलीमर्दान गढ़ी में प्रवेश कर चुका था।

देवीसिंह ने अपने सैनिकों को, जो उस पार थे, नदी में कूद पड़ने के लिये हाथ झुकाया।

इतने में कुञ्जरसिंह ने एक गोला दलीपनगर की इसी टुकड़ी पर फेंका। इस कारण इन्हें ज़रा पीछे हटना पड़ा। परन्तु दलीपनगर की सेना का एक बहुत बड़ा भाग नदी-किनारे के ज़रा ऊपरी भाग से पानी में कूद पड़ा और वेग तथा व्यग्रता के साथ देवीसिंह की ओर आने लगा। देवीसिंह धीरे-धीरे गढ़ी की टूटी दीवारों की ओर चढ़ने लगा। पीले कपड़ों से ढँकी हुई मृत और अर्द्ध-मृत देहों को देखकर उसका कलेजा धँसने लगा और पैर लड़खड़ाने लगे। वह गढ़ी के भीतर न जा सका। धार तैरकर आने वाले अपने सैनिकों के आने तक वहीं ठिठक गया। पीले वस्त्रों से ढँके हुये लोहू-लुहान की ओर फिर आँख गई। होठ दबाकर मन में कहा—'कुञ्जरसिंह की हिंसा ने इन्हें मुझ से न मिलने दिया।'

[१०६]

कुन्जरसिंह की तोप का वह अन्तिम गोला था। उसे दागकर कुन्जरसिंह अपनी तोपों को नमस्कार कर खोह की ओर तेजी के साथ आया। खोह के बाहर उसे वीणा-विनिंदित स्वर में सुनाई पड़ा—

"मलिनिया, फुलवा ल्याओ नन्दन-वन के।
बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास,
उड़ गये फुलवा रह गई बास।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नन्दन-वन के।"

'उठो, चलो।' कुन्जरसिंह ने खोह में धंसकर कुमुद से कहा—मुसलमान घुस आये हैं। हमारे सब सैनिकों ने जौहर कर लिया है।'

कुमुद खड़ी हो गई। मुस्कराई। परन्तु आँखों में एक विलक्षण प्रचण्डता थी। बोली—'सब ने जौहर कर लिया है! सब ने? अच्छा किया। चलो, कहां चलें?'

'नदी के उस पार गढ़ी के पूर्व की ओर से अभी वहां कोई नहीं पहुंचा है। हम दोनों चलेंगे।'

'हां, दोनों चलेंगे उस पार; परन्तु अकेले-अकेले।'

'मैं समझा नहीं।' कुन्जरसिंह ने व्यग्रता के साथ कहा।

'मैं उस ओर से जाऊँगी, जहां मार्ग में कोई न मिलेगा।' कुमुद दृढ़ता के साथ बोली—'आप उस ओर से आयें जहां जौहर हुआ है। हम लोग अन्त में मिलेंगे।'

और उसने अपने आंचल के छोर से जङ्गली फूलों की गूंथी हुई एक माला निकाली और कुञ्जर के गले में डाल दी। उस माला में फूल अधखिले और सूखे थे।

कुन्जरसिंह ने कुमुद को छाती से लगा लिया। कुमुद तुरन्त उससे अलग होकर बोली—'यह मेरा अक्षय भण्डार लेकर जाओ अब मेरे पास और कुछ नहीं।' कुमुद के आंसू आ गये। उसने उन्हें निष्ठुरता के

साथ पोंछ डाला। थोड़ी दूर पर लोगों की आहट सुनकर कुमुद ने आदेश के स्वर में कहा—'जाओ। खड़े मत रहो। मुझे मार्ग मालूम है।' फिर जाते-जाते मुड़कर बोला— मेरा मार्ग निःशङ्क है; तुम अपना असंदिग्ध करो।'

'मैं अभी आकर मिलता हूँ। तुम चलो।' कुञ्जरसिंह ने कहा। कुमुद तेजी के साथ एक ओर चली गई और दूसरी ओर तेजी के साथ कुञ्जरसिंह।

उन दोनों के चले जाने के थोड़ी देर बाद अलीमर्दान अपने लोहूलुहान सैनिकों के साथ आ धमका। जब वहाँ कोई न मिला, उसने अपने सैनिकों से कहा—'यहीं कहीं है। इन चट्टानों में तलाश करो। मैं इधर देखता हूँ। कुछ लोग इधर से आने वालों को रोकने के लिये मुस्तैद रहना।'

अलीमर्दान और उसके कुछ सैनिक इधर-उधर ढूँढ़ने-खोजने लगे। जिस ओर कुञ्जरसिंह गया था, उसी ओर अलीमर्दान गया। एक ऊँची चट्टान पर खड़े होकर अलीमर्दान ने धीरे से अपने निकटवर्ती एक सैनिक से कहा—'वह देखो, धीरे-धीरे उस ढालू चट्टान की तरफ जा रही है। कमाल है, देखो।'

[१०७]

कुञ्जर को मार्ग में देवीसिंह मिल गया।

'तुम कहाँ जा रहे हो ?' देवीसिंह ने पूछा और जो बात वह कहना नहीं चाहता था, वह उसके मुंह से निकल गई—'तुमने जौहर नहीं किया ?'

कुंजरसिंह ने भी अपने कपड़े पीले किये थे, परन्तु वह सार्वजनिक वलिदान में अपनी तोपों की धुन के कारण शामिल न हो पाया था। देवीसिंह की बात उसके कलेजे में कांटे की तरह चुभ गई।

बोला—'जौहर ही के लिये आया हूँ। आज जीवन-भर की कसक मिटाऊँगा। तुमने मेरे स्वत्व का अपहरण किया। तुम्हें मारे बिना मुझे कभी चैन न मिलेगा। तुम्हारा सिर काटने से बढ़कर मेरे लिये कुछ भी नहीं।' और देवीसिंह पर वार करने लगा। बार सँभालते हुये देवीसिंह ने कहा—'स्वर्ग या नरक जो तुम्हारे भाग्य में होगा वहीं अभी भेजता हूँ।'

लड़ाई के लिये स्थान उपयुक्त न था, इसलिये स्वभावतः दोनों लड़ते लड़ते नदी की एक ढ़ालू पठारी की ओर क्रमशः चले गये।

दलीपनगर की सेना ने अपने राजा को इस विपत्ति में ग्रस्त देखा। अलीमर्दान भी बहुत अधिक सैनिक लेकर बिराटा की गढ़ी में नहीं गया था, इसलिये उसकी सेना भी अपने नायक की रक्षा के लिये उत्साहित हो उठी। दोनों दल नदी की ओर झुके और परस्पर लड़ते-भिड़ते पानी में कूद पड़े। लोचनसिंह पीछे से दबाता हुआ आ पहुँचा। जनार्दन भी दौड़ पड़ा। इसी भीड़ में एक ही स्थान पर रामदयाल, लोचनसिंह और छोटी रानी आ भिड़े।

रानी ने लोचनसिंह पर तलवार उठाई और कहा—'ले बेईमान, मूर्ख ?' लोचनसिंह के पैर को इस वार ने थोड़ा-सा घायल कर दिया। लोचनसिंह बोला—'दलीपनगर की दुर्दशा के कारण को अभी मिटाता हूँ।' और आँधी की तरह तलवार घुमाकर लोचनसिंह ने छोटी रानी की भूलोक-यात्रा समाप्त कर दी।

रामदयाल खिसका। कहता गया—'दाऊजू, मैं लड़ाई में नहीं हूँ। मैं तो किसी को ढूंढ़ रहा हूं।'

'जो जन्म-भर किया है, वही किया कर नीच!' लोचनसिंह ने लात मार कर कहा और वह तुरन्त अपनी सेना के आगे पानी में कूद पड़ा रामदयाल एक चट्टान पर से भरभराकर पत्थरों से टकराता हुआ पानी में जा गिरा और फिर कभी नहीं देखा गया।

नदी की वह छोटी धार उतराते हुये सिपाहियों से भर गई। कोई कूदते जा रहे थे, कोई तैरते और कोई गढ़ी के नीचे पहुँचते जा रहे थे।

उधर खुली और विस्तृत जगह पाकर कुञ्जरसिंह देवीसिंह पर वार-पर-वार करने लगा। दलीपनगर और कालपी के भी कुछ सैनिक लड़ते-लड़ते इसी ओर आ रहे थे। ढाल चट्टान के धारवर्ती छोर की ओर कुमुद सरकती जा रही थी और पीछे-पीछे अलीमर्दान। वह शीघ्र गति से और अलीमर्दान हथियारों के बोझ के मारे जरा धीरे-धीरे।

कुञ्जरसिंह ने देवीसिंह पर वार करते-करते उस ओर देखा। हाथ शिथिल हो गया। हाँफते-हाँफते बोला—'प्रलय हुआ चाहती है।'

'अभी, एक क्षण की भी कसर नहीं।' देवीसिंह ने कहा और तलवार का भरपूर हाथ दिया। कुञ्जरसिंह का सिर धड़ से कटकर अलग जा पड़ा। गले की माला छिन्न हो गई। सूखे हुये फूल पर रक्त का छींटा पड़ा। सूर्य की किरण में वह चमक उठी मानों अनेक रश्मियों की ज्योति उसमें समा गई हो।

अलीमर्दान और कुमुद के बीच में अभी कई डगों का अन्तर था। देवीसिंह उसी ओर लपका।

कुमुद शान्त गति से ढालू चट्टान के छोर पर पहुंच गई। अपने विशाल नेत्रों की पलकों को उसने ऊपर की ओर उठाया। उङ्गली में पहने हुई अँगूठी पर किरणें फिसल पड़ीं। दोनों हाथ जोड़कर उसने धीमें स्वर में गाया—

'मलिनिया, फुलवा ल्याश्रो नन्दन वन के।
बीन-बीन फुलवा लगाई वड़ी रास;
उड़ गये फुलवा, रह गई वास।'

उधर तान समाप्त हुई, इधर उस अथाह जल-राशि में पैंजनी का 'छम्म' से शब्द हुआ। धार ने अपने वक्ष को खोल दिया और तान-समेत उस कोमल कण्ठ को सावधानी से अपने कोश में रख लिया!

ठीक उसी समय वहां अलीमर्दान भी आ गया। घुटना नवाकर उसने कुमुद के वस्त्र को पकड़ना चाहा, परन्तु वेतवा की लहर ने मानो उसे फटकार दिया। मुट्ठी वांधे खड़ा रह गया।

इतने में रक्त से रंगी तलवार लिये हुये देवीसिंह आ पहुंचा। अलीमर्दान ने तलवार-समेत अपने दोनों हाथों को अपनी छाती पर कसकर कहा—'आप—राजा देवीसिंह हैं?'

'हाँ, सँभालो।' देवीसिंह ने उत्तर दिया।

'क्या झलक थी महाराज!' लड़ने का कोई भी लक्षण न दिखलाते हुये अलीमर्दान बोला—'वहुत हो चुकी। अब वन्द करिये। आप दलीपनगर पर राज्य करिये। हम लोग लड़ना नहीं चाहते। भ्रम ने हमारे-आपके बीच में वैर खड़ा कर दिया था।'

दोनों पक्षों के सैनिक मतवाले-से दौड़ते चले आ रहे थे। अलीमर्दान ने निवारण करने के लिये जोर से कहा—'दूर रहो। चट्टान की उस छोटी-सी खोह पर जो मिट्टी है, उसके पास मत आना। उसमें पद्मिनी के पैर का और सरकने का चिन्ह वना हुआ है। उससे दूर रहना।'

तलवार नीची करके देवीसिंह ने कहा—'पद्मिनी का नाम आपके मुँह से अच्छा नहीं लगता नवाव साहव। आप ही ने उसके प्राण लिये हैं आ यहाँ से जाइये। यह स्थान हमारी पूजा की चीज है।'

'अवश्य।' अलीमर्दान क्षीण हँसी हँसकर बोला—'तभी आपकी तोपों ने उसकी एक-एक इंट धूल में मिला दी है।'

सैनिकों की भीड़ बढ़ती चली जा रही थी, परन्तु वे लड़ नहीं रहे थे। रण का उत्साह एक अनिश्चित उत्सुकता में परिवर्तित हो गया था, एक ओर से घायल लोचनसिंह और दूसरी ओर से लहू-लुहान मुसलमान नायब वहां आये। नायक ने अपने नवाब से कहा—'क्या चली गई ? चिड़िया हाथ से उड़ गई ? लड़ाई क्यों बन्द कर दी गई ?'

लोचनसिंह ने लपककर सरदार पर तलवार का वार किया और कहा—'यह उड़ी चिड़िया।' वह हत होकर गिर पड़ा।

दोनों ओर के सैनिक ऊँचे-नीचे इधर-उधर भिड़ गये। अलीमर्दान ने तलवार नहीं उठाई। अपने सैनिकों को रोकते हुये बोला—'लड़ाई बन्द करो। महाराज देवीसिंह के साथ हमारी सन्धि हो गई है।' फिर पास खड़े हुये देवीसिंह से कहा—'रोकिये अपने सिपाहियों को। नाहक खून खराबी को बचाइये। देखिये, अपने प्यारे सरदार को अपनी आँख के सामने मारे जाते हुये भी क्रोध नहीं आ रहा है।'

देवीसिंह ने कड़ककर लोचनसिंह से कहा—'तुम्हारे जैसा मूर्ख पशु ढूंढ़ने पर नहीं मिलेगा। शान्त हो जाओ, नहीं तो तुम्हारे ऊपर मुझे हथियार उठाना पड़ेगा।'

'उसने हमें बहुत सताया था, इसलिये मार दिया।' लोचनसिंह बोला—'छोटी रानी को समाप्त कर ही आये हैं। अब यदि नवाब साहब के मन में कोई साध हो, तो इनके लिये भी तैयार हूं।'

'निकल जाओ यहां से पशु।' देवीसिंह ने क्रुद्ध होकर कहा—'नहीं तो किसी से निकलवाऊँ ? जनार्दन ? कहां है जनार्दन ?'

भीड़ के एक कोने से आहत जनार्दन सामने आ गया। परन्तु राजा और मन्त्री में कोई बात नहीं होने पाई, बीच में ही लोचनसिंह बोल उठा—'ऐसे कृतघ्न राजा के राज्य में जो रहे, उसे धिक्कार है। यह पड़ी है पत्थरों पर तुम्हारी चामुण्डराई।' और उसने अपने फेंटे को बड़ी अवहेलना से चट्टान पर फेंक दिया। वह फरफराकर धार में बह गया। लोचनसिंह तीव्र गति से वहां से अदृश्य हो गया।

अलीमर्दान और देवीसिंह के बीच कुछ शर्तों के साथ सन्धि स्थापित हो गई। सब लोग लौटकर धीरे-धीरे चले। अभी ढालू चट्टान के सिरे पर पहुँच न पाये थे कि कुछ सिपाही अचेत, आहत गोमती को देवीसिंह के सामने ले आये।

'क्या महारानी?' देवीसिंह ने पूछा—'पुरस्कार के लिये ले आये हो? मिलेगा, पर यहां से सबको ले जाओ।'

'रानी नहीं हैं महाराज!' एक सैनिक ने उत्तर दिया—'उनका रुण्ड तो उस पार पड़ा है। यह कोई और है। कहती थी, राजा के पास ले चलो, बदला लेना है। इतना कहकर अचेत हो गई। इसके पास तमञ्चा था। वह हमने ले लिया है।'

देवीसिंह ने जरा बारीकी के साथ देखा। एक आह ली और कहा—'मरणासन्न है।'

सैनिकों ने अचेत गोमती को नीचे रक्खा। देवीसिंह ने उसके सिर पर हाथ फेरा। एक क्षण बाद गोमती ने आँखें खोलीं। भूली-भटकी हुई दृष्टि। फिर तुरन्त बन्द कर ली। एक बार मुँह से धीरे से निकला—'रामदयाल!' और वह अस्त हो गई।

अलीमर्दान अपनी सेना लेकर चला गया। देवीसिंह दांगी वीरों के शवों के पास गया। सिर नवाकर उसने प्रणाम किया। उसके सब सैनिकों ने नतमस्तक होकर नमस्कार किया।

देवीसिंह ने कहा—'अपनी बान पर अटल थे ये। अपनी बान पर निश्चलता के साथ ये मरे। इन्हें मरने में जैसा सुख मिला होगा हमें कदाचित् जीवन में भी न मिलेगा। बहुत समारोह के साथ इनकी दाह-क्रिया की जानी चाहिये।' देवीसिंह का गला भर आया।

फिर संयत होकर थोड़ी देर में बोला—'बिराटा का गाँव किसी अन्य को जागीर में कभी नहीं दिया जायगा। जब तक दांगियों में कोई भी बचेगा, उसी के हाथ में यह गाँव रहेगा।'

फिर जनार्दन शर्मा और अपने सरदारों को वह उस स्थान पर ले गया जहाँ जाकर कुमुद ने आत्मबलिदान किया था। वह स्थान मन्दिर के सामने से जरा हटकर दक्षिण की ओर था। ढालू चट्टान पर बरीक मिट्टी का एक बहुत हल्का थर जमा था। उस पर कुमुद के पद और सरकने के चिह्न अङ्कित थे। दह की लहरें सजग और चपल थीं। देवीसिंह को रोमांच हो आया। उस ओर उङ्गली से संकेत करते हुये जनार्दन से कहा—'देवी ये अन्तिम चिह्न छोड़ गईं हैं। लहरें कुछ कह सी रही हैं। उनके नीचे से पैंजना की ध्वनि अब भी आती जान पड़ती है।'

जनार्दन थके हुये स्वर में बोला—'महाराज, हम लोगों के आने में बहुत विलम्ब हो गया।'

'जनार्दन।' राजा ने कहा—'कुंजरसिंह की नादानी ने मेरी सारी योजना पर पानी फेर दिया।' फिर दह की लहरों पर से आँख को हटाकर एक क्षण बाद बोला—'इन चिह्नों को इस चट्टान पर ज्यों का त्यों अङ्कित करवा देना चाहिये। लोग पर्वों पर आकर इस पुण्य-स्मृति से अपने को पवित्र किया करेंगे।'

'जो आज्ञा।' जनार्दन ने उत्तर दिया। देवीसिंह ने दह की ओर देखा।

अभी-अभी थोड़ी देर पहले किसी की उँगली की अँगूठी ने सूर्य की किरणों से होड़ लगाई थी। अभी-अभी थोड़ी ही देर पहले उस जलराशि पर 'छम्म' से कुछ हुआ। किसी अलौकिक सौन्दर्य का उस शब्द के साथ सम्बन्ध था और लहरों पर पवन में वह गीत गूंज रहा था—

'उड़ गये फुलवा, रह गई बास।'

[illegible]

१२ [illegible]

[illegible] भवन वेद वेदांग वि यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक......[illegible]
दिनांक........................

[illegible]